ईशान महेश

कृष्ण

एक रहस्य

कृष्ण एक रहस्य

ईशान महेश

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

ऋषित्व को उपलब्ध
हिमालय के स्वामी राम के शिष्य
स्वामी वेदभारतीजी के श्री चरणों में समर्पित
तथा
अपनी अर्धांगिनी चित्रकार बिंदु पोपली के प्रति
हार्दिक प्रेम सहित।

सबकुछ लागे, नया-नया

नए जन्म की नई यात्रा में मेरा नाम ईशान महेश है। 11 अप्रैल, 1968 को नई दिल्ली, भारत में मेरा जन्म हुआ। शिक्षा के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए.। एक लेखक के रूप में वर्ष 2009 तक चौदह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अपने आध्यात्मिक अनुभवों को मैंने हाल ही में प्रकाशित रामकथा पर आधृत अपने महाकाव्यात्मक आध्यात्मिक उपन्यास-शृंखला 'वनवास' और 'अनहोनी' में समाविष्ट किया है। अनुभव की इस गंगा से जनमा एक जल-प्रपात भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन-दर्शन पर लिखे आध्यात्मिक उपन्यास 'कृष्ण : एक रहस्य' में गिर रहा है। मेरा विवाह बिंदु पोपली से हुआ। बिंदु चित्रकार है और उसकी पेंटिंग्स में दूसरी दुनिया का रहस्य झाँकता दिखाई देता है। ध्यान के गहरे क्षण उसे जो दिव्य-दर्शन कराते हैं, वह उनको अपने चित्रों में उद्घाटित करती है। पुत्री का नाम वल्लरी शर्मा है और पुत्र का नाम अनाहत शर्मा।

कुछ अलौकिक पाने की उत्कट प्यास ने मुझे बहुत भटकाया। मुझे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं चाहिए था। मुझे तो अनुभव का वह जल चाहिए था, जो वास्तव में मेरी प्यास को शांत कर सके। मैंने बहुत खोजा और जब खोज-खोजकर थक गया तब अनेक सिद्ध-पुरुषों के रूप में वह मेरे समक्ष प्रकट हुआ।

मेरी कठोर परीक्षाएँ हुईं और तब जाकर मुझे हिमालय के पावन नील गगन के नीचे वह शांत झील दिखाई दी, जिसमें अपनी प्यास बुझाते हुए मैंने अपना प्रतिबिंब भी देखा। हृदय में संन्यास उतरा और इसके रंगों ने मेरे संसार को, मेरे गृहस्थ को सँवारा-निखारा और इस सारी यात्रा में मेरी अद्र्धांगिनी बिंदु पोपली ने मुझे अपना अनमोल सहयोग दिया। यदि दूसरे शब्दों में कहूँ तो आज मेरे पास जो भी अज्ञात और रहस्यमयी जगत् की संपदा है, उसका मूलभूत श्रेय मेरी पत्नी को ही जाता है। अंतर्यात्रा में बिंदु का जो उन्मुक्त सहयोग मुझे मिला, उस सहयोग ने मुझे बंधनों के गुरुत्वाकर्षण से स्वतंत्र होने का मंत्र दिया। तब मैंने जाना कि यह संसार तो रास्ते का पत्थर है। चाहे इस पत्थर से ठोकर खाओ अथवा इसकी सीढ़ी बनाकर पर्वतों को लाँघ जाओ।

नए जन्म की नई यात्रा,
अनंत को जाते ये सोपान,
डूब अंतस की गहराइयों में,
यह मार्ग बड़ा ही अगम-अजान।

—ईशान महेश

संपर्क : बी-324, प्रशांत विहार,
रोहिणी, दिल्ली-110085

eeshaanmahesh@yahoo.co.in

एक

''तुम भी नाची हो कन्हैया के साथ?'' शारदा के स्वर में उत्साह की लहर उठी और उसका अभिभूत मन पूछ बैठा। ''नाची? अरे, हमने उसे ऐसा नचाया कि पूछो मत!'' मीनू बोली, ''हम उसकी मुरली छुपा लिया करती थीं। वह हमसे पूछता कि क्या मेरी मुरली तुमने ली है? हम उसे सताने के लिए कह देती थीं कि नहीं, हमने नहीं ली और वह मान जाता था। फिर हम उसे किसी का भी नाम लेकर कहतीं कि उसके पास तुम्हारी मुरली है। इस प्रकार उसे दौड़ाकर सताती रहती थीं। फिर थककर वह कदंब के पड़ के नीचे बैठ जाता और कहता कि मैं सो रहा हूँ। यदि मेरे जागने से पहले मुरली तुम लोगों ने मुझे नहीं दी तो फिर मैं तुम्हें कभी मुरली नहीं सुनाऊँगा। हम उसके लेटते ही चुपके से उसके हृदय पर पोंगरी रख दिया करती थीं। उसके बाद तो बाजी रसिया के हाथ होती थी। ऐसा रस बहाता था कि जी चाहता था कि अभी प्राण त्यागकर मुक्ति के इस संगीत में समा जाऊँ।'' उसने रुककर कुएँ पर बैठी गाँव की स्त्रियों की ओर देखा, ''जिस दिन अक्रूरजी कान्हा और बलराम को कंस के बुलावे पर मथुरा लेकर गए थे, उसी दिन मेरा ब्याह था।'' मीनू के अधर काँपने लगे। उसकी आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह चली, ''क्या बताऊँ, सखियो! ऐसा काला दिन हमने कभी नहीं देखा। कई दिन तक गोकुल में चूल्हा नहीं जला। गौओं ने अपने बछड़ों को दूध पिलाना छोड़ दिया। बैल तो चारे से मुँह ही मोड़ चुके थे। खलिहानों में अन्न पड़ा था, पर कोई पक्षी उसे चुग नहीं रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे गोकुल के प्राण-पखेरू ही उड़ गए हों। ऐसा कोई घर नहीं था, जिसमें दीपक जला हो। मंदिरों में संध्या-वंदन, आरती इत्यादि न होने के कारण वे नीरव और निर्जन पड़े थे। घर के बड़े-बूढ़े बताते थे कि ऐसा काला दिन आज तक उन्होंने न देखा और न सुना। पवनदेव भी जैसे दु:खी होकर किसी गुफा में जा छिपे थे। चंद्रमा धूमिल था और तारों की आभा को रेणु से भरे मेघों ने मलिन कर दिया था।''

''फिर कब लौटकर आए श्यामसुंदर?'' रजनी ने पूछा।

''ब्याह के बाद पहले सावन में जब मेरा भाई लेने आया तो उसने बताया कि कन्हैया अभी तक लौटकर नहीं आया।'' मीनू का गला भर आया, ''आज बीस बरस से ऊपर हो गए, पर वह निर्मोही एक बार गया तो फिर उसने मुड़कर उन गलियों और चौराहों को एक बार भी नहीं देखा जहाँ उसने अपनी इतनी लीलाएँ कीं। मैंने सुना कि उसने गोपियों के दु:ख को बढ़ाने के लिए ऊधो महाराज को भेज दिया। उन दिनों मैं पीहर गई हुई थी। मैंने सब देखा। बड़ा ज्ञान बघारा उसने; पर गोपियों ने भी उसे प्रेम की झाड़ू से ऐसे पीटा कि उसका सारा ज्ञान ही बुहार दिया और कँगला करके मथुरा का रास्ता दिखाया। लुटा-पिटा ऊधो अपने कृष्ण महाराज से जाकर खूब लड़ा और बोला कि 'अब पता लगा कि महाराज स्वयं क्यों नहीं गए। पिटवाने के लिए अपने सेवक को भेज दिया।' '' मीनू आवेश में आ गई, ''पंडित कहते हैं कि ज्ञान को कोई चुरा नहीं सकता। हमने तो ज्ञानियों के ज्ञानी ऊधो के ज्ञान को जमना मैया के घाट पर ऐसा धोया, ऐसा धोया कि अब वह ज्ञान से कोसों दूर रहेगा। उसकी सारी चतुराई ही हर ली।''

''तुम सबने मिलकर श्याम को रोक क्यों नहीं लिया? क्यों जाने दिया कंस के पास?'' गंगा ने पूछा।

''जब राजा का बुलावा आ जाए तो किसमें बल कि कोई किसी को रोक सके।...और रोकें किसे? वह कान्हा ही आगे बढ़-बढ़ जाने को तैयार था। वह तो भला हो हमारी आँखों का, जिसने उसकी मोहिनी मूरत को बसा लिया। अब तो जब हमारा मन करता है, हम आँखें मूँदती हैं और नंदलाल को उसी रूप में देख लेती हैं।''

''कैसा रूप?'' मंत्र-मुग्ध दशा में सुमति के मुँह से निकला।

''सिर पर मोर-मुकुट, मछली जैसे कुंडल, माथे पर लाल तिलक, श्याम सलोने गात पर पीतांबर और मोहिनी मुसकान पर मुरली धरे नंदलाल! अहा, कछु कहा न जाइ!''

''चलो री, चलो!'' लाली बोली, ''अगर यही बैठी रहीं तो फिर घर के काम कौन करेगा? इसकी इन कथाओं का कभी अंत होगा ही नहीं।''

लाली के इस स्वर ने स्त्रियों को अपनी-अपनी गगरियाँ उठाने के लिए सक्रिय कर दिया। सभी ने अपने-अपने घर की राह ली।

सुमति ने चारों कलश सिर पर रखे और मीनू के साथ-साथ चल दी।

''बहन, तुम जो भी कृष्ण-कथा कहती हो, उसे मैं अपने पति और बच्चों को अवश्य सुनाती हूँ। घर जाती हूँ तो बच्चे स्वयं ही पूछ बैठते हैं कि माँ, आज कौन सी कृष्ण-कथा कहोगे? यदि मैं कह दूँ कि आज तुम्हारी मौसी ने कोई कथा नहीं सुनाई तो वे कहते हैं, कोई बात नहीं। कृष्ण-कथा की गठरी में से कोई भी कथा निकालकर सुना दो।'' सुमति ने मीनू की ओर देखा और भावविह्वल होकर बोली, ''पहले पुजारीजी के गोधन की सेवा करती थी तो मन उस चाकरी में सकुचाया रहता था। यह बात और है कि पुजारीजी के गोधन की सेवा के कारण मंदिर की ओर से समय-समय पर अन्न-मिष्टान्न मिल जाया करता था—पर वहाँ संतोष और सुख नहीं था।''

''शारदा ने मुझे तुम्हारे बारे में बताया था कि पुजारीजी के गोधन की सेवा करनेवाली सुमति यदि मुझे मिल जाए तो मैं चिंता-मुक्त हो जाऊँगी। मैंने तब तुम्हारे बारे में उससे पूछा।'' मीनू ने सुमति की ओर देखा, ''सच कहूँ तो तुमसे भी अधिक तुम्हारे पति के बारे में पूछा था।''

''तो शारदा ने क्या बताया?'' सुमति का स्वर निस्तेज-सा हो चला था।

''उसने बताया कि सुमति का पति जीविका के लिए कुछ पुरुषार्थ नहीं करता है और इसीलिए तुम्हें अपने परिवार का और अपने पति का भरण-पोषण करने के लिए चाकरी करनी पड़ती है।'' मीनू बोली, ''बुरा मत मानना। उसकी बात सुनकर मैंने तब यही मान लिया था कि तुम्हारे पति...क्या नाम बताया था उसने?''

''सुदामा।'' सुमति बोली।

''हाँ, सुदामा। तो मैंने यह मान लिया कि तुम्हारा पति मदिरापान कर द्यूत खेलनेवाला कोई व्यसनी पुरुष होगा, जो अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं करता। पर जब एक दिन शारदा ने हाथ में पोथियाँ पकड़े एक व्यक्ति की ओर संकेत करके कहा कि यह है सुमति का घरवाला। मैं तेरे पति को देखकर चकित रह गई। एक मद्यप के मुख पर ऐसी कांति नहीं होती। मैंने शारदा से पूछा कि क्या सुमति का पति मदिरापान करता है? तब उसने बताया कि तुम्हारे पति को तो ज्ञान की मदिरा का ऐसा व्यसन है कि उसमें वह अपनी सारी सुध-बुध भूला बैठा है। तब मैंने कहा कि मेरी गौओं की सेवा करने के लिए यदि तू सुमति को ला दे तो मैं कुछ सुख पाऊँ। सुमति, मैं तो अहिरन हूँ। मेरे परिवार के लिए तो मेरी गौएँ ही सबकुछ हैं। मैं सदा यही चाहती थी कि उनकी सेवा करनेवाला जो भी हो, उसमे गौओं के प्रति पूजा का भाव हो।''

''सच तो यह है कि तुम्हारे नंदलाला की कथाओं ने मुझे तुम्हारी गौओं की सेवा में आने का न्यौता दिया। तुम्हारे पास आती हूँ तो तनिक भी यह नहीं लगता कि चाकरी के लिए आई हूँ।''

''तो क्या लगता है?''

''यही कि जिनकी कथाएँ सुना-सुनाकर तुमने मुझे भी कन्हैया की गोपी बना दिया है—मैं उनकी ही गौओं की सेवा

का सौभाग्य पा रही हूँ।''

''सच भी यही है, सुमति।'' मीनू बोली, ''मैं तो अपनी गौओं के साथ प्रति क्षण अपने कान्हा को ही देखा करती हूँ। अच्छा है, जो तू भी देखती है। मैं तुझसे सच कहती हूँ कि एक दिन ऐसा आएगा कि उनको देखते-देखते तू वही हो जाएगी। वह भाव का है री!''

''कृष्ण के बिना कैसा लगता है तुमको?'' सुमति ने मीनू की पीड़ा जाननी चाही।

''उसके बिना तो यह देह चले ही ना। वह हमारी साँसों में है। उसे हम घोलकर पी गई हैं। वह हमारे हृदय में रह रहा है। इसलिए विरह जैसी कोई बात है ही नहीं। वैसे एक बात बता ही दूँ। तू समझेगी तो है ही नहीं। तू क्या, कृष्ण के अतिरिक्त कोई समझ ही नहीं सकता। फिर भी कह देती हूँ तुझे; क्योंकि अपने कान्हा के प्रेम में पड़े हुए तुझे देख रही हूँ। हम तो उसके साथ रास रचाने आई थीं। उसने अपनी रास-लीला समेटी तो हम भी फिर अपने-अपने रास्ते लग लीं। हमारा अभिनय ऊधो को पे्रम का पाठ पढ़ाने के बाद ही पूरा हो गया था। अब तो हम कृष्ण के द्वारा संसार में हो रही लीलाओं का श्रवण-सुख उठा रही हैं। तुम उस पात्र की गहराई नाप नहीं सकतीं, जिसे कृष्ण ने छूकर अपना कह दिया हो। उस घर में फिर पहलेवाला जीव नहीं रहता। फिर तो वहाँ कृष्ण ही रहा करता है।''

''मेरे पति के विषय में फिर तुमने क्या धारणा बनाई?'' सुमति के कान सुदामा की प्रशंसा सुनने के लिए व्याकुल थे।

''बुरा मत मानना, सुमति! पर निर्धन का ज्ञान भी निरर्थक होता है। मैं यह नहीं कह रही कि तुम्हारे पति विद्वान् नहीं हैं। पर यदि विद्वान् निर्धन हो तो यह संसार उसके ज्ञान को भी दो कौड़ी का मानता है और यदि वह समर्थ हो तो उसके अज्ञान या अपूर्ण ज्ञान को भी महत्त्व देता है।'' मीनू बोली, ''अब मेरा पति है, दूध बेचता है। ज्ञानी नहीं है, पर सभी उसका सम्मान करते हैं। उसके पास धन है। गृहस्थ को धर्मपूर्वक धन कमाने के लिए प्रयास करना चाहिए। कृष्ण ने आलसी ग्वालों को पुरुषार्थी बनाया। जो ग्वाले घर पड़े रहते थे, उनको धिक्कारा और कहा कि तुम्हारे पास गोधन है और भूमि है, उसके बाद भी तुम निर्धन हो तो धिक्कार है तुम पर। अब देख न तू कि नंदबाबा के पास किस बात का अभाव था। सेवक थे, धन-धान्य था। फिर भी कान्हा स्वयं गौए चराने जाया करता था। शेष गोप-समाज के जो धनी ग्वाले थे, उनके बच्चे पहले बैठे खाया करते थे और मोटापा बढ़ाते थे। कान्हा ने सबको अपने साथ खींचा और काम को खेल बनाकर सबको खूब नचाया। वह कहता था कि जैसा आचरण बड़े करेंगे, वैसा ही बच्चे करेंगे। जब मैं नंद बाबा का पुत्र होकर गइया चराऊँगा तो शेष गोपों के माता-पिता अपने आलसी बच्चों से यही कहेंगे कि जब गोप-प्रमुख नंदजी के दोनों लाल गइयाँ चराने को जा सके हैं तो तुम का हो?'' मीनू मुसकराई, ''और हुआ भी वही, कन्हैया ने पुरुषार्थ की ऐसी मुरली बजाई कि जमना मैया में पानी कम था और हमारी गइया मैया में उससे ज्यादा दूध बहता था। जी भरकर नहाओ, खाओ, लगाओ और बहाओ। फसल के होते ही उसको चरनेवाले पशु भी प्रकट हो जाते हैं। वही हुआ। हमारे गौरस को लूटने लगे कंस के सैनिक। सारा दूध छीनकर कंस की दोनों रानियों के स्नानागारों में भरा जाने लगा और वहाँ से बहकर नालियों में जाने लगा। कन्हैया कहता था कि अभी तो मैं मथुरा जाती दूध-मक्खन की मटकियाँ फोड़ रहा हूँ, कुछ ही दिनों में कंस के पाप का घड़ा भर जाएगा तो उसे भी जाकर फोड़ आऊँगा।''

''एक नि:शस्त्र ग्वाला किसी शक्तिशाली राजा को उसकी सभा में उसके सैनिकों के सामने पटक-पटककर मार दे, यह तो अनहोनी लगती है।'' सुमति के स्वर में विस्मय था।

''परमात्मा ही अनहोनी को होनी और होनी को अनहोनी करने की शक्ति रखते हैं और तुम्हें बता दूँ, यह जो कृष्ण

नित युद्धों में घिरा शंख और बाँसुरी बजा रहा है, यह 'वही' है।'' मीनू मुसकराई, ''किसी को कह मत देना, नहीं तो सब कहेंगे कि सुदामा के साथ-साथ निर्धनता ने सुमति की मति भी हर ली है। यह हृदय की बात है। मन-ही-मन इसका रस ले।''

××××

''भाई सुदामा!'' श्रेष्ठी धनीराम ने सुदामा को अपने गले से लगाते हुए कहा, ''तुम तो ज्ञानी हो, पंडित हो। परमात्मा की वाणी का नित अध्ययन-मनन करते हो। मेरी तुमसे प्रार्थना है कि मेरे लिए परमात्मा से यह निवेदन कर दो कि वह मुझे अपनी भक्ति दे। मुझे विश्वास है कि तुम मेरे लिए कहोगे तो वह अवश्य सुनेगा। वह सुने बिना रह ही नहीं सकेगा।''

''तुम्हारी दुर्दशा देखकर भी सेठ को यह समझ नहीं आता कि तुम्हारे द्वारा की गई प्रार्थना तो मंदिर के द्वार पर खड़ा भिखारी भी न सुने।'' सुदामा के मन में कोई हँसा।

''प्रार्थना का आर्थिक दुर्दशा से क्या संबंध।'' सुदामा ने एक वक्र दृष्टि उस स्वर पर डाली, ''तुम अपनी तुला को ठीक करो। वह केवल धन को तौलना जानती है। मुझे परमात्मा से कोई असंतोष नहीं। मुझे उसने वह सब दिया, जो मुझे चाहिए था। उससे भी कहीं अधिक दिया। मेरी पात्रता से बहुत अधिक दिया।''

''हाँ, मुझे बहलाने के लिए तो यह सब ठीक है। पर उसने तुम्हें कुछ नहीं दिया।'' स्वर ने सहानुभूति जताई।

''यह तुम किस आधार पर कह सकते हो?'' सुदामा ने आपत्ति की।

''अपना तो एक ही आधार है—धन। उसने धन के नाम पर एक फूटी कौड़ी तक का प्रबंध तुम्हारे लिए नहीं किया।''

''इसमें परमात्मा का कोई दोष नहीं। मैंने धन चाहा ही नहीं। मैंने ज्ञान को अपना धन माना। परमात्मा ने मुझे मेरी अपेक्षा से अधिक ज्ञान दिया। उस ज्ञान का मैं मनन कर सकूँ, उस दिशा में और चिंतन कर सकूँ, इसके लिए संतोष धन से संपन्न पत्नी दी और वैसी ही धैर्यवान् संतान दी।'' सुदामा ने अपने मन के स्वर से अपना मुख मोड़कर धनीराम की ओर किया और बोले, ''सेठजी, आपका ऐसा कहना परमात्मा को दोष देने जैसा है। वह सुन रहा होगा तो क्या कहेगा कि सेठजी को इतना दिया, फिर भी ये कह रहे हैं कि मुझे कुछ नहीं दिया। संसार में ऐसे असंख्य लोग हैं, जिन्हें न माया मिलती है और न राम; किंतु आप तो मायाराम हैं। आपको उसने माया भी दी और राम की ओर अग्रसर भी कर रहे हैं। आप पर परमात्मा कृपालु हैं। मैंने देखा है कि आपकी जिज्ञासा संतों की सेवा-शुश्रूषा और उनके श्रीचरणों में बैठकर हरिनाम जपने में है। सुंदर है यह अवस्था। उसका नाम सुनकर आपके मन में उमंग की लहरें उठने लगती हैं। प्रकृति का सौंदर्य देखकर आपको उसका स्मरण आ जाता है। इससे अधिक और प्रमाण क्या होगा कि उसके पे्रम में आप बहने लगे हैं। यह बहना ही उसकी कृपा से मिलता है।''

''तुम सत्य कहते हो सुदामा, उसकी कृपा से ही तुम मुझे मिले हो। वह मेरे पास मेरे आत्मिक विकास के लिए संतों को भेज रहा है। तुम कब से मेरे पड़ोस के इस गाँव में हो। इसे गाँव भी नहीं कहा जा सकता, यह तो बीस-तीस घरों का एक बिखरा हुआ एक उपेक्षित स्थान है, जिसका नाम इस भूमि के स्वामीयों के पूर्वजों ने अपने परिवार की 'माया' नाम की किसी स्त्री के नाम पर रख दिया था और इस मायापुरी में सुदामा जैसा महाज्ञानी रहता है, इसका किसी को पता भी नहीं।'' धनीराम ने आनंद की लहर में भरकर अपनी गरदन हिलाई, ''वह तो भला हो उस साध्वी का, जिसके दर्शन को मैं गया था और वहाँ तुम भी उनसे ज्ञान-चर्चा करने आए थे। मुझे तो लगता है कि वह माँ केवल हमें मिलाने ही आई थी। परमात्मा ने उनको इसी काम के लिए भेजा था। अब मेरी तो यह दशा है कि यदि

तुमसे मिलकर हरि-चर्चा न करूँ तो लगता है कि जीवन व्यर्थ जा रहा है।''

''उसके भेद अनूठे हैं। उनको तो वह स्वयं ही जान सकता है। मैं आपसे इतना ही कहूँगा कि आप फिर कभी यह न कहिएगा कि वह आपको देख नहीं रहा। मैं देख रहा हूँ कि वह आप पर बरस रहा है।'' सुदामा ने पत्रों पर लिखी पांडुलिपि को वस्त्र में लपेटते हुए कहा।

''मैं सदा यह सोचता हूँ कि उसने मुझे इतना दिया है कि मुझसे सँभाले नहीं सँभलता। पता नहीं वह मेरे किस गुण पर रीझा कि मुझे अपरिमित धन-संपदा दे डाली। मैं उससे कहता हूँ कि अब बस भी कर और कितना देगा। पर वह है कि दिए चला जा रहा है। मैं उसका कैसे धन्यवाद करूँ?'' धनीराम ने सुदामा की आँखों में झाँकते हुए पूछा।

''सेठजी, प्रत्येक व्यक्ति का आभार प्रकट करने का अपना स्वभाव होता है। आपकी बात तो मैं नहीं जानता, पर अपनी बात बता सकता हूँ। मैं तो उसको धन्यवाद देने का एक ही मार्ग जानता हूँ...'जानता हूँ' शब्द उपयुक्त नहीं है। कहना यह चाहिए कि धन्यवाद के क्षणों में आनंदपूर्ण अश्रु लिये मेरा हृदय अस्तित्व के प्रति नतमस्तक हो जाता है। कहने जैसा कुछ भी नहीं रहता।''

सुदामा मंद-मंद मुसकराए।

''अहा, कितनी सुंदर बात कही है!'' धनीराम का स्वर नाच उठा और आँखें बह उठीं। उन्होंने सुदामा का हाथ अपने हाथों में ले लिया और भावपूर्ण गद्गद स्वर में बोले, ''सुदामा, तुम्हारे पास आते ही मन शांति से भर उठता है। तुम्हारे पास ज्ञान और प्रेम की ऐसी संपदा है जो किसी अन्य के पास नहीं है। मेरा मन जब भी व्यापार की मारा-मारी से थक और ऊब जाता है तो वह यही पुकार उठता है कि सुदामा के पास चलकर ज्ञान-चर्चा कर मैं अपनी आत्मा को आनंदित करूँ...और भाई सुदामा, तुम भी अद्भुत हो। अपने दस काम छोड़कर हर समय मेरे लिए उपलब्ध हो जाते हो। आज तक कभी तुमने यह नहीं कहा कि सेठजी, मेरे पास समय नहीं है। सच बात तो यह है कि समय-असमय जिस प्रकार मैं तुम्हारे पास आ जाता हूँ और तुम्हारे साथ बौद्धिक व्यायाम कर जाता हूँ; इस प्रकार यदि कोई मेरे पास आ जाए तो मैं उसे राम-राम करके कहूँगा कि भैया, क्यों धंधा खराब कर रहे हो हमारा। कुछ कमाने-धमाने दो हमें।''

''पर आप तो मेरी कमाई कराने ही आते हैं।'' सुदामा ने हँसकर कहा।

''वह कैसे?'' धनीराम ने चकित होकर पूछा।

''ज्ञान ही तो मेरी कमाई है। आपने मुझे सदा शास्त्रों का अध्ययन-मनन और लेखन करते ही पाया होगा। आपके आने पर उनकी कुछ चर्चा हो जाती है। अन्यथा किसकी रुचि है ज्ञान-चर्चा में। आप धनी होने के साथ-साथ अध्यात्म की ओर भी अपना पग बढ़ा रहे हैं, यह तो सौभाग्य की बात है। आपके इस सौभाग्य में यदि मेरा कण मात्र का सहयोग भी हो रहा है तो यह अनुकंपा है माँ सरस्वती की कि वह अपने इस सुदामा रूपी यंत्र का कुछ उपयोग कर रही हैं।''

''सुदामा भाई, मैं तो तुम्हारी सरलता और सहजता देखकर बहुत प्रभावित हूँ। सदा मेरे स्वागत के लिए तत्पर रहते हो। देखा जाए तो मैं तुम्हें प्रतिदान में दे ही क्या रहा हूँ! व्यापार की मारा-मारी ने मेरी निद्रा खा ली थी। मैं अनिद्रा का रोगी होकर कष्ट पा रहा था। क्रोधी हो गया था। तब मैं किसी मनोचिकित्सक के पास उपचार हेतु जाने लगा। उसने तो मेरी गाँठ में ही सेंध लगा दी।'' धनीराम ने ठहाका लगाया, ''और जानते हो, उसके बाद भी मुझे शांति तो मिली नहीं, बल्कि चिकित्सक को दी गई धनराशि देखकर रही-सही नींद उड़ी सो अलग; मन और दु:खी हुआ, सो अलग।''

''हमारे शास्त्रों में यही वर्णित है कि परमात्मा का आकर्षण जब होता है तो फिर शेष कुछ आकर्षित नहीं करता। एक बार स्वाद मिल जाए, उसके बाद स्वादरहित व्यंजन नहीं भाते।'' सुदामा बोले।

''स्वादिष्ट व्यंजनों के तुम तो इस प्रकार उदाहरण दे रहे हो, जैसे तुमने न जाने कितने प्रकार के व्यंजनों का आस्वादन लिया है। रूखी-सूखी रोटी और छाछ के अतिरिक्त किसी व्यंजन का नाम बताओगे?'' सुदामा के मन के स्वर ने उसे चिढ़ाया।

सुदामा उस स्वर की ओर पीठ किए बैठे रहे।

''यह परमात्मा और माया का खेल क्या है और कैसा है, यह समझ ही नहीं आता।'' धनीराम ने अपना माथा ठोका, ''कई बार मैंने सोचा कि इसका भेद पाऊँ। अनेक साधु-संन्यासियों से भी पूछा, पर कोई ऐसा नहीं मिला जो यह कह सके कि मैंने इसका भेद पा लिया।''

''कुछ दिन पहले मैं हरिहर आश्रम में पुराणों की हस्तलिखित प्रति देखने गया था। वहाँ एक कथावाचक पधारे थे। वे माया और परमात्मा के संबंध में एक कथा कह रहे थे। कथा प्यारी थी। उस कथा के माध्यम से माया-परमात्मा का भेद पाया जा सकता है, ऐसा तो मैं नहीं कहता; किंतु उसमें कथा का रस अवश्य था। कुछ अनकहा, उसमें कुछ कह रहा था।'' सुदामा के स्वर में उस रस की झलक दिखाई दे रही थी।

''सुदामा, मुझे भी उस कथा का रसपान कराओ।'' धनीराम की आँखों में वह चमक थी, जो प्रसाद पानेवाले भक्तों में होती है।

''इसीलिए आप मेरे प्रिय हैं; क्योंकि आपने धन के साथ-साथ हरिनाम को चुना। उसके स्मरण में आपका मन लगता है, अन्यथा आपको किस वस्तु का अभाव है। आप चाहें तो अन्य धनियों के समान भोग-विलास में अपना समय नष्ट कर सकते हैं। किंतु आप विश्राम के क्षणों को परमात्मा की यात्रा में व्यय करते हैं। वहाँ के लाभांश की तो बात ही कुछ और है।'' सुदामा हँसे, ''व्यापारी हैं न, इसलिए अपना लाभ खोज ही लेते हैं।''

''सुदामा, अब तुम मुझे और व्याकुल न करो। वह कथा सुनाओ।'' धनीराम आलथी-पालथी मारकर बैठ गए।

''अच्छा, तो सुनिए।'' सुदामा भी कथा सुनाने की मुद्रा में आ गए, ''बात उस समय की है, जब सृष्टि बनी थी। उस समय परमात्मा ने धरती पर अनेक प्राणियों की रचना की । जब प्राणियों की रचना की तो उनको नचाने के लिए माया का भी सृजन किया। कथा कहती है कि एक दिन श्रीहरि विश्राम की मुद्रा में बैठे थे तो उनकी योगमाया उनके पास रुष्ट मनोदशा में आई और उनसे कहने लगी कि भगवन, आपने मुझे किस नरक में धकेल दिया। श्रीहरि ने माया से रुष्ट होने का कारण पूछा तो माया बोली कि आपने जिन प्राणियों की रचना की है वे न केवल दीर्घाकार हैं, वरन् बहुत ही कुरूप भी हैं। अत: उनके आहार, निद्रा, भय और काम-क्रोध के मध्य डोलते-डोलते मेरी दुर्दशा हो गई है। तब श्रीहरि बोले कि आओ, मैं तुम्हें एक नई रचना दिखाता हूँ और वे माया को अपने सृजन-कक्ष में ले गए। वहाँ एक मंच पर वस्त्र से कुछ ढका हुआ था। माया ने पूछा कि प्रभु, यह क्या है? श्रीहरि ने उत्तर के रूप में वह वस्त्र हटा दिया। उस पदार्थ के अनावृत होते ही माया ठगी-सी रह गई। उसने आज तक ऐसी सुंदर रचना नहीं देखी थी। उसने चकित होकर पूछा, 'यह क्या है, प्रभु? इसका नाम क्या है? और आज तक जितने भी लोकों की रचना आपने की है, उनमें इस प्रकार के सुदर्शन जीवधारी का मैंने दर्शन ही नहीं किया है। तब श्रीहरि ने हँसकर कहा कि 'माया, यह एक नवीन रचना है। इसे तुम साक्षात् मेरे चिन्मय अंश से सृजित ही जानो। इस जीवधारी को तुम 'मनुष्य' के नाम से जानोगी।' माया बोली, 'प्रभु, यह आपका कैसा न्याय है कि अपने खेलने के लिए तो इतनी सुंदर रचना और मेरे लिए वे कुरूप पशु । आप इसे मुझे दे दीजिए। इससे तो मैं खेलूँगी। तब श्रीहरि ने माया को

बहुत समझाया कि यह मनुष्य तो उनको अति प्रिय है, अत: वे उसको कैसे दे सकते हैं। पर माया कब हार माननेवाली थी। वह भी हठ पकड़े रही। अंतत: श्रीहरि ने कहा कि अच्छा, एक कार्य करते हैं कि दोनों इसके साथ, एक-साथ खेलते हैं। हम दोनों अपने-अपने अनुसार इसे अपनी ओर आकर्षित करेंगे। जो इसे ले जाए, यह उसका। तो ऐसा करो कि पचास भाग तुम्हारे और पचास मेरे। तब माया बोली कि प्रभु, तब तो यह मनुष्य निश्चित रूप से आपका ही होगा। यह तो खेल समानांतर शक्ति का नहीं हुआ। आपके पचास भाग के समक्ष मेरा तो वश नहीं चलेगा। तब बहुत देर तक कौन कितने भाग से मनुष्य को अपना बनाने के लिए आकर्षित करेगा, इस विषय को लेकर तर्क-वितर्क होता रहा। अंतत: यह निश्चित हुआ कि माया के द्वारा खींचने का भाग निन्यानबे अंश और श्रीहरि एक अंश से मनुष्य को अपनी ओर खींचेंगे। तब माया शंकित स्वर में बोली कि प्रभु, इतना सब होने पर भी आपको एक प्रतिज्ञा और पूरी करनी होगी कि मैं निन्यानबे अंश से जब खींचूँगी तो अपने पूरे वैभव और ऐश्वर्य के साथ मनुष्य को दिखाई दूँगी—अर्थात् मैं मनुष्य को सामने से खींचूँगी और आप जिस एक अंश से भी उसे खींचेंगे तो वह अप्रत्यक्ष होगा। आप अगोचर, अदृश्य होकर खींचेंगे—अर्थात् आप छिपकर खींचेंगे और मैं सामने से। कहते हैं कि तब से मनुष्य के साथ माया-परमात्मा खेल रहे हैं। माया साधनों के माध्यम से मनुष्य को दिखती हुई और उसके मन को बाँधकर अपनी और खींचती जा रही है। वहीं दूसरी ओर श्रीहरि अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को अपनी ओर खींच रहे हैं। पर जिस मनुष्य पर श्रीहरि रीझ गए, उसके सम्मुख माया सिर पटक-पटककर मर गई; किंतु उसने उसकी ओर देखा तक नहीं। माया का कोई पाश श्रीहरि के उस स्नेह पात्र को छू नहीं पाया, जिसे श्रीहरि ने चुन लिया। जो भी उनके द्वारा चुन लिये गए वे माया से अप्रभावित रहे।'' सुदामा ने धनीराम की ओर देखा।

धनीराम अश्रुपूरित नेत्रों से अपने सामने बैठे सुदामा की ओर देख रहे थे मानो वे उससे श्रीहरि के चरणों में भक्ति की याचना कर रहे हों। कथा की आनंद वर्षा में भीगे हुए वे हाथ जोड़कर बोले, ''जय हो! श्रीहरि की जय हो! भाई सुदामा, किसी ने सत्य ही कहा है कि नाम में डूबने की अपनी ही महिमा है, उसका अपना ही आनंद है। पर कोई डूबना चाहे तब न। मैं तो कहता हूँ कि हम तो व्यापारी हैं। यदि कोई हमसे कुछ लेकर जाता है तो हम उसे कुछ दिन पश्चात् उसकी वस्तु के मूल्य का भुगतान करते हैं। परंतु परमात्मा के यहाँ तो इस हाथ दे और उस हाथ ले का सिद्धांत है। इधर उसका नाम लिया और उधर आनंद की अजस्र धारा हृदय में बहने लगी। परमात्मा की बड़ी कृपा है सुदामा, कि वे मेरा परिचय संत स्वभाव के मनुष्यों से कराते जा रहे हैं। उनकी कृपा के बिना किसे सत्संग मिला है। मिल ही नहीं सकता। मिल भी जाए तो उसका लाभ कोई उठा नहीं सकता। मछली गंगा में ही रहती है, परंतु इससे वह मोक्ष तो नहीं पा लेती।''

''आपका कथन उचित है, सेठजी!'' सुदामा का स्वर भी भावुक हो चला था, ''इसीलिए तो श्रीहरि ने कहा कि इस मनुष्य रूपी जीव में मैंने अपना वह अंश स्थापित किया है, जिससे यह मुझ तक पहुँचने की यात्रा कर सकता है। एक प्रकार से आप मानव देह को उस तक पहुँचने की सीढ़ी ही समझिए। परमात्मा ने उसे सीढ़ी देकर भेजा है। जो यह समझ गया कि यह सीढ़ी उसके पास है, फिर उसने चढ़ने में विलंब नहीं किया।''

''अच्छा, चलता हूँ, नहीं तो मुझे विलंब हो जाएगा। फिर आऊँगा।'' धनीराम उठ गए। उनके उठते ही दूर खड़ा सारथि समझ गया और सुंदर अश्वों से जुता रथ लेकर उपस्थित हो गया। वे रथ में बैठे और रथ अपने पीछे उड़ाई धूल में ओझल हो गया।

रथ के जाते ही सुदामा ने लेखनी उठा ली। वे उसे मसिपात्र में डुबोने ही जा रहे थे कि चौकी के पास पड़े मानव प्रतिबिंब को देखकर ठहर गए। उन्होंने सिर उठाकर देखा। उनकी पत्नी सुमति हाथ में थाली लिये खड़ी थी, जिसमें

रखा लोटा वे देख पा रहे थे।
''तुमने भोजन कर लिया?'' सुदामा ने सुमति की भाव-भंगिमा देखकर उसकी मनोदशा की दिशा को परिवर्तित करने के उद्देश्य से पूछा।
''हाँ, कर लिया।'' सुमति का स्वर आक्रोश लिये था, ''और भोजन में राजभोग छका है।''
''और बच्चे?'' सुदामा ने ग्रंथ के बीच में पीपल का सूखा पत्ता रखकर उसे बंद करते हुए पूछा।
''बच्चों को इस राज्य के महामंत्री ने अपने घर भोजन पर निमंत्रित किया है। कुछ ही देर में वे राजकीय रथों पर आरूढ़ होकर आते ही होंगे।'' सुमति के अधर काँप रहे थे। नयन किसी पर्वतीय बदली के समान बरसने लगे। उनकी बूँदाबांदी से सुदामा बच नहीं पाए।
''प्रिये! मेरे पास बैठो।'' सुदामा ने अपना दायाँ हाथ सुमति की ओर बढ़ाया।
सुमति दाएँ हाथ से थाली पकड़े रही और उसने अपना बायाँ हाथ सुदामा की ओर झुला दिया। सुदामा ने उसका हाथ सपे्रम पकड़ा और अपनी ओर दबाव बनाते हुए बहुत ही कोमलता से खींचते हुए बोले, ''अब बैठ भी जाओ प्रिये, एक तुम ही तो हो जिसके बल पर मैं स्थिर हो ज्ञान-साधना कर रहा हूँ। यदि मुझे तुम्हारा अमूल्य सहयोग प्राप्त न हो तो मैं क्या कर सकता हूँ। मुझे तो इस शरीर का ध्यान रखने की भी सुध नहीं है।''
''मैं केवल एक बात जानती हूँ कि धनीराम जैसे अनेक धनी लोग आपके पास तब आते हैं, जब वे अपने स्वार्थी और बोझिल जीवन से व्याकुल हो जाते हैं। आपके पास आकर वे शांति प्राप्त करते हैं। प्रत्येक व्यथित आपके पास आकर शांति पाएगा, यह मैं जानती हूँ।''
''क्यों, मुझमें ऐसी क्या विशेषता है?'' सुदामा मंद-मंद मुसकराए। उन्हें इस बात का संतोष हुआ कि सुमति का आक्रोश कुछ कम हुआ है।
''क्योंकि आप पूरे अस्तित्व के प्रति पे्रमपूर्ण हैं। आप प्रेम के लिए पे्रम करते हैं। सदा संसार के मंगल का ही विचार करते हैं। सदा शुभ का विचार करते रहने के कारण आपके आभा-मंडल में शांति के परमाणु वृत्ताकार घूमते रहते हैं और जो भी उसके संपर्क में आता है, वह तृप्त हुए बिना नहीं रहता।''
''मेरे संपर्क में सबसे अधिक तुम हो और तुम ही सबसे अधिक अतृप्त हो।'' सुदामा कह तो गए, किंतु कहने के बाद पछताए कि अब उनकी इस व्यंग्योक्ति से आहत होकर उनकी पत्नी का शांत हुआ मन विस्फोटक हो जाएगा।
''नहीं, मैं सबसे अधिक तृप्त हूँ। आपको ज्ञान-साधना करते देख तृप्त हूँ।''
सुदामा को आश्चर्य हुआ कि उनकी बात से सुमति कुपित नहीं हुई।
''तो फिर यदा-कदा क्रुद्ध क्यों हो जाती हो?''
''इसलिए कि संसार आपकी प्रतिभा का महत्त्व नहीं समझ रहा। अभी स्वयं सेठजी यह स्वीकार करके गए हैं कि आपकी उपस्थिति में वे ऊँचाइयों का अनुभव करते हैं। उन्हें आपकी सरलता और सहजता तो दिखाई देती है, किंतु आपकी स्पष्ट निर्धनता और उनसे कुछ माँगने के आड़े आता आपका स्वाभिमान उनको दिखाई नहीं पड़ता।''
''अरी भाभी, जब आपको मैं ही दिखाई नहीं दे रहा, जो कि आपके इतने निकट खड़ा हूँ तो किसी को सुदामा की निर्धनता कहाँ दिखेगी!'' रामदास हँसा।
''ओह! राम भैया, क्षमा करना। इनसे तनिक शास्त्रार्थ करने बैठ गई थी। आप कब आए, यह तो मैं देख ही नहीं पाई। मैं आपके लिए जल लाती हूँ।'' सुमति हड़बड़ाई।
''बैठी रहो भाभी! जलपान करातीं तो बात भी थी। जल तो मैं कहीं भी पी लूँगा। मैं प्राय: यह सोचता हूँ कि आपके

गाँव का नाम मायापुरी क्यों रखा गया। इसका नाम निर्धनपुरी होना चाहिए। यहाँ सभी निर्धन हैं। जिनके पास धन है, वे कृपण हैं और जिनके पास धन नहीं है, उनकी तो बात ही क्या करनी। वे अतिथि को दाल-भात भी नहीं खिला सकते।'' रामदास ने ठहाका लगाया।

सुमति सुबक पड़ी।

''अरे भाभी, आप तो...मैं तो परिहास कर रहा था।'' रामदास हकलाया।

''परिहास या देवी अन्नपूर्णा का अपमान!'' सुदामा सुमति के आहत हृदय को प्रसन्न करने के उद्देश्य से हँसे।

''मैं क्षमा चाहता हूँ, भाभी! प्यास तो मुझे लगी ही है। वह तो मैं चर्चा के मध्य आपको उठाना नहीं चाहता था।'' रामदास ने सुदामा की बात पर ध्यान नहीं दिया और वह सुमति से संबोधित हुआ। वह यह अनुभव कर रहा था कि उसने सुमति को आहत कर दिया है। आँखोंवाले को अंधा कहो तो उसे ठेस नहीं पहुँचती, परंतु यदि अंधे को अंधा कहा जाए तो वह पीड़ा घाव पर पैर रख देने जैसी होती है।

''मैं आपके कथन के कारण दु:खी नहीं हूँ।'' सुमति ने अपने अश्रु पोंछे, ''स्त्री को अन्नपूर्णा कहा जाता है। इस अन्नपूर्णा का दुर्भाग्य देखिए, यह अपूर्णा बनी हुई है। अतिथि सत्कार के लिए घर में यथोचित न्यूनतम अन्न भी नहीं है। थोड़ा सा भिंडी-कचरी का साग है और थोड़ा सा ही भात। अभी बच्चे खेलकर आएँगे तो यही प्रसाद पाकर उनको तृप्त होना पड़ेगा।''

''मैंने अभी देखा कि सेठ धनीराम का रथ मुझ पर धूल उड़ाता निकला। उसकी धूल तो बहुत पीछे छूट गई, पर प्रभाव यहाँ पर अभी भी दिखाई पड़ रहा है। वही झगड़ा चल रहा है न?'' रामदास ने सुमति का मन दुखाने के प्रायश्चित्त-स्वरूप उसका पक्ष लिया और सुदामा की ओर देखकर बोला, ''एक बात बताओ, सुदामा! भाभी इसमें क्या अनुचित कहती है? धनीराम से कह दो कि मैं आपको शांति देता हूँ, आप मुझे धन के रूप में संतोष दिया करें। यह तो स्वाभाविक आदान-प्रदान है। जिसके पास जो है, वह उससे एक-दूसरे का सहयोग करे। वे व्यापारी हैं। वस्तु विनिमय प्रणाली से परिचित होंगे ही।''

''सुमति के हठ के कारण मैंने एक बार बहुत कठिनाई से परिहास के रूप में कहा था कि आप मुझे धन-प्राप्ति का सूत्र दीजिए।''

''तो जानते हैं, सेठजी ने इनसे क्या कहा?'' सुमति ने सुदामा को और बोलने नहीं दिया, ''वे बोले कि भैया सुदामा, धन तो ईश्वरीय देन है। रामजी ही दें तो दें। मेरे पास ऐसा कोई सूत्र नहीं है, जिससे मैं धन कमाने का मार्ग तुम्हें बता सकूँ।...वे अनेक धार्मिक संस्थाओं को स्वर्ण-मुद्राओं की थैलियाँ देते हैं तो जिससे इतना प्रेम करते हैं, उनको कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ देने का भाव उनके मन में कभी क्यों नहीं आता? उनको यह भाव होना चाहिए कि मित्र सुदामा, तुम ज्ञानार्जन का सुंदर कार्य कर रहे हो। तुम निश्चित रहो और मेरी ओर से सहयोग-राशि के रूप में प्रति माह कुछ भेंट स्वीकार करो। इसे मेरा उपकार नहीं अपितु तुम्हारे द्वारा किए जा रहे ज्ञान रूपी यज्ञ में मेरी भी आहुति मानना।''

''है तो यह अति सुंदर भाव। और अनेक कलाप्रेमी धनियों ने इस प्रकार की सहयोग-राशि का प्रचलन भी किया हुआ है।'' रामदास तपाक से बोला। उसे इस बात का संतोष था कि उसने सुमति के घाव पर औषधि लगा दी है और उसका वह घाव भर गया है, जो उसकी वाणी से हुआ था। उसने सुदामा की ओर देखा और बोला, ''मैंने सुदामा से यह भी कहा कि तू मेरे साथ चल। एक सेठजी के बालकों का मैं शिक्षक हूँ। वे अनेक विद्वानों को प्रत्येक अमावस्या को एक निश्चित वृत्ति देते हैं। उनसे कहकर मैं सुदामा के लिए कुछ धनराशि बँधवा दूँगा। उससे कम-से-कम तुम लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति तो हो ही जाएगी।'' उसने सुमति की ओर देखा, ''पर

यह हठी है। कहता है कि मैं ज्ञान का उपासक हूँ, भिक्षुक नहीं हूँ। इसे कौन समझाए कि वह भिक्षा नहीं है। ब्राह्मण यदि समाज के कल्याणार्थ ज्ञान-साधना में संलग्न है तो उसका ध्यान रखना तो समाज का ही धर्म है।''

''आप उचित कह रहे हैं, भैया! पर किसी सेठ के द्वारा जाकर अपने परिवार के भरण-पोषण की याचना करना तुम्हारे ज्ञानी मित्र की दृष्टि में भिक्षा पाना ही है।'' सुमति धीरे से बोली।

''और तुम्हारी दृष्टि में?'' रामदास ने अपनी दृष्टि सुमति पर टिका दीं।

सुदामा भी सुमति की ओर देखते रहे, पर सुमति अपनी अँगुली से कच्ची भूमि पर 'ऊँ' लिखती रही। एक मौन छा गया।

''मेरी दृष्टि में भी यह भिक्षा पाना ही है। किंतु जब घर की दुर्दशा देखती हूँ तो लगता है कि जब रामजी ने हमारे लिए भिक्षा माँगना ही नियत कर रखा है तो फिर कैसा संकोच? कैसा आत्माभिमान? कैसा स्वाभिमान?'' आंशिक मौन को भंग कर सुमति बोली, ''यह राम की ही इच्छा है कि हम भीख माँगें। हमें अन्न, वस्त्र और आवास का अभाव सालता रहे। हम दुर्दिनों से घिरे रहें और अभावों में आकंठ डूबे रहें।''

''मैंने तो ऐसा कभी नहीं चाहा, भाभी!'' रामदास ने परिवेश की गंभीरता को कम करने के उद्देश्य से कहा, ''मैं तो पहले से ही रामदास हूँ। आपके लिए जाने 'राम' ऐसा क्यों कर रहे हैं?''

''आज आपके मित्र जैसा गुणवान्, विद्वान् और सदाचारी पुरुष सौ-सौ योजन तक खोजे नहीं मिलेगा।'' सुमति ने रामदास के विनोद पर ध्यान नहीं दिया और अपने प्रवाह में बोलती गई, ''अज्ञानी जन बड़े-बड़े गुरुकुलों में आचार्य के पद पर शोभित होकर प्रचुर धन अर्जित कर रहे हैं। वे सुदामा से शास्त्रों का मर्म पूछने आते हैं। अपनी समस्याओं का समाधान पाएँगे और विदा हो जाएँगे। क्या उन अल्पज्ञों को सुदामा का दारिद्र्य दिखाई नहीं देता? क्या शासन चलानेवालों का यह धर्म नहीं है कि वे अपने वैभवपूर्ण प्रासादों से निकलकर सच्चे ज्ञानियों को खोजें और उनकी नियुक्ति गुरुकुलों में करें। गुरुकुलों में बड़ी-बड़ी उपाधियाँ लिये ज्ञान के दस्यु भरे पड़े हैं और जिस प्रकार रावण ऋषियों को खा जाता था, इसी प्रकार ये ऋषियों को खा रहे हैं। रावण का एक ही ध्येय था कि आर्य-संस्कृति जिस मानवता के गुण की उपासक है, वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाए और उसने पूरे प्रयास भी किए।''

''रावण किस प्रकार ऋषियों को खाता था?'' रामदास ने जिज्ञासा की ।

''ज्ञानी व्यक्ति को कार्य करने का अवसर न देना और उन सभी संभावनाओं को समाप्त कर देना, जिनसे वह विकास पाए—यही ऋषि को खा जाना कहते हैं। आज ज्ञान के क्षेत्र में रावण ही बैठे हैं। प्राचीन ऋषियों की वाणी को पाठ्यक्रम से हटाकर उन्होंने अपनी अनर्गल प्रलाप करती रचनाओं को पाठ्यक्रम में स्थान दे दिया है। विद्यार्थी को निष्प्राण साहित्य पढ़ाया जा रहा है।'' पुनः सुमति की आँखें भर आईं, ''आश्चर्य! महान् आश्चर्य कि जिस सुदामा को ज्ञान-क्षेत्र के सर्वोच्च पद पर होना चाहिए था, उसे जीवन-यापन करने के लिए अन्न भी उपलब्ध नहीं हो पाता। अनेक बार रात को खगोल में तारों को देखकर सोचती हूँ कि क्या हमारे भाग्य का कोई तारा इनके आँगन में नहीं है? क्या हमें बनाते समय परमात्मा हमारा सौभाग्य रचना ही भूल गया? वह इतना क्रूर कैसे हो सकता है?'' सुमति रुकी। उसने अपनी डबडबाई आँखें पोंछीं और बोली, ''परंतु वह क्रूर है। मैं क्यों मानूँ कि वह दया का सागर है? उनके लिए होगा वह दया का सागर, जिनको वह सबकुछ देता है। जिनका वह सबकुछ छीन लेता है या जिनको वह कुछ भी देता नहीं, वे कहकर दिखाएँ कि वह दया का सागर है तो मैं मानूँ। संसार में ऐसा एक भी जीव तुम्हें नहीं मिलेगा।''

''ऐसे अनेक मनुष्य हैं भाभी, जिनका रामजी ने सबकुछ हर लिया—धन, वैभव, मान-सम्मान। दूसरे शब्दों में कहा

जाए तो उनका सबकुछ ले लिया—सबकुछ। कहीं का उनको नहीं छोड़ा। सम्राट् थे—दासों का भी दास बनाकर अनाथों के समान भटकने को छोड़ दिया। दास बनाकर भी उसे संतोष नहीं हुआ। दासत्व में भी अपार कष्ट दिया; किंतु उनके मुख से वेदना के रूप में 'आह' तक न निकली। उलाहने के रूप में उन्होंने कभी रामजी को यह नहीं कहा कि क्रूर हैं। वे तो सदा यही कहते रहे कि तू प्रेम और करुणा का महासागर है। इस संसार में एकमात्र वे ही मनुष्य हैं, जो वास्तव में जिस प्रकार राम उनको रख रहा है, उसी परिस्थिति से राजी होकर वे आनंदित हो उसके गीत गा रहे हैं।''

''ऐसा कौन हो सकता है?'' सुमति के मुख पर अविश्वास के साथ ग्लानि का भाव प्रकट हुआ।

''पांडव!'' रामदास बोला, ''कुछ ही दिन पहले उन्होंने अपना अज्ञातवास पूरा किया है और देखो, वह दुष्ट दुर्योधन कहता है कि समय से पूर्व उसके द्वारा खोज लिये गए हैं। जबकि भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर और श्रीकृष्ण भी इस बात को प्रमाणित कर चुके हैं कि नियत तिथि से पूर्व नहीं खोजे गए हैं। उन पांडवों की ओर देखोगी तो भाभी, तुम पाओगी कि कष्ट भोगने में तुम उनकी तुलना में कहीं पर भी नहीं हो। महारानी द्रौपदी को अपने ही घर में कुल-वृद्धों के सम्मुख भरी सभा में अपमानित होना पड़ा। राजा विराट के यहाँ रानी की दासी का कार्य करना पड़ा। सम्राट् धर्मराज युधिष्ठिर को राजा का दास बनना पड़ा। महाबली भीम को रसोइया और नकुल तथा सहदेव को पशुओं का रक्षक बनना पड़ा। तुम्हें जानकर आश्चर्य होगा कि विश्व के महान् धनुर्धर सव्यसाची अर्जुन को नपुंसक के रूप में राजा विराट की पुत्री का नृत्य-शिक्षक बनना पड़ा और तुम कहती हो कि रामजी क्रूर हैं? उन लोगों से पूछो तो वे बताएँगे कि क्रूरता क्या होती है, अपमान क्या होता है और हरण क्या होता है? और घोरतम दुर्दशा क्या होती है?''

रामदास चुप हो गया। सुदामा और सुमति यह सुनकर स्तब्ध रह गए थे।

''देखो सुमति!'' सुदामा ने वातावरण की स्तब्धता को भंग किया, ''अपनी बात पर टिकी रहना। अभी तुमने स्वयं कहा है कि मेरे जैसा गुणवान्, विद्वान् और सदाचारी पुरुष सौ-सौ योजन तक खोजे नहीं मिलेगा।...यदि परमात्मा क्रूर होता तो वह यह ज्ञान की अमूल्य निधि मेरी झोली में डालता क्या? उसने हमें निर्धन नहीं, वरन् धनवान् बनाया है। उसने ज्ञान-धन की संपदा हमें दी है। अभी जिन तथाकथित ज्ञानियों को कोस रही थीं, तनिक सोचो कि उसकी कितनी बड़ी कृपा है कि उसने तुम्हारे सुदामा को धन-पिशाच न बनाकर ज्ञान-पिपासु बनाया है और तुम कह रही हो कि वह क्रूर है। हमारे समान अनेक अन्य निर्धन परिवारों का मुखिया जो कुछ अर्जित करता है, संध्या समय उसकी मदिरा पीकर घर आता है, पत्नी और संतान को पीटता है, अपशब्द कहता है। परमात्मा दयालु है कि उसने तुम्हारे सुदामा को यह सब मल नहीं दिया। तुम देखने की दृष्टि बदलो। हम जो देखना चाहते हैं, वही देख लेते हैं। अभी तुम यह देखना आरंभ करो कि परमात्मा ने तुम्हें क्या-क्या दिया है तो तुम पाओगी कि बहुत कुछ दिया है। दूसरे शब्दों में कहूँ तो सबकुछ दिया है—केवल उस धन को छोड़कर, जिसको पाने के लिए हमने ही कोई पुरुषार्थ नहीं किया।''

''और भाभी, यह भी नहीं है कि सुदामा भाई धन नहीं कमा सकते। मैं तो देखता हूँ कि इनके जैसा प्रतिभाशाली पुरुष यदि अपनी ऊर्जा को धन कमाने में लगाए तो वह अकूत धन-संपदा का भंडार खड़ा कर दे।'' रामदास बोला, ''परंतु सुदामा भाई की अंतर्मुखी प्रकृति उन्हें वह सब करने नहीं देती। यदि वे कुछ समय के लिए अपने आत्मसम्मान को एक ओर रख दें तो फिर देखिए, सुदामा के आँगन में धन की वर्षा।'' उसने सुदामा की ओर देखा, ''देखो बंधु! मैं तुम्हारे समान ज्ञान का सागर नहीं हूँ, अन्यथा मेरे घर की चौखट स्वर्ण की होतीं। तुम यदि

'हाँ' कहो तो फिर देखो, मैं तुम्हारे द्वार पर धनवानों की पंक्तियाँ लगवा दूँगा। तुम उनको उनके व्यापार और परिवार के कुशल-क्षेम के शास्त्र-सम्मत उपाय बताते रहा करना और मैं तुम्हारे नाम पर दक्षिणा बटोर कर अपना और तुम्हारा जन्म सफल करता रहूँगा।''

''धनवानों की पंक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि ये चाहें तो इनके लिए तो सेठ धनीराम ही पर्याप्त हैं। वे धनवानों के भी धनवान हैं।'' सुमति बोली, ''पर कभी उनके मन में भी परमात्मा ने यह नहीं डाला कि धनीराम तूने न जाने कितने आश्रम और धर्मशालाएँ बनवाईं, एक सुदामा का घर भी बना दे तो तेरा क्या जाएगा। तेरे पास जो कुछ है, वह मेरा ही तो दिया है।''

''एक बात बताओ सुदामा, कि तुम तो धनवानों को अहंकारी मानकर उनके निकट ही नहीं जाना चाहते हो। फिर सेठ धनीराम में क्या बात है?'' रामदास ने पूछा।

''धनीराम का मन परमात्मा की ओर है। धनीराम में धन की नहीं, ज्ञान की प्यास है और इसीलिए वह मुझे प्रिय हैं। मैंने धनीराम के स्तर के अनेक धनी देखे हैं, जो सूर्यास्त होते ही मदिरालयों, वेश्यालयों और द्यूतालयों में पड़े होते हैं। धन उनको विकृतियों के गर्त में धकेल देता है।'' सहसा सुदामा का स्वर प्रशंसात्मक हो गया, ''पर सेठ धनीराम को देखो। वह अपने अवकाश के समय को परमात्मा की ओर लगाते हैं। इससे उनके स्वभाव का पता चलता है। यदि मनुष्य का स्वभाव जानना हो तो यह देखो कि वह अपने नितांत अवकाश के समय को किस उपयोग में ले रहा है।...फिर हमारी मित्रता का आधार व्यापार नहीं है, ज्ञान है। अब तुम भी मेरे मित्र हो। तुम मेरे पास आते हो—हम तुम्हें कभी भोजन भी नहीं करा पाए। यदि कभी कहा भी तो तुमने या तो यह सोचकर अस्वीकार कर दिया होगा कि हमारे भोजन में से कुछ भाग ग्रहण करके तुम हम पर अन्याय करोगे या फिर रूखा-सूखा भोजन जानकर तुमने अपनी अरुचि प्रकट कर दी होगी। अभी तुमने कहा भी कि तुम लोग केवल जल ही पिलाते हो, जलपान नहीं कराते। इन सबके बाद भी तुम्हारा यह सोचकर हमारे पास आना बंद तो नहीं हुआ कि सुदामा के यहाँ तो खाने को भी नहीं मिलेगा। हमारी मित्रता प्रेम और ज्ञान के सूत्र में पिरोई हुई है। उसमें अन्य वस्तुओं का सहयोग स्वत: हो जाए तो वह अलग बात है। पर हमें उस सहायता पर आश्रित नहीं रहना चाहिए।''

''क्या यह सत्य नहीं है कि धनी की मित्रता धनी से ही होती है?'' रामदास ने जिज्ञासा की, ''मैं तो आज तक यही मानता आया हूँ कि निर्धन की धनी से मित्रता हो ही नहीं सकती। इस विषय को कुछ विस्तार से समझाओ। मुझे बताओ कि सत्य क्या है?''

''सत्य यह है कि धन अनेक प्रकार का होता है। ऐसा कभी नहीं होता कि परमात्मा किसी को सर्वथा निर्धन बनाकर भेजे। यह बात अलग है कि उस धन के रूप अलग हों। किसी को उसने बल रूपी धन दिया, किसी को सौंदर्य रूपी, किसी को स्वास्थ्य रूपी, किसी को ज्ञान रूपी, किसी को भक्ति और प्रेम रूपी धन दिया, किसी को केवल स्वर्ण दिया और उसी को सारा संसार एकमात्र धन मान बैठा है। इसलिए यह बात स्मरण रखो कि परमात्मा ने किसी को भी निर्धन नहीं बनाया। यहाँ सभी धनवान् हैं। जैसे ऊर्जा केवल अपना रूप बदल रही है, वैसे ही धन भी अपना रूप बदल रहा है।'' सुदामा के स्वर से यह ध्वनित हो रहा था कि वे सुमति को यह समझाना चाह रहे हैं। उन्होंने सुमति की ओर देखा और बोले, ''तुम्हें किसी भी निष्कर्ष तक पहुँचने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए और ऐसा कृतघ्नतापूर्ण कथन भी नहीं कहना चाहिए कि रामजी क्रूर हैं। कभी माँगना होगा तो रामजी से ही माँगेंगे। फिर सोचता हूँ कि रामजी से धन जैसी तुच्छ वस्तु क्या माँगनी। उनसे ज्ञान माँगूँगा।''

''अर्थात् वह माँगोगे जो तुम्हारी रुचि का है। यह भी तो लोभ है, सुदामा!'' रामदास के स्वर में आवेश था, ''ज्ञान

के साथ यदि तुम स्वर्ण भी अर्जित कर लोगे तो न तो अपवित्र हो जाओगे और न कुरूप। वैसे निर्धनता से बड़ी कुरूपता कुछ नहीं है। निर्धनता पाप है, सुदामा! और तुम यह पाप नित्यक्रम की भाँति करते हो। तुम्हें निर्धन रखने के पीछे परमात्मा का कोई षड्यंत्र नहीं है। यह सब तुम्हारा ही आलस्य है।''

''तुम उचित कहते हो। यह दोष परमात्मा का नहीं, मेरा है। मैं ही अपने को किसी की चाकरी करने के योग्य नहीं पाता हूँ। मैंने कभी किसी के द्वार पर कुछ भौतिक उपलब्धि पाने के लिए उसके घर की परिक्रमा नहीं की। अयोग्य तो मैं हूँ ही।'' सुदामा ने दु:खी मन से सुमति की ओर देखा और धीरे से बोले, ''मैं तुम्हारा भर्ता होने के लिए हुआ था, किंतु तुम्हारे सुखों का हर्ता हो गया।''

''यदि आप माँ के हृदय से देखें, गृहिणी के बोध से सोचें तो पाएँगे कि मैंने कुछ भी अनुचित नहीं कहा है। हाथ जोड़े हम रामजी को और लड़ने-कोसने जाएँ पड़ोसियों को। क्यों? हमारा दायित्व रामजी पर है। वे चाहें तो क्या नहीं कर सकते। जब उन्होंने आपको ऐसी प्रकृति दी है तो वैसी ही वृत्ति का प्रबंध भी उनको आपके लिए करना होगा। जब वे अजगर और मकड़ी तक का ध्यान रख सकते हैं तो उन्हें एक सुदामा ही दिखाई नहीं देता। उन्हें नहीं सुनाएँगे तो क्या रामदास भैया को सुनाएँगे। ये तो पहले से ही राम के दास हैं।'' सुमति को लगा कि उसने अपने मनोभावों को प्रकट करके सुदामा को आहत किया है, इसलिए उसने अपने स्वर को सहज बनाने का प्रयास किया और रामदास की ओर देखकर बोली, ''एक बात बताइए भैया! मैं इनसे कहती हूँ कि यदि आप किसी अहंकारी से कुछ याचना नहीं करना चाहते तो यादव कुल शिरोमणि श्रीकृष्ण से ही जाकर कुछ माँग आइए। वे यदि अपने कंठ से मोतियों की एक माला भी उतारकर दे देंगे तो हमारा जीवन सुधर जाएगा। मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा वर्ग उनको साक्षात् नारायण का अवतार मानने लगा है। उनके भक्त उनको भगवान् कहते हैं। अब जब कि भगवान् स्वयं देहधारी होकर आए हैं और आप उनके मित्र भी हैं, उनको अच्छी तरह जानते भी हैं तो क्यों नहीं उनको अपनी वस्तुस्थिति बता आते।''

''तुम ऐसी ओछी बात सोच भी कैसे लेती हो, सुमति? तुम स्वाभिमानी सुदामा की पत्नी हो। यह तो मेरा अंतरंग मित्र रामदास है। यदि कोई और होता तो क्या सोचता? नहीं, तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।'' सुदामा ने अपनी आँखें मूँद लीं और अपनी दोनों हथेलियों को सिर के पीछे फँसाकर, पीठ के पीछे रखी गुदड़ी का सहारा ले आकाश की ओर गरदन उठा ली।

''सुदामा, श्रीकृष्ण को जानता है?'' रामदास के स्वर से यह पता नहीं लगा कि वह इस बात को सुनकर आश्चर्यचकित हुआ है या इस कथन पर अपना अविश्वास व्यक्त कर रहा है।

''तुम भी रामदास!'' सुदामा ने अपनी आँखें खोलीं और सीधे बैठ गए, ''तुम अपनी भाभी की बातों पर कान मत दो। इसका क्या है, कुछ भी कह देती है।''

''क्यों, क्या आप श्रीकृष्ण को नहीं जानते?'' सुमति ने रुष्ट स्वर में कहा।

सुदामा हँसने लगे।

''हँस क्यों रहे हो, भाई! इसमें हँसने जैसी क्या बात है?'' रामदास को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि ये पति-पत्नी कैसी बातें कर रहे हैं और इनका कैसा व्यवहार हो गया है। सत्य ही है कि निर्धनता में बुद्धि फिर जाती है।

''इसमें हँसने जैसी कोई बात नहीं; किंतु इस बात को सुनकर विनोदपूर्ण बात स्मरण हो आई। तुम भी सुनो। नहीं तो कहोगे कि सुदामा ने दाल-भात तक खिलाना तो दूर रहा, एक हँसी की बात उसके पास थी और उससे भी उसने मुझे वंचित रखा। निर्धन के साथ-साथ मैं कृपण होने का विशेषण नहीं ढोना चाहता हूँ।'' सुदामा अभी भी हँस रहे

थे। पर उनकी हँसी कह रही थी कि वह किसी पीड़ा को ढाँपने का आवरण मात्र है। हँसी को थामकर सुदामा ने कहा, ''एक बार मेरे जैसा एक निर्धन अपने से थोड़े कम निर्धन के पास गया और बोला कि मित्र, मैंने सुना है कि तुम यहाँ के राजा को जानते हो। किंतु स्वाभिमानी होने के कारण तुम उससे सहायता माँगने कभी नहीं जाते। यदि तुम राजा के नाम एक पाती लिख दो तो हो सकता है कि राजा मुझे किसी राजकीय सेवा में स्थान प्रदान कर दे। अपने लिए न सही, पर परोपकार की भावना से मेरे लिए तो यह काम कर दो। उसके मित्र ने कहा कि उसे कोई आपत्ति नहीं और उसने राजा के नाम एक पाती लिख दी कि वह अपने मित्र को आपकी सेवा में भेज रहा है। आशा है कि आप इसे राजकीय सेवा में स्थान देकर अनुगृहीत करेंगे।...जब वह राजा के यहाँ पहुँचा तो ऐसे खदेड़ा गया जैसे जंगल का सियार यदि भूल से नगर में प्रवेश कर जाए और वहाँ के कुत्ते उसकी जो दुर्गत बनाते हैं।'' सुदामा हँसने लगे और फिर अपनी हँसी को संयत कर बोले, ''लौटकर आने के पश्चात् उसके मित्र ने कहा कि भाई, तुम तो कहते थे कि तुम राजा को जानते हो। पर मेरे साथ जो बनी उसको देखकर तो यह कहा नहीं जा सकता कि तुम राजा को जानते हो।... उसके मित्र ने कहा कि देखो भाई, मैंने असत्य नहीं कहा था कि मैं राजा को नहीं जानता। मैं अब भी यही कहता हूँ कि मैं राजा को जानता हूँ। पर राजा मुझे जानता है या नहीं, यह दूसरी बात है। राजा मुझे नहीं जानता, मैं राजा को जानता हूँ।''

''किंतु यहाँ ऐसी बात नहीं है। श्रीकृष्ण आपको जानते हैं और आप श्रीकृष्ण को। दोनों ने गुरु संदीपनि के आश्रम में एक-साथ समय बिताया है। और आप कह रहे हैं...''

''...शांति...शांति...शांति!'' रामदास चीखा, ''कहीं ऐसा तो नहीं कि मुझे बावला बनाने के लिए तुम पति-पत्नी मिलकर यह स्वाँग भर रहे हो? आप कह रही हैं कि श्रीकृष्ण सुदामा के सहपाठी थे!''

''यहाँ हमारा जीवन धूमिल पड़ा है और आप कह रहे हैं कि हम आपको बावला बनाने के लिए यह स्वाँग भरते हैं। स्वाँग वह भरे जिसका पेट भरा हो। भूखे को तो प्रभु का भजन भी नहीं सुहाता और वह आपको सताने के लिए स्वाँग भरेगा।'' सुमति ने जैसे आवेश में आकर रामदास को धिक्कारा।

''क्षमा करना, भाभी!'' रामदास ने हाथ जोड़े, ''यह बात ही कुछ ऐसी है कि कोई भी सरलता से इस पर विश्वास नहीं करेगा। आप स्वयं देखें कि दोनों के मध्य कितना बड़ा अंतर है। एक सम्राटों का सम्राट् है तो दूसरा...'' रामदास ने रुककर सुदामा की ओर देखा और बोला, ''...अन्यथा न लेना मित्र, केवल अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए ही कह रहा हूँ कि एक तो सम्राटों का सम्राट् है और दूसरा निर्धन शिरोमणि।'' रामदास हँसा, ''मैं फिर कह रहा हूँ कि मेरी बात को अन्यथा न लेना। आप स्वयं सोचें कि एक सामान्य स्तर के राजपुरुष के साथ भी यदि किसी विद्वान् की मित्रता हो तो वह कहाँ-से-कहाँ प्रगति कर लेता है।''

''वही तो मैं कह रही हूँ कि यदि ये एक बार श्रीकृष्ण से मिल आएँ तो...''

''...तो मेरा भी उद्धार हो जाएगा।'' रामदास बोला, ''आज तक इसने मुझे कभी यह बात नहीं बताई और कहता मुझे अपना अंतरंग मित्र है। मुझे तो यह बात ही गले नहीं उतर रही कि यदि सुदामा श्रीकृष्ण से इतना परिचित है तो इसने अभी तक उस परिचय का लाभ क्यों नहीं उठाया? यदि कोई किसी राजपुरुष के द्वारपाल को भी जानता है तो वह उस तक का भरपूर लाभ उठाता है और अपना प्रभाव जमाने के लिए उसकी चर्चा करता है।'' रामदास बोला।

''पहली बात तो यह कि परिचय का उपयोग लाभ उठाने के लिए नहीं होना चाहिए।''

''तो क्या उसका उपयोग हानि उठाने के लिए होना चाहिए?'' रामदास ने सुदामा को आगे बोलने नहीं दिया,

''सुदामा, तुम किस संसार में रहते हो? कैसी व्यर्थ की मान्यताओं को तुम ढो रहे हो? परिचय होता ही इसीलिए है कि तुम उसका उपयोग अपने लाभ के लिए करो और परिचय से लाभ उठाना स्वाभाविक है। इसमें कुछ भी अनैतिक नहीं है।''

''मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ।'' सुदामा के स्वर में हठ था।

''तो सहमत होना पड़ेगा।'' रामदास ने अपनी बाईं हथेली पर दाएँ हाथ का मुक्का बनाकर मारा।

''क्यों?''

''क्योंकि मैं सही हूँ और मैं अपने सही होने को अभी प्रमाणित करता हूँ कि परिचय का उपयोग लाभ के लिए होना कुछ अनैतिक नहीं है। हाँ, अनैतिक कार्य करवाने के लिए परिचय का लाभ उठाना अनुचित है। ये दोनों बातें अलग हैं और तुमने उन दोनों को मिला लिया है।'' रामदास आवेश में आ गया, ''मानकर चलो कि तुम नगर से गाँव की ओर आ रहे हो और सेठ धनीराम का रथ मार्ग से जाता हो। ऐसे में दो स्थितियाँ हो सकती हैं। पहली यह कि धनीरामजी सुदामा को अपना परिचित जानकर रथ रोक लें और कहें कि आइए सुदामाजी, मैं आपको ग्राम तक छोड़ दूँ। दूसरी स्थिति यह है कि तुम धनीरामजी का रथ आते देखकर उनसे गाँव तक की यात्रा के लिए रथ का सहयोग लो। दोनों ही स्थितियों में परिचय का लाभ मिलना स्वाभाविक है। मार्ग में अनेक पथिक जा रहे हैं और सभी के लिए धनीराम अपना रथ रोकनेवाले नहीं हैं। दूसरे पक्ष से देखें तो अनेक रथ जा रहे हैं, पर सुदामा धनीराम के अतिरिक्त किसी अपरिचित को अपने रथ पर बिठाने के लिए नहीं कह रहा। जहाँ परिचय होता है, वहीं सहायता की अपेक्षा की जाती है।''

''राम भैया, आपने तो बहुत ही सुंदर बात कही है।'' सुमति ने प्रभावित होकर कहा।

''धन्यवाद भाभी! वैसे मैं सदा सुंदर बातें ही कहता हूँ। यह बात दूसरी है कि मेरी सुंदरता यह सुदामा देख नहीं पाता।''

''तो बताइए कि मेरा यह आग्रह कि ये श्रीकृष्ण से भेंट करने जाएँ, क्या अनुचित है?'' सुमति ने सुदामा की ओर देखते हुए रामदास से कहा।

''अनुचित इसका न जाना होगा। श्रीकृष्ण तो पुरुषार्थ करने के इतने अधिक पक्षधर हैं कि उनके इस चिंतन के कारण वे यादव, जो कल तक कुछ नहीं थे, सर्वोच्च शक्ति का गौरव पाए हुए हैं। इस समय यादवों का वर्चस्व अपूर्व है। ऐसे यादव शिरोमणि हमारे सुदामा के मित्र हैं, यह तो स्वप्न जैसी बात है।''

''और मैं चाहती हूँ कि ये इस स्वप्न को साकार करें।'' सुमति ने जैसे अपना निर्णय सुनाया, ''इन्होंने आज तक किसी के आगे अपना हाथ नहीं फैलाया। मैं ही गाँव के मुखिया की गौओं की सेवा करके जो थोड़ा-बहुत अन्न ले आती हूँ, उससे किसी प्रकार घर का भरण-पोषण हो जाता है। यदि कोई त्योहार आ जाए या मीनू अहीरन के घर का कोई पारिवारिक उत्सव हो तो कुछ मिष्टान्न और वस्त्र भी मिल जाता है। मेरे पिता ने इनके साथ इनकी विद्वत्ता को देखकर ही विवाह किया था। उनका यह मानना था कि सुदामा संदीपनि गुरु के शिष्य हैं। एक दिन इनका अपना गुरुकुल होगा। यदि यह भी नहीं हुआ तो ये कुलपति तो अवश्य बनेंगे।''

''वे संभवत: यह नहीं जानते थे कि सुदामा एक साधारण पति भी नहीं बन सकेगा। यदि वे जानते कि सुदामा उनकी बेटी के श्रम पर परजीवी के समान जीवन व्यतीत करेगा तो वे निश्चित रूप से अपनी बेटी मुझे न देते।'' सुदामा का स्वर व्यथित था।

''देखिए, यह उचित नहीं है। मैं कहे देती हूँ कि यह उचित नहीं है।'' सुमति की आँखें डबडबा आईं, ''आप न तो

मेरे पिता के लिए यह असंगत टिप्पणी देकर उनका अपमान कर सकते हैं और न स्वयं को अयोग्य पति कहकर अपना।''

रामदास अवाक् हो सुमति की ओर देखता रहा। यह कैसी विचित्र पत्नी है कि अपने पति को अप्रत्यक्ष रूप से धिक्कारती भी है और उसके मान-सम्मान पर आँच भी नहीं आने देती।

''मेरे पिता को यदि यह सब ज्ञात होता तो भी वे मुझे आपको ही ब्याहते। इसका प्रमाण यह है कि आज तक एक बार भी उन्होंने आपको कभी यह उलाहना दिया कि क्यों आपने उनकी बेटी को दासी से भी गई-बीती बना रखा है? आपकी भावनाओं का सम्मान करते हुए उन्होंने हमारे लिए वह भेंट भी भेजनी बंद कर दी, जो एक पिता का आनंद और एक पुत्री का सुख होता है। मेरी अन्य दो बहनों के पति धनपति हैं, पर कभी भी मेरे पिता ने उनके साथ इनकी तुलना नहीं की। वे तो सदा यही कहते रहे हैं कि सुदामा तो सरस्वती-पुत्र है। वह हंसों की सवारी करता है। लक्ष्मी ढोनेवाले तो प्राय: उलूक सवार होते हैं। अपनी दोनों बहनों के पतियों की धन में आसक्ति को देखकर मैंने ही अपने पिता ये यह इच्छा प्रकट की थी कि वे यदि मुझे सुखी देखना चाहते हैं तो किसी ज्ञान-उपासक को मेरे स्वामी के रूप में खोजें। मेरी इच्छा उन्होंने पूरी की ।'' सुमति ने सुदामा की ओर देखा और बोली, ''इसलिए आप मेरे पिता को दोष न दें। साथ-ही-साथ स्वयं को अयोग्य पति भी न कहें। यह आपका स्वभाव है या कुछ और, पर आप चाकरी नहीं कर सकते। आपका स्वभाव ज्ञानार्जन है, शोध है और उसके अनुकूल आपको अभी तक कोई पद नहीं मिला। आप मूर्खों के अधीन रहकर उनके अदूरदर्शी निर्णयों की प्रशंसा में करतल-ध्वनि नहीं कर सकते। मैंने आपको कभी अयोग्य पति नहीं कहा और आप भी ऐसा कहकर हम सब का अपमान न करें तो सुंदर होगा। आपके कारण मैं भी वर्षों से अपने मायके नहीं गई।''

''सुदामा के कारण! क्यों? क्या यह मना करता है?'' रामदास ने पूछा।

''इन्होंने कभी मना नहीं किया।''

''तो?''

''जब ये ही अपनी ससुराल नहीं जाएँगे तो मैं जाकर क्या करूँगी? यदि वहाँ गई तो सब एक ही बात पूछेंगी कि उनके जामाता क्यों नहीं आए? तब मैं क्या उत्तर दूँगी और यदि इनको अकेला छोड़कर गई तो इनका कोई विश्वास नहीं कि ये एक पक्ष तक उपवास में ही रहें।'' सुमति ने सुदामा की ओर देखा।

''उपवास में रहने की बात कहाँ से आ गई? इससे अच्छा तो यही है कि आपके साथ ससुराल जाएँ। ससुराल के आतिथ्य की महिमा ही कुछ और है। ससुराल जाकर ही समझ में आता है कि हम भी कुछ हैं। मैं तो प्राय: ससुराल जाता रहता हूँ।'' रामदास सुदामा की ओर मुड़ा, किसी स्वाँग करनेवाले के स्वर में आँखें मटकाते हुए बोला, ''क्यों भाई सुदामा! तुम ससुराल काहे नहीं जाते हो? हम समझ गए। अपनी दुर्दशा दिखाने से उत्तम है कि छिपकर रहो।''

''इसीलिए तो कई बार कह चुकी कि एक बार, बस एक बार श्रीकृष्ण के पास हो आएँ। यदि वहाँ से भी मनोकामना पूर्ण नहीं हुई तो फिर मुझे सौगंध है मेरी संतान की जो मैंने कभी इनसे किसी कार्य को करने के लिए कहा।'' सुमति फफककर रो पड़ी।

''भाभी, रोकर क्यों सुदामा का और अपना मन दुखाती हो। आपके आँसू देखकर मैं भी भारी मन से यहाँ से विदा होऊँगा। आप चिंता न करें। सुदामा आपकी यह इच्छा अवश्य पूरी करेगा।'' रामदास ने जैसे वचन दिया।

''रोओ मत। मैं कृष्ण के पास चला जाऊँगा। पर मेरे एकमात्र प्रश्न का उत्तर दे दो। यदि तुम मेरी उस बात से सहमत हो गईं तो मैं वचन देता हूँ कि मैं कृष्ण से मिलने अवश्य जाऊँगा।'' सुदामा ने एक गहरी दृष्टि सुमति पर

डाली और बोले, ''यदि मैं कृष्ण के द्वार से द्वारपालों के द्वारा अपमानित होकर किसी अवांछनीय पशु के समान भगाया गया या कृष्ण ने ही मुझे पहचानने से मना कर दिया और मुझे दुत्कार दिया तो क्या तुमको अच्छा लगेगा? केवल मेरे इस प्रश्न का उत्तर दे दो।''

सुमति कुछ नहीं बोली। उसकी आँखों से झर-झर अश्रु बहने लगे। उसने अपनी आँखें मूँद लीं। रामदास भी मन-ही-मन यह सोच रहा था कि आज वह भी कैसी विचित्र स्थिति में पड़ गया है। वह देख रहा था कि ज्ञानी सुदामा ने अपनी पत्नी को ऐसी दुविधा में फँसा दिया है कि यदि वह 'हाँ' कहती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसे अपने पति के सम्मान से अधिक धन प्रिय है और यदि वह 'नहीं' कहती है तो सुदामा का कृष्ण के पास जाने से बचने का तर्क जीत गया। वह देख रहा था कि सरल स्वभाव की सुमति को सुदामा ने गहरे धर्म-संकट में फँसा दिया है।

कुशल-से-कुशल दार्शनिक भी ऐसे भावनात्मक शोषण से बच नहीं सकता। उसके मन में आया कि वह सुदामा को डाँट दे और उससे कहे कि यदि तुम्हें कृष्ण के पास नहीं जाना तो सीधे मना कर दो। पर यह क्या हुआ कि इच्छा अपनी और दोषारोपण का षड्यंत्र अपनी पत्नी के लिए रच रहे हो।

''बताओ। अब बोलती क्यों नहीं? क्या तुम्हें अच्छा लगेगा, यदि मैं कृष्ण के द्वार से दुत्कारा जाऊँ?''

''यदि ऐसा हुआ तो भी मुझे संतोष होगा कि आप किसी साधारण संसारी के द्वार से न दुत्कारे जाकर परमात्मा के महाद्वार से दुत्कारे गए हैं। यदि ऐसा हुआ तो मैं सहर्ष यह स्वीकार कर लूँगी कि जिसे राम ने दुत्कार दिया, उसे अब किसी से कोई आशा नहीं रखनी चाहिए।'' सुमति को जैसे आवेश हो आया था, ''यह हमारी भी परीक्षा है और रामजी की भी। एक बार सीता को खोजते-खोजते जब श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण के साथ पंपा सरोवर पहुँचे तो लक्ष्मण ने उनसे उस पवित्र सरोवर में स्नान करने की इच्छा प्रकट की। वे दोनों उस सरोवर में स्नान करने उतरे। उससे पहले उन्होंने अपने धनुष को वहाँ की गीली मिट्टी में गाड़ दिया। स्नान के उपरांत उन्होंने अपने-अपने धनुष अपने कंधों पर रखे और आगे बढ़ गए। श्रीराम को अपने दाहिने पैर पर जल की बूँद टपकने का आभास हुआ। उन्होंने रुककर अपने पैरों की ओर देखा। लक्ष्मण चकित रह गए कि श्रीराम का पैर रक्त-रंजित था। उन्होंने श्रीराम के चरण को अपने उत्तरीय से पोंछा और घाव खोजना चाहा। परंतु कहीं कोई घाव नहीं था। तभी श्रीराम ने देखा कि रक्त की एक बूँद उनके धनुष के सिरे से उनके पैर पर टपकी। उन्होंने अपने धनुष का निरीक्षण किया तो पाया कि उसका वह भाग, जो उन्होंने गीली भूमि में गाड़ा था, रक्त से सना हुआ है। वे लक्ष्मण से बोले, 'लक्ष्मण, जहाँ हमने ये धनुष गाड़े थे, हमें वापस उस स्थान पर लौटकर इसका कारण खोजना होगा।' वहाँ जाकर श्रीराम ने देखा कि जहाँ उन्होंने अपना धनुष गाड़ा था, वहाँ एक रक्त-रंजित मेढक अपनी अंतिम साँसें ले रहा था। श्रीराम ने उस मेढक को उठाया और करुणा भरे स्वर में बोले, 'भाई, जब मैंने धनुष गाड़ा, तब तुमने मुझे क्यों नहीं पुकारा?'

'प्रभु!' मेढक दयनीय रूप से मुसकराकर बोला, 'जब मुझे साँप खाने आता है तो मैं चिल्लाता हूँ कि हे राम! रक्षा करो। अब जब राम ही मुझे मारने पर आ गए हैं तो मैं किसे रक्षा के लिए पुकारूँ? जिसे राम मारने की ठान लें, उसके लिए तो फिर किसी लोक में कोई ठौर नहीं है।' तो यदि भगवान् श्रीकृष्ण ने भी हमें ठुकरा दिया तो हमारी दशा उस मेढक की-सी ही होगी। हम मौन साध लेंगे।''

रामदास को कुछ हो रहा था। वह होना क्या था, उसकी समझ में नहीं आ रहा था। क्योंकि जो कुछ उसे हो रहा था वह होना उसके जीवन में पहली बार ही हो रहा था। उसे लग रहा था कि उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। वह जैसे बिना मस्तिष्क का होता जा रहा था। उसके सोचने-समझने की क्षमता नष्ट होती जा रही थी। उसने चिल्लाना चाहा, पर उसके गले पर जैसे किसी ने पैर रख दिया था। वह चाह रहा था कि सामने बैठा सुदामा उसे धक्का दे, उस पर

अपने पैरों से प्रहार करे जिसके आघात से उसकी लुप्त होती चेतना लौटने लगे। वह सुमति को भी देख रहा था और सुदामा को भी। वे दोनों उसे किसी प्रतिमा के समान निर्जीव दिखाई दे रहे थे। उसका शरीर जड़ होता जा रहा था। उसने अनुभव किया कि कोई अदृश्य ऊर्जा उसके चारों ओर किसी सर्प के समान गति करती जा रही है और अकस्मात् उसने अनुभव किया कि जैसे वह सर्पाकार गति करती ऊर्जा उसके शरीर से उतरकर भूमि में समा गई है। वह प्रकृतिस्थ होने लगा। सुदामा द्वारा सुमति को कहा जा रहा संवाद अब वह सुन पा रहा था।

''तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने के लिए मैं परमात्मा के द्वार पर जाऊँगा। किंतु यह तो बताओ कि राम को तो संसार परमात्मा मानता है, पर कृष्ण के संबंध में ऐसी कोई प्रचलित मान्यता नहीं है।'' सुदामा ने कहा, ''ऐसा न हो कि मैं अपने बाल-सखा को भगवान् श्रीकृष्ण कहूँ और उसके राजकर्मचारी तथा परिजन समझें कि सुदामा चाटुकारिता करके कृष्ण से धन प्राप्त करना चाहता है।''

''भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर से अग्रपूजा के लिए श्रीकृष्ण का ही नाम सुझाया था। उनसे अधिक धर्म को जाननेवाला कौन है? जब वे श्रीकृष्ण को परमात्मा मानते हैं तो अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता ही क्या! वे श्रीकृष्ण, जो अवस्था में उनके प्रपौत्र के समान हैं। अनुपस्थित रहते हुए द्रौपदी की उन्होंने जिस प्रकार रक्षा की, ऐसी रक्षा तो परमात्मा के अतिरिक्त कोई मनुष्य कर ही नहीं सकता।''

''ठीक है। मैं तुम्हारी भावनाओं का सम्मान करता हूँ। पर अपने बाल-सखा को भगवान् मानने में मेरी कोई निष्ठा नहीं है। कृष्ण एक कुशल राजपुरुष है। राजनीति में जाकर साधु भी असाधु हो जाते हैं। राजनीति किसी को राक्षस बनने की संभावनाएँ तो दे सकती है, किंतु भगवान् बनने की नहीं। राक्षस बनने के लिए मनुष्य को कुछ अतिरिक्त करने की आवश्यकता नहीं। उसे केवल राजनीति में प्रवेश करना है और राजनीतिक परिवेश उसे स्वयं राक्षस बना देगा।''

''श्रीराम भी तो राजपुत्र थे।'' सुमति ने सुदामा के मत का खंडन किया।

''पर उनका जीवन वनों में बीता। वे राजनीति से कोसों दूर थे।'' सुदामा बोला।

''आपको यह क्या हो गया है? आप कुतर्क कब से करने लगे? श्रीराम पिता की इच्छा मात्र से सारा साम्राज्य एक क्षण में त्यागकर चले गए। निषादराज गुह ने अपना राजपाट उनको देना चाहा, सुग्रीव के राज्य पर भी उनका ही अधिकार हो सकता था, लंका तो उनकी ही जय की हुई थी; किंतु उस राजपुत्र को माया तो छू ही नहीं पाई। काल ने अपना निर्णय दे दिया और यह सिद्ध हो गया कि श्रीराम अन्य कोई नहीं, स्वयं मायापति ही थे। यही सब आप श्रीकृष्ण के विषय में देख लें। कंस जैसे अनेक अत्याचारियों का अंत किया, किंतु किसी के साम्राज्य पर दृष्टि भी नहीं डाली। मुझे तो लगता है कि वे ही मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जैसे सर्वकला संपूर्ण श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हो गए हैं।''

रामदास ने यह अनुभव किया कि ऊर्जा रूपी वह सर्प, जो भूमि में समा गया था, वह उसकी एड़ियों से होता हुआ उसके हृदय से प्रकट हुआ है। उसने एक कृष्ण सर्प देखा। वह उसकी भृकुटि के मध्य फन काढ़े खड़ा था। उसने अपने फन को लहराया और अपना दंश उसके भ्रू-मध्य में गड़ा दिया। रामदास लहराया और किसी पके फल के समान भूमि पर गिर गया।

''रामदास!'' उसके गिरने की स्थिति ऐसी थी कि सुदामा चीख उठे। सुदामा ने रामदास का नाड़ी परीक्षण किया। वह बंद थी।

''हे राम! यह क्या हो गया?'' सुमति भी घबरा गई।

रामदास की आँखें चढ़ी हुई थीं। वह संज्ञाशून्य था। सुदामा ने लोटे में रखा जल अनेक बार रामदास के मुँह पर छिड़का। उसे जोर से हिलाया और उसका नाम लेकर अनेक बार चीखे।

अचानक रामदास की नाक से एक तीव्र श्वास ऐसे बाहर निकला जैसे कोई सर्प फुफकारा हो। उसने आँखें खोलीं।

''रामदास, क्या हो गया था? हम तो घबरा ही गए थे। तुम कैसा अनुभव कर रहे हो?'' सुदामा हड़बड़ाहट में बोलते ही जा रहे थे।

रामदास ने सुदामा और सुमति की ओर फटी-फटी आँखों से ऐसे देखा जैसे वे उसके लिए अपरिचित हों। सुदामा और सुमति यह अनुभव कर रहे थे कि वे रामदास के स्वास्थ्य के संबंध में जो कुछ पूछ रहे हैं, वह उन शब्दों को सुन नहीं पा रहा है। रामदास सुदामा और सुमति को फटी-फटी विस्मयपूर्ण आँखों से देखता हुआ उठा और पगडंडी पर आगे बढ़ता चला गया और उनकी आँखों से ओझल हो गया।

''रामदास! रामदास!'' सुदामा पुकारते रह गए।

❑

दो

सुदामा की पद-यात्रा का यह तीसरा दिन था। उन्होंने अनुभव किया कि उनका सारा शरीर पूरी तरह थक चुका है। भगवान् सूर्य उनके सिर पर सवार थे। उनका ताप कष्ट दे रहा था। यात्रा के लिए जो गुड़-चना लेकर वे चले थे, वह कल ही समाप्त हो गया था। उन्होंने कंधे पर लटकी अपनी पोटली पर दृष्टि डाली। उसमें कच्चे चावल थे, जो उन्होंने संकट के समय के लिए बचाकर रखे हुए थे। उन्होंने देखा कि कुछ श्रमिकों ने एक कुएँ के पास वृक्षों के झुरमुट में चूल्हा जलाया हुआ है। उनके मन में आया कि उनसे कहें कि वे उसके एक मुट्ठी चावल उबाल दें तो उनकी कृपा होगी।

'तो सुदामा याचना का अभ्यास आरंभ कर रहा है।'

सुदामा ने इधर-उधर देखा।

'भीतर...भीतर देखो सुदामा! मैं तुम्हारी चेतना हूँ। तुम्हारे आत्मसम्मान के घर में रह रही हूँ।' चेतना बोली।

'इसमें याचना जैसी क्या बात है?' सुदामा तमककर बोले।

'चावल मेरे हैं। मैं उनसे भीख नहीं माँग रहा। केवल सहायता माँग रहा हूँ। उनके पास अग्नि जल ही रही है।' सुदामा ने अपना तर्क प्रस्तुत किया।

'उस अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए उन्होंने अपने पुरुषार्थ का घर्षण किया है। तुम केवल जिह्वा घर्षण करोगे और तुम्हारे चावल पक जाएँगे।' चेतना बरसी, 'इतने ही स्वाभिमानी हो तो मत माँगो अग्नि भी। यदि इन साधारण संसारियों ने तुम्हें दुत्कार दिया तो तुम्हारे मन में बैठी सुमति को कितना दुःख होगा। अब तो केवल कृष्ण के द्वार पर ही याचना करना और वहीं से दुत्कारे जाने का सुख प्राप्त करना।'

'मैं कृष्ण के पास याचना करने नहीं जा रहा। अपने बाल-सखा से मिलने जा रहा हूँ।' सुदामा का मुँह कड़वा हो गया।

'ओह! बाल-सखा!'' चेतना ने सुदामा को चिढ़ाया, 'पत्नी के उपालंभ सहने के पश्चात् बाल-सखा की स्मृति ने सुदामा को आ घेरा है। अति उत्तम! क्या अद्भुत सख्यभाव है।'

'तुम चाहती क्या हो?' सुदामा का स्वर जैसे डटकर खड़ा हो गया।

'स्वीकार।'

'स्वीकार?'

'हाँ, यह स्वीकार कि तुम कृष्ण से धन की याचना करने जा रहे हो।' चेतना बोली, 'मुझसे क्या छिपाते हो?'

'तुमसे कुछ छिपा नहीं है तो तुम यह भी भली प्रकार से जानती होगी कि भले ही मैं कृष्ण के पास अपनी पत्नी के आग्रह के कारण जा रहा हूँ; परंतु मेरे मन में यह संकल्प है कि मैं प्रत्यक्ष रूप से कृष्ण से कुछ माँगूँगा नहीं।'

'प्रत्यक्ष रूप से यदि कृष्ण कुछ देंगे तो तुम उसे स्वीकार कर लोगे। क्यों?' चेतना ने कौंचा।

'हाँ।' सुदामा बुदबुदाए।

'तो ठीक है फिर संकल्प करो कि शेष यात्रा में किसी से कोई सहायता नहीं माँगोगे।' चेतना बोली।

'मैं संकल्प करता हूँ।' सुदामा ने चावल की पोटली बाँधी, उसे अपने कंधे पर लटकाया और चल दिए।

××××

भोरकाल में अपने नियत समय पर उठने और दिन भर चलने के उपरांत भगवान् सूर्य अब थक गए थे, अत: अपनी सखी संध्या की गोद में सिर रखकर विश्राम करने जा रहे थे। कुछ देर पश्चात् इनकी यही सखी इनकी निशा रूपी पत्नी बन इन्हें रात्रि-सुख देगी।

''क्यों भाई, यह द्वारका अभी कितनी दूर है?'' सुदामा ने चाक पर चढ़े मिट्टी के लोंदे से एक सकोरे को प्रकट करते कुम्हार से पूछा।

कुम्हार चाक को उसी दशा में घूमता छोड़कर खड़ा हो गया। उसने अँगोछे से पसीना पोंछा और सुदामा की ओर देखा।

सुदामा सहम गए। उन्हें लगा कि इस परदेस में अब यह कुम्हार काम में बाधा पहुँचाने के दंडस्वरूप उनको झिड़केगा। सुदामा यह सोचकर ही भूमि में गड़ जाते हैं कि कोई उनको धिक्कारे अथवा दोषी ठहराए।

''प्रणाम!'' कुम्हार ने हाथ जोड़ दिए, ''मेरा सौभाग्य कि देवता ने मेरी कुटिया में चरन धरे। महाराज, बहुत दूर की यात्रा करके आ रहे दिखाई देते हैं। लगता है, आपने कहीं भी न विश्राम किया है और न भोजन पाया है। पता नहीं मैंने पिछले जन्म कौन से पुण्य किए थे जो प्रभु की राह में बढ़ते साधु-महात्माओं को मेरी कुटिया में भेज देते हैं। तपस्या में तपी आपकी दुर्बल देह में से भी तेज बरस रहा है, महाराज! बिराजें!''

सुदामा के मन में आया कि उस कुम्हार को बताएँ कि वे न तो कोई साधु हैं, न तपस्वी और न महात्मा। वे तो एक अत्यंत साधारण निर्धन बा्रह्मण हैं, जो धन पाने की आस में कृष्ण के द्वारे जा रहा है। पर सुदामा ने वह सब नहीं कहा।

''तुम बहुत भले हो, भाई! भगवान् तुम पर कृपा बनाए रखे। तुम्हें सुख-समृद्धि दे। तुम्हारी संतान ज्ञान प्राप्त करे।'' सुदामा चकित थे कि आज तक उनके मुँह से संन्यासियों के समान ऐसे आशीर्वाद की वर्षा कभी नहीं हुई। क्या यह उनकी संन्यासियों के समान की जा रही यात्रा का प्रभाव है?

सुदामा कुम्हार के पास बैठ गए।

''ओ कमली! महाराज पधारे हैं। एक लोटे में दूध और मिस्सी रोटी खाने को ला।''

दूध और मिस्सी रोटी का नाम सुनते ही सुदामा की भूख किसी असंयमित बालक के समान व्याकुल हो उठी। यह सुनते ही सुदामा संतोष से भर गए कि बिना माँगे उनके लिए भोजन की व्यवस्था हो रही है। दूध, जिसका स्वाद चखे उनको कितना समय हो गया, उन्हें स्मरण नहीं। यदा-कदा सुमति दूध ले आती थी तो वह उसे बच्चों के लिए ही रहने देने का आग्रह करते थे और अब उनके लिए लोटा भर दूध आ रहा है। दूध पीकर उनकी थकान भी मिटेगी और वह शक्ति से भी भर जाएँगे।

कुछ ही देर में एक स्त्री थाली लिये आई। उसने आदर सहित सुदामा को प्रणाम किया और थाली एक पीढ़े पर रख दी। अब सुदामा के सम्मुख एक थाली में स्वर्ण के समान पीले रंग से चमकती मिश्रित आटे की दो रोटियाँ रखी थीं और एक लोटा दूध का भरा था। दूध और रोटी की सुगंध उनके स्वादिष्ट, पवित्र और पौष्टिक होने का प्रमाण दे रही थी।

सुदामा ने कुम्हार की ओर देखा।

'हमें धन्य करें, विप्रदेव!' कुम्हार ने हाथ जोड़ दिए।

'तो सुदामा अपना व्रत भंग कर रहा है।' चेतना भरी थाली के बीच आ कूदी।

'कौन सा व्रत?' सुदामा चौंका।

‘अरे! इतनी जल्दी यह भी भूल गए कि ‘कौन सा व्रत’ कहने लगे। अभी तो तुमने यह संकल्प किया था कि केवल कृष्ण के द्वार से ही कुछ पाओगे और यह क्या हो रहा है। दूध-रोटी देखकर विचलित हो गए?’

‘मैंने कुछ भी माँगा नहीं है। यह मुझे अपना अतिथि स्वीकार कर स्वयं अपनी भावना के कारण मेरा सत्कार कर रहा है।’ सुदामा ने अपना पक्ष स्पष्ट किया।

‘यदि यही दूध का लोटा तुम्हारे घर पर होता तो क्या तुम इसे पी लेते? एक घूँट दूध जब सुमति तुम्हें पिलाना चाहती है तो तुम कहते हो कि इसे बालकों को दे दो। हमसे अधिक आवश्यकता उनको है। इस समय तुम्हारी पत्नी पेट बाँधकर, तुम्हारे बच्चों के साथ सोने की तैयारी कर रही होगी और इधर तुम दूध-रोटी का आनंद उठाने की तैयारी कर रहे हो?’’

सुदामा ने एक आघात अनुभव किया : सत्य तो कहा है उसकी चेतना ने। वे यह क्या कर रहे हैं। उन्होंने अपनी भूख की ओर देखा।

‘मेरी ओर क्या देख रहा है निरभाग!’ भूख जैसे सुदामा की ओर देखकर कटखन्नी बिल्ली के समान गुर्राई, ‘तू तो भरी थाली पर पद-प्रहार करने में कुशल है। अब जब भाग्य ने तुझ पर कुछ दया की है तो तू भावना में मरकर मुझे भी मारेगा और स्वयं भी मरेगा। अभी द्वारका जाना है। वहाँ से तुझे खदेड़ा जाना है और फिर पुन: कई दिन की यात्रा कर वापस मरणासन्न अवस्था में अपने गाँव मायापुरी पहुँचना है।’

सुदामा ने भरी थाली को नमस्कार किया और उसे कुम्हार की ओर सरका दिया।

‘‘मुझसे कुछ भूल हुई क्या, विप्रदेव?’’ कुम्हार ने अपने जुड़े हाथों को माथे से लगाकर कहा।

‘‘नहीं भाई! मैंने कोई व्रत धारण किया है। जब तक वह पूरा नहीं होगा, तब तक मैं कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा।’’ सुदामा आत्मलीन-से हो गए।

‘‘महाराज! वचन दें कि व्रत पूरा होने के बाद आप यदि इस मार्ग पर पधारेंगे तो इस अधम की कुटिया पर फिर से अपने चरन धरेंगे। यदि आप उस समय भी किसी ऐसे व्रत में होंगे कि जिसमें कुछ ग्रहण नहीं कर सकते होंगे तो भी आप एक लोटा जल पीकर मुझे कृतार्थ करेंगे।’’

‘‘अरे...अरे, यह क्या कर रहे हो?’’ सुदामा ने अपने पैरों में पड़े कुम्हार को हटाया। उनके जीवन का यह पहला अवसर था, जब किसी ने भक्ति-भाव से उनके पैरों में अपना सिर रखा था। उन्हें ऐसा लगा जैसे किसी ने उनके हृदय रूपी पर्वत से किसी बड़े पत्थर को हटा दिया हो और उसके पीछे छिपा आशीर्वाद रूपी झरना फूट पड़ा हो। उस झरने में वे उस कुम्हार को जी भरकर नहाते हुए देख रहे थे। उन्हें तो अपने ब्रह्मचर्य जीवन का केवल वह काल ही स्मरण है, जब वे गुरुजनों इत्यादि की चरण-वंदना किया करते थे।

‘‘नहीं देव! जब तक आप वचन नहीं देंगे तब तक मैं आपके चरन नहीं छोड़ूँगा।’’ कुम्हार की आँखें भर आईं।

‘सोच क्या रहे हो सुदामा?’ चेतना हँसी, ‘तुम घर से बाहर क्या निकले, तुम्हारा सौभाग्य भी तुम्हारे साथ-साथ चल रहा है और तुम हो कि उसे दुत्कारे जा रहे हो। अरे हठबुद्धि, जब तू कृष्ण के यहाँ से दुत्कारा जाएगा तो तेरी वापसी-यात्रा का प्रबंध इस कुम्हार के यहाँ निश्चित हुआ। तब तेरे पास न व्रत होगा और न खाने के लिए अन्न। तब यही कुम्हार तेरा आश्रय बनेगा और तू इस समय परदेस में है। यहाँ किसी से कुछ भिक्षा भी पा लेगा तो कौन तुझे देख रहा है।’

‘पर मैं किसी लोभ के कारण वचन देनेवाला नहीं हूँ। मैं तो इसकी भावनाओं के सम्मान के कारण वचन दूँगा।’ सुदामा बुदबुदाए।

''ठीक है, उसका निर्णय बाद में होगा। अभी तुम वचन दो।''

''अच्छा भाई! मैं वचन देता हूँ।'' सुदामा ने अपने पैरों पर बिछे कुम्हार के सिर पर अपने दोनों हाथ रख दिए, ''अब मैं चलता हूँ।'' सुदामा उठ खड़े हुए, ''तुम मुझे यह बताओ कि द्वारका अभी कितनी दूर है?''

''थोड़ी देर में सूरज छिप जाएगा। यदि आप चलते रहेंगे तो आधी रात तक द्वारका पहुँच जाएँगे। पर उससे अच्छा यही होगा कि आप आज रात यहीं विश्राम करें और भोर होने पर यात्रा करें।''

''नहीं, मैं ठहर नहीं सकता।'' सुदामा ने अपने थके-हारे मुख पर प्रयत्नपूर्वक मुसकान प्रकट की।

''यदि देवता मुझे प्रसाद रूप में कुछ दे जाएँ तो धन्य होऊँगा।'' कुम्हार ने पुनः हाथ जोड़ दिए।

सुदामा को लगा कि वे स्वयं अकिंचन हैं। ऐसे में वे उसे क्या दें।

''मेरे पास तुम्हें देने के लिए कुछ भी नहीं है।'' सुदामा ने निराश स्वर में कहा।

''आपकी पोटली में तुलसी का पत्ता, फूल, फल या प्रसाद का एक दाना भी हो तो हमारे लिए वही बहुत होगा।

''ओह!'' सुदामा को ध्यान आया कि उनकी पोटली में आधा सेर कच्चे चावल हैं, जिन्हें वह संकट के समय के लिए बचाकर रखे हुए थे। उन्होंने पोटली में हाथ डाला और एक मुट्ठी मोटा चावल झोली फैलाए खड़ी उसकी स्त्री के आँचल में डाल दिया।

''धन्य हुआ महाराज! अब ये चावल उसी दिन पकाऊँगा, जब आप पधारेंगे। तब तक ये हमारे घर के मंदिर में मिट्टी के कुल्हड़ में रखे रहेंगे।'' कुम्हार बोला, ''कुछ दिन पहले एक पहुँचे हुए महात्माजी पधारे थे। प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे यह आशीर्वाद दिया कि कल्लू कुम्हार, जा, बहुत जल्द तेरे पास इतना धन आनेवाला है कि जिसका अनुमान तू स्वप्न में भी नहीं लगा सकता।'' कुम्हार का स्वर आह्लादित था, ''आप भी आशीर्वाद दे जाएँ तो...''

''...आशीर्वाद!'' सुदामा के जी में आया कि वह ठहाका लगाएँ। जो स्वयं एक कौड़ी नहीं कमा सकता, वह उसे धनी होने का आशीर्वाद कैसे देगा और यह कुम्हार भी क्या साधु-संन्यासियों की सेवा इसलिए कर रहा है कि वे उसे धनी होने का आशीर्वाद दें। सुदामा अपने द्वंद्व से बाहर आए। उनका स्वर हलकी-सी खीज से भर गया था, ''कल्लू कुम्हार, तुम क्या आशीर्वाद चाहते हो? क्या तुम यह चाहते हो कि मैं तुम्हें धनी होने का आशीर्वाद दूँ?''

''नहीं महाराज, नहीं।'' कल्लू ने अपने दोनों हाथ फैला दिए और दीन स्वर में बोला, ''कहते हैं कि धन आने पर मति मारी जाती है। मैं तो यह आशीर्वाद चाहता हूँ कि यदि उन महात्मा का आशीर्वाद फले और मेरे पास धन आ जाए तो भी मेरी प्रीति संतों की सेवा से न हटे।''

सुदामा को लगा कि यदि उन्होंने अपने श्वास पर नियंत्रण नहीं किया तो उनकी आँखों से अश्रु और कंठ से रुदन बह उठेगा। वे पछता रहे थे कि उन्होंने इस पवित्र आत्मा के लिए अपने मन में अशुद्ध विचार उपजाए।

''मैं तुम्हें हृदय से यह आशीर्वाद देता हूँ।'' सुदामा ने पहली बार आशीर्वाद की मुद्रा में संन्यासियों के समान अपने दोनों हाथ उठा दिए और बोले, ''कुछ और माँगते हो तो माँगो।''

'आओ, आओ देवताओ! देखो, सुदामा भी दाता हो गया है। वह आशीर्वाद बाँट रहा है। इसने ज्ञान की साधना कर इतना तप अर्जित कर लिया है कि...'

'...शांत रहो।' सुदामा ने उनके मन को व्यथित करनेवाले स्वर को डाँटा, 'मैं दाता होने का दंभ नहीं भर रहा हूँ। मैं तो उसकी भावनाओं का सम्मान कर रहा हूँ। उसके मन को सुख दे रहा हूँ।'

'वही तो मैं कह रहा हूँ सुदामाजी!' सुदामा के मन में उठनेवाला स्वर नाटकीयता पर उतर आया, ''आप देवता स्वरूप बनकर उसे आशीर्वाद तो दे रहे हैं; पर यदि यह कुम्हार आशीर्वाद में कुछ ऐसा माँग बैठा जो असंभव हुआ

तब?'

'तुम भी समझ लो कि मैं आशीर्वाद दे रहा हूँ, वरदान नहीं।' सुदामा ने भी उस स्वर को चिढ़ाया।

'कुछ और माँगते हो तो माँगो, यह भाषा आशीर्वाद की है या वरदान की?' स्वर जैसे चीखकर सुदामा पर कूदा।

सुदामा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'दोष पकड़ा गया तो चुप्पी मारे खड़ा है। अब देख, यह चतुर कुम्हार चुनकर ऐसा वर माँगने जा रहा है कि दिवस में तुझे नक्षत्र दिखाई देने लग जाएँगे।' स्वर ने सुदामा को अपमानित किया।

''बरसों से हमें कोई संतान नहीं है। यदि उचित समझें तो...''

सुदामा चुपचाप कल्लू को देखते रहे। उसकी पत्नी सिर झुकाए उनके पैरों को निहार रही थी।

''हम जानते हैं कि हम अभागे हैं। हमने अनेक साधु-संन्यासियों से संतान के लिए आशीर्वाद माँगा है। किसी ने नहीं दिया। एक साधु तो यह कह गए कि कल्लू कुम्हार, राम का नाम भज। संतान तेरे भाग्य में ही नहीं है।'' कल्लू का स्वर दयनीय हो गया, ''जब आपने कहा कि माँगो जो माँगते हो, तो फिर से यह सोई साध जाग गई। लगा, जब भगवान् ही वरदान देने आ गए हैं तो मैं भी संकोच क्यों करूँ।''

सुदामा ने अनुभव किया कि उन्हें भावना के आवेश में ऐसा नहीं कहना चाहिए था। अब यदि वे अपने कथन से पलटते हैं तो इससे कल्लू के मन को ठेस तो पहुँचेगी ही, साथ-ही-साथ ब्राह्मण की गरिमा भी निष्प्रभ होगी और वे तो स्वयं को दोषमुक्त कभी कर ही नहीं पाएँगे। इसलिए उनको कोई मध्यम मार्ग खोजना होगा, जिसमें सबकी लाज रह जाए।

''...मैं तुम्हारी बात परमात्मा तक पहुँचा दूँगा।'' सुदामा धीरे से बोले।

''इतना ही बहुत है, महाराज!'' कल्लू का स्वर प्रसन्नता से नाच उठा, ''आप परमात्मा से कहेंगे तो वे 'ना' कर ही न सकेंगे। अपने भक्तों की लाज वे नहीं रखेंगे तो कौन रखेगा?''

सुदामा यह अनुभव कर रहे थे कि जैसे-जैसे कल्लू उनकी स्तुति करता जाएगा, वैसे-वैसे उनका अपराध-बोध भी बढ़ता जाएगा। अत: वे त्वरित गति से कल्लू कुम्हार के आँगन से निकल गए।

'तुमने कुम्हार को 'तथास्तु' क्यों नहीं कहा?' कुछ दूर चलने के पश्चात् जब सुदामा ने अपनी चाल धीमी की तो उनकी चेतना ने पूछा।

'मुझे ऐसे असत्य आशीर्वाद देने का कोई अधिकार नहीं है। मैंने उससे जो कहा, वह सहज था। परमात्मा से तो मैं उसकी बात कह सकता हूँ।' सुदामा ने अपनी सच्चाई प्रकट की।

'अच्छा! तुम्हें परमात्मा का पता है? तुम परमात्मा से बात करते हो? यह बात तो मुझे भी आज तक ज्ञात न थी?' चेतना हँसी।

'मुझे परमात्मा का पता नहीं है और न ही मैं उससे बात कर सकता हूँ।' सुदामा ने आवेश में अपनी चाल और तेज कर दी।

'तो फिर उससे असत्य क्यों कहा?'' चेतना जैसे सुदामा का मार्ग छेककर खड़ी हो गई।

सुदामा रुक गए। उनके पास चेतना की बात का कोई उत्तर नहीं था। वे सोचने लगे कि सत्य ही तो कह रही है उनकी चेतना कि न उन्हें परमात्मा का पता है और न ही उसकी सत्ता का...फिर उसने यह असत्य बात क्यों कही? सुदामा लज्जा से गड़े जा रहे थे। वे अपनी चेतना से क्षमा माँगने ही जा रहे थे कि उसके आड़े जैसे उनकी पत्नी सुमति आ खड़ी हुई और बोली, 'मेरे स्वामी ने एक शब्द भी आज तक असत्य नहीं बोला है। उनको परमात्मा का

पता है। वे परमात्मा से बात ही नहीं कर चुके हैं अपितु उनके साथ रहे भी हैं, खेले भी हैं, खाए भी हैं और उनसे लड़े भी हैं और इस समय वे परमात्मा से मिलने ही जा रहे हैं। इस समय जिस देह को धारण कर परमात्मा आए हैं, उनका नाम है योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण!'

सुदामा ने सुना कि दूर मंदिर में किसी ने शंख फूँका है और घंटे-घड़ियाल के साथ आरती आरंभ हो गई है। उनके सामने अब कोई नहीं था। न चेतना और न अचेतन मन। उनके पग मंदिर से आती शंखध्वनि की ओर खिंचते चले गए।

वह शिवालय था। संध्या ने अपना काला दुशाला ओढ़ लिया था और उसमें उस शिवालय के भक्तों ने घी के दीयों के रूप में तारे लगा दिए थे। मंदिर में अधिक चहल-पहल नहीं थी। उसकी सीढ़ियों के पास कुछ साधु खड़े थे, जिनको अपने साथ ले जाने के लिए कुछ गृहस्थ आए हुए थे। सुदामा सीढ़ियाँ चढ़ गए।

''कहाँ से पधारे हो महाराज?'' पुजारी ने सुदामा की ओर देखा। उसका स्वर यह स्पष्ट कह रहा था कि उसकी रुचि सुदामा में नहीं है और उसे एक भिखारी ब्राह्मण की उपस्थिति भी सह्य नहीं है।

''मायापुरी से।'' सुदामा का स्वर भी शुष्क था। वह अपने ऊपर ही खीज रहे थे कि उन्हें शिवालय की सीढ़ियाँ चढ़ने की आवश्यकता ही क्या थी। उन्हें तो द्वारका का मार्ग नापना है, न कि इस शिवालय की सीढ़ियाँ गिननी हैं।

''यह सारा संसार ही मायापुरी है। लगता है, उस मायानगरी ने तुम्हारी सारी माया ही हर ली है।'' पुजारी ने सुदामा की दुर्दशा देखकर उनका उपहास उड़ाया।

''पंडितजी! हरण तो उसकी माया का हो जिसके पास माया हो।'' सुदामा मुसकराए, ''मेरे पास तो ज्ञान रूपी माया है, जिसका हरण नहीं किया जा सकता। केवल ज्ञान-पिपासु होकर उसका वरण किया जा सकता है।''

''मुझे किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है ऋषिश्रेष्ठ!'' पुजारी ने सुदामा को चिढ़ाया, ''मेरे पास बहुत ज्ञान है। आप अपना ज्ञान कहीं और जाकर बाँटें। भूख लगी हो तो कहें। थोड़ा-बहुत प्रसाद बचा होगा। आज याचक भी कम आए हैं। वह तुम्हारे लिए दया करके दे दूँगा। नीचे सीढ़ियों के पास प्रतीक्षा करो।''

''मैं यहाँ भिक्षा माँगने नहीं आया हूँ।'' सुदामा के मन में पहली बार किसी को पीटने का भाव उठा। पर वह भाव ही था। वे जानते थे कि वे किसी को न पीट सकने में समर्थ हैं और न पीटने का अवसर मिलने पर पीट ही सकते हैं। वे तो बस सोच सकते हैं। वे सोचने लगे कि मंदिर के व्यवस्थापकों ने ऐसे अहंकारी और लोभी को पुजारी के पद पर क्यों रखा हुआ है? पुजारी को तो सरल-चित्त और सबको समभाव से देखनेवाला होना चाहिए।

''तो फिर किसलिए आए हो?''

''शिव को प्रणाम करने।''

''वह तुम नीचे सीढ़ियों के पास से भी कर सकते हो।''

''यहाँ से क्यों नहीं?''

''यहाँ से कुलीन वर्ग की विशेष पूजाओं का आयोजन होता है।''

''मैं ब्राह्मण हूँ।''

''दिख रहा है, किस प्रकार के ब्राह्मण हो।'' पुजारी ने वितृष्णा से सुदामा की ओर देखा, ''तुमसे अच्छी दशा में तो हमारे यहाँ शूद्र रहते हैं।''

''ओह! तो तुम निर्धन को 'शूद्र' कहते हो!'' सुदामा ने पुजारी पर कटाक्ष किया।

''मेरे मंदिर में निर्धन का प्रवेश वर्जित है। निर्धन का अर्थ होता है चोर।'' पुजारी ने निष्कर्ष के रूप में कठोर स्वर के

साथ आँखें भी दिखाईं।
''शिव-मंदिर में चुराने को है ही क्या? शिव के कंठ में पड़ा साँप, उनके शरीर पर लगी श्मशान की भस्म या उनका बाघंबर? यहाँ चुराने जैसा कुछ भी नहीं।''
''तो फिर यहाँ आए क्यों?'' पुजारी के नथने क्रोध में फूलने लगे थे।
''किसी ने मुझसे कहा था कि शिव को किसी ने अपनी बपौती बनाकर कारागार में डाल दिया है। मैंने भगवान् श्रीकृष्ण को तो कारागार में नहीं देखा, किंतु शिव को कारागार में देखने का सौभाग्य प्राप्त अवश्य हो गया है।''
''ये भगवान् श्रीकृष्ण कौन हैं?'' सुदामा ने सीढ़ियाँ उतरने के लिए पलटना ही चाहा था कि पुजारी ने उन्हें टोका।
''द्वारकानाथ भगवान् श्रीकृष्ण!'' सुदामा को स्वयं पर आश्चर्य हो रहा था कि वे कृष्ण के लिए यह सब क्या कह रहे हैं। उन्होंने पहचाना कि यह स्वर तो उनकी पत्नी सुमति का है।
''वह भगवान् कब से हो गया? मैं उसे भगवान् नहीं मानता। रणछोड़दास को तुम भगवान् कह रहे हो?'' पुजारी हँसा, ''ठीक कह रहे हो। तुम भी तो रण छोड़कर भागे दिखाई दे रहे हो? ठीक है वह, तुम्हारे जैसों के लिए तो भगवान् ही है।''

सुदामा ने इस अंतहीन व्यर्थ की चर्चा को और चलाना उचित नहीं समझा और शिवालय की ओर मुख करने के अपराध-स्वरूप स्वयं को कोसते हुए द्वारका-मार्ग की ओर बढ़ने के लिए पग उठा दिया। शिवालय के बाहर पीपल के विशाल वृक्ष के नीचे बने चबूतरे से किसी का स्वर सुनाई दिया, ''भगवान् श्रीकृष्ण-भक्त! मायापुरी निवासी ब्राह्मणदेव को अघोरी का प्रणाम!''
सुदामा ने देखा कि लंबे और काले केशोंवाला एक बलिष्ठ मनुष्य काले वस्त्रों में उस चबूतरे पर बैठा है। उसकी आँखें लाल थीं और उसके पास उससे भी भयानक एक काला कुत्ता बैठा था। सुदामा अवाक् रह गए कि बिना उसका परिचय पाए उसने उसे भगवान् श्रीकृष्ण-भक्त और मायापुरी निवासी कैसे कहा। यह भी संभव नहीं कि उसने यहाँ बैठे उसका और पुजारी का संवाद सुन लिया हो; क्योंकि मंदिर में जहाँ पुजारी खड़ा था और जहाँ यह अघोरी बैठा है, उतनी दूरी से बात सुनी ही नहीं जा सकती। सुदामा ने उसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ना चाहा, पर जैसे उनके पैर जम गए थे। उन्होंने कुत्ते की ओर देखा।
''आ जाओ ब्राह्मण! यह कुत्ता है, इस शिवालय का पुजारी नहीं। यह निर्धनों को नहीं काटता। चले आओ।'' अघोरी हँसा।

कुत्ते ने भी अपने दाँत चमकाए, जैसे वह अपने स्वामी की बात का व्यंग्य समझकर हँसा हो।
कौतूहलवश सुदामा के पग अघोरी के ओर बढ़ गए।
''यहाँ बैठो!'' उसने अपने कंधे पर रखा कंबल चबूतरे पर बिछा दिया।
सुदामा को लगा कि उन्हें भयभीत नहीं होना चाहिए। उनके पास ऐसा कुछ नहीं है, जिसे यह अघोरी चुरा सके। उसके पास बैठकर वह कुछ विश्राम कर और अपनी जिज्ञासा शांत कर आगे बढ़ जाएँगे।
''क्या तुमने मेरी और पुजारी की बातें सुनीं?'' सुदामा को लगा कि वे अपनी बात का आरंभ यहीं से करें।
''हाँ सुनीं।'' अघोरी ने अपने सफेद दाँत चमकाए।
''पर तुम तो दूर बैठे हो।''
''उससे क्या अंतर पड़ता है?''
''अंतर क्यों नहीं पड़ता। एक निश्चित दूरी के बाद न हम देख सकते हैं और न सुन सकते हैं।'' सुदामा ने सामान्य

विज्ञान पर प्रकाश डाला।

'' 'मैं' नहीं, तुम, केवल 'तुम'। 'हम' में मुझे क्यों गिन रहे हो? मैं तो कहीं भी कुछ भी देख-सुन लेता हूँ।''

''अच्छा!'' सुदामा के माथे पर विनोदपूर्ण त्योरियाँ चढ़ गईं।

''हाँ! तुम कुछ भी पूछकर देख लो। पर मैं सावधान करता हूँ कि ऐसी बातें ही पूछना जिनका उत्तर मिलने के बाद तुम यह अनुभव करो कि इन बातों को तो कोई भी बता सकता था।'' अघोरी हँसा।

''इसके माध्यम से तुम अपनी अयोग्यता प्रकट करना चाह रहे हो या मुझे मूर्ख समझ रहे हो?'' सुदामा उसे चिढ़ाने के लिए हँसे, ''तुम्हारे अनुसार मैं तुमसे वही पूछूँ, जिसे कोई भी बता सके। जैसे कल कौन सा वार था या आगामी मास कौन सा होगा अथवा मेरे मेरे ग्राम में जो कुत्ते हैं, उनके कितने पैर हैं इत्यादि।''

उन्होंने अघोरी के कुत्ते की ओर देखा। वह सुदामा को देखकर गुर्रा रहा था।

''मैं तो केवल यह कहना चाह रहा था कि ऐसा न हो कि तुम कुछ ऐसा पूछ बैठो कि मुझसे प्रश्न का चामत्कारिक उत्तर पाकर तुम्हारा सारा ज्ञान ही कुंठित हो जाए या तुम्हारा ज्ञान सागर-तट पर बने बालू के घर के समान मेरे उत्तर की लहरों में विलीन हो जाए।'' अघोरी ने आकाश की ओर जाती पीपल की शाखाओं की ओर देखकर पुकारा, ''जय महाकाल!'' फिर सुदामा की ओर देखकर उनके कान के पास अपना मुँह लाकर इस प्रकार बोला जैसे कोई गोपनीय बात बता रहा हो, ''दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह कि यदि तुम कुछ गड़बड़ पूछ लोगे और मैं सही उत्तर दूँगा तो तुम अपने उपलब्ध शास्त्रीय ज्ञान को आधार बनाकर द्वारका तक यही सोचते रहोगे कि मुझे यह सब ज्ञात कैसे हुआ।...क्योंकि जहाँ तक तुम्हारी इंद्रियों की पहुँच है, उससे अनंत गुना मेरी पकड़ है।''

''तुम चिंता न करो, अघोरी। मैं चमत्कारों में विश्वास नहीं करता और न ही मुझे कोई सम्मोहित कर सकता है। यह सम्मोहन तो गँवारों पर चलता है। मुझे तो तुम्हारी चिंता हो रही है कि मैं तुमसे कुछ ऐसा पूछने जा रहा हूँ कि जिसे सुनकर तुम अपने कुत्ते के साथ पूँछ दबाकर भागते दिखाई दोगे।'' सुदामा को लगा कि अपना जो आक्रोश वे पुजारी पर व्यक्त नहीं कर सके, उसे वे इस अघोरी पर कर रहे हैं।

''पूछो!'' उसने अपने कुत्ते को अपनी गोद में बिठाया और उससे बोला, ''कालू बाबा! अभी तुझे स्वादिष्ट मांस खिलाऊँगा। पहले थोड़ा रस लेने दे। बहुत दिनों बाद कोई खेलने के लिए मिला है।'' वह सुदामा की ओर मुड़ा, ''पूछ ब्राह्मण, क्या पूछता है?''

''इस समय मेरी पत्नी क्या कर रही है?'' सुदामा ने मुसकराकर पूछा।

अघोरी ने आँखें बंद कीं और कुछ बुदबुदाने लगा। कुत्ता उसके काले चोगे को चबा रहा था। अघोरी ने आँखें खोलीं।

''हाँ, अब तुम कहोगे कि तुम्हारी पत्नी भोजन कर रही है, अपनी सखी के साथ हँसी कर रही है या बच्चों के साथ खेल रही है। क्यों, इन्हीं विकल्पों में से कोई एक विकल्प कहोगे?'' सुदामा मुसकराए।

''नहीं। पर अच्छा होगा कि तुम कुछ और अति सामान्य प्रश्न पूछ लो। तुम जिस घर से हो, मैं उसे विचलित नहीं करना चाहता। रहने दो। तुम अपनी यात्रा पर जाओ। कहीं ऐसा न हो कि मेरा उत्तर तुम्हारा सारा ज्ञान ही हर ले। सोचा था कि तुमसे खेलूँगा। पर कोई कह रहा है कि रहने दे, यह मेरे घर से है। अभी इसका ज्ञान मत हर। पर मैंने भी उसे कह दिया है कि तू सँभाल लेना। मुझे खेल का रस लेने दे न!''

''ज्ञान कोई नहीं हर सकता।'' सुदामा बोले, ''तुम लोग ऐसी बातें करके लोगों को डराते रहते हो। मैं तुम्हें चुनौती देता हूँ कि तुम्हारी विद्या में यदि साहस है तो मेरा ज्ञान हरकर दिखाओ। यदि योग्यता है तो बताओ कि इस समय

मेरी पत्नी क्या कर रही है? तुम्हारे उत्तर से ही मैं बता दूँगा कि वह कितना प्रामाणिक है।''

''महाकाल मुझे क्षमा करना! मैं तेरे घर के सदस्य के साथ खेल कर रहा हूँ। पर तू जानता है कि मैं इसे कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहता।'' अघोरी ने आकाश की ओर प्रार्थना करने के पश्चात् सुदामा की ओर देखा और बोला, ''इस समय तुम्हारी पत्नी सुमति यह प्रार्थना कर रही है कि हे कृष्ण! तुमने सदा अपने भक्तों की लाज रखी है। तुमने द्रौपदी का चीर बढ़ाकर उसकी लाज बचाई थी। आज अपने सहपाठी मित्र की पत्नी को तन ढकने के लिए कुछ सुंदर वस्त्र, पेट भरने के लिए स्वादिष्ट अन्न, रहने के लिए विशाल भवन और अपने मित्र को उनके अनुकूल यश प्रदान कर हमारी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति करो। तुम सर्वसमर्थ हो गोविंद! तुम्हारे अतिरिक्त मैं और किसे पुकारूँ। मैं आस में भरकर तुम्हारे द्वारे अपने स्वामी को भेज रही हूँ। यदि उनको कुछ नहीं देना हो तो न देना, पर उनका अनादर न करना। ऐसा न हो कि वे जब लौटें तो यह सोचकर ग्लानि से भरे हों कि उनकी पत्नी ने उन्हें तिरस्कृत और अपमानित होने आपके द्वार पर भेज दिया। मेरी लाज रखना द्रौपदी के सखा!''

सुदामा को लगा कि जैसे उन्हें काठ मार गया हो। उनका सारा ज्ञान, सारी प्रतिभा, सारा पांडित्य जैसे तवे पर गिरी बूँद के समान वाष्पित हो गया है। वे यह विश्वास नहीं कर पा रहे थे कि जो कुछ अघोरी ने कहा है वह उनके सामने घट रहा है। वे तो यह अनुभव कर रहे थे कि वे किसी किसी वृक्ष के नीचे सोए हुए हैं और यह स्वप्न चल रहा है। शिव-मंदिर, पुजारी और यह अघोरी इत्यादि उसी स्वप्न के पात्र हैं। कुछ ही देर बाद वे जागेंगे और द्वारका की राह हो लेंगे।...पर वे जानते हैं कि यह स्वप्न नहीं है, यथार्थ है। जो कुछ अघोरी ने बताया है, वह तनिक भी अविश्वसनीय नहीं है। पर यह सब उसने जाना कैसे? यह कौन सा विज्ञान है, जिससे इतनी दूर स्थित किसी भी अज्ञात तत्त्व के विषय में इतनी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है!

''गया न सारा ज्ञान! लो, थोड़ा दूध पीओ।'' उसने हाथ में पकड़े मानव-कपाल के ऊपर कपड़ा रखा और बोला, ''सुदामा के लिए, योगीराज श्रीकृष्ण के सहपाठी के लिए स्वादिष्ट दूध।'' उसने कपड़ा हटाया तो कपाल दूध से भरा था।

''नहीं चाहिए।'' सुदामा पथराई आँखों से बोले।

''ले बाबा! तू पी ले।'' अघोरी ने कपाल कुत्ते के आगे कर दिया और बोला, ''यह ब्राह्मण तो कृष्ण के घर का ही खाएगा। अब जिसे कृष्ण के घर के भोजन की आस हो, वह हमारे जैसे अघोरी का दिया क्यों खाए।''

सुदामा ने देखा कि वह कुत्ता देखते-ही-देखते उस दूध को चट कर गया और अघोरी की ओर देखने लगा।

''तू जानता है कि मैं झूठ नहीं बोलता। जब कहा है तो मांस खिलाऊँगा।'' अघोरी ने उस कपाल को पुनः कपड़े से ढका और बोला, ''कालू के लिए स्वादिष्ट मांस।'' उसने कपड़ा हटाया और वह मांस से भरा था। उसने कपाल कुत्ते के आगे रख दिया। कुत्ते ने मांस को अपने मुँह में भरा और चबूतरे से नीचे कूद गया।

''चतुर है बहुत।'' अघोरी हँसा और सुदामा की ओर देखकर बोला, ''कल इसके लिए मँगाए मांस में से मैंने भी कुछ खा लिया था। इसलिए आज यह भाग गया है। पर कपाल तो मेरे पास है।'' उसने कपाल को ढका और बोला, ''गरम-गरम जलेबी और ठंडा दूध।'' उसने कपाल से कपड़ा हटाया। उसमें दूध में तैरती सुगंधित जलेबी थी। अघोरी ने जलेबी उठाई और उसे अपने मुँह में घुसा दिया। जलेबी चबाते-चबाते दूध से भरे कपाल को अपने मुँह से लगा लिया।

''यह कपाल कुत्ते का जूठा है!'' सुदामा चिल्लाए।

''यही अद्वैत है।'' अघोरी ने डकार ली। अपनी लंबी काली दाढ़ी और अपने पेट पर हाथ फेरा। फिर कुछ क्षण

सुदामा को देखता रहा और बोला, ''यह कपाल, मैं, तुम, वह इत्यादि सब एक ही हैं। पर ज्ञान यह देख नहीं सकता। विज्ञान भी यह नहीं देख सकता। केवल और केवल अध्यात्म ही इसे अनुभव कर सकता है।'' वह रुका और फिर जैसे किसी निर्णय पर पहुँचकर बोला, ''मैं तुम्हारे लिए कुछ करता हूँ।'' उसने कपाल पर कपड़ा ढका और बोला, ''एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ।'' उसने कपड़ा हटाया, कपाल स्वर्ण-मुद्राओं से भरा था। उसने अपनी गठरी में से एक मोटा कपड़ा निकाला। उसे सुदामा के सामने बिछाया और उस पर कपाल को उलट दिया। जैसे झरने में से जल झरता है, इसी प्रकार उस कपाल में से स्वर्ण-मुद्राएँ गिरने लगीं। उसने उसकी पोटली बनाई और सुदामा की गोद में रखते हुए बोला, ''तुम्हारे मित्र ने मुझे बहुत कुछ दिया है। मेरा ऐसा सामर्थ्य कहाँ कि मैं उन्हें कुछ दे सकूँ। पर उनके मित्र को तो कुछ दे ही सकता हूँ। मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार करो और अपने घर की राह लो। इस स्वर्ण से तुम वह सब पा लोगे, जो तुम्हारी पत्नी चाहती है। क्यों व्यर्थ में द्वारका तक की यात्रा करते हो? जो चाहिए था, उसने तुम्हें यहीं दे दिया।''

सुदामा ने अपने गोद में पड़ी पोटली की ओर देखा।

''संकोच न करो। मैं तुम पर कोई उपकार नहीं कर रहा हूँ और न तुमने मुझसे याचना ही की है। यह तो मैं तुम्हें अपनी ओर से भेंट-स्वरूप दे रहा हूँ।

एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ उनकी गोद में हैं और उनकी हैं। वे अपनी गोद में उन मुद्राओं का भार भी अनुभव कर रहे थे। सुदामा के कल्पनाशील मन ने उड़ान भरी—वे हाट से अभी सुंदर वस्त्र और अपने लिए सारथि सहित एक रथ क्रय करें। रथ पर आरूढ़ होकर वे जब मायानगरी में पहुँचेंगे तो समूचा गाँव उनको प्रणाम करेगा। जब सुमति उन्हें किसी राजकुमार के समान आता देखेगी तो उसके मुख पर जो सुख और तृप्ति वे देखेंगे, वह अकल्पनीय होगी। उनके बच्चे उन्हें छू-छूकर देखेंगे।...तभी उन्हें लगा कि दृश्य कुछ बदल रहा है। उनकी पत्नी रथ के निकट आती है और उनसे पूछती है कि क्या यह सब उनको कृष्ण ने दिया है? तो सुदामा धीरे से कहते हैं कि नहीं, किसी अघोरी ने उनको भेंट दी है। तो कुपित होकर सुमति उनको धिक्कारते हुए उनके बच्चों को उठाकर यह कहते हुए उनका साथ छोड़कर चली जा रही है कि मैंने आपसे कहा था कि किसी अन्य से सम्मानित होने की अपेक्षा कृष्ण से अपमानित होकर लौटना। जाइए, मैं आपका मुख नहीं देखना चाहती।

सुदामा का कल्पनाशील मन झटका खाकर औंधे मुँह गिरा। सुदामा ने देखा कि स्वर्ण-मुद्राओं की पोटली उनकी गोद में पड़ी है। उन्होंने उसे अघोरी की ओर इस प्रकार झटक दिया जैसे अघोरी ने उनकी गोद में कोई विषाक्त सर्प रख दिया हो और सुदामा ने घबराकर वह सर्प वापस उसकी ओर उछाल दिया हो।

''क्या हुआ?'' अघोरी हँसा।

''मुझे यह धन नहीं चाहिए।'' सुदामा का श्वास असंतुलित हो गया।

''इस धन में दोष क्या है?'' अघोरी का स्वर रुष्ट था।

''यह मेरी पत्नी की अपेक्षाओं पर पूरा नहीं उतरता। उसे केवल कृष्ण से मिला धन चाहिए। मैं यह यात्रा उसकी इच्छापूर्ति के लिए कर रहा हूँ; इसलिए जो उसे वचन दिया है, पूरा करूँगा।''

''यह धन कृष्ण ने ही भेजा है।''

''प्रत्यक्ष नहीं।''

''प्रत्यक्ष तुम्हें वहाँ से कुछ नहीं मिलनेवाला। इससे भी जाओगे।''

''स्वीकार है।''

''कृष्ण के यहाँ से यों ही लौटा दिए जाओगे।''

''स्वीकार है।''

''घोर नरक में पड़ोगे।''

''स्वीकार है।''

''मेरी बात मान लो। मैं सबकुछ देख सकता हूँ। अभी मैंने तुम्हें इस बात का प्रमाण भी दिया है।''

''तुम केवल लीला देखो, मैं चला।'' सुदामा ने उठने के लिए चबूतरे से नीचे अपने पैर लटकाए।

''सुनो! मैं तुम्हें अनमोल सिद्धियाँ दे सकता हूँ। तुम मेरा प्रभाव देख भी चुके हो। मैं अपने कुत्ते तक से तो असत्य बोलता नहीं। सत्य कह रहा हूँ। मैं अपनी सारी तपस्या का फल तुम्हें दे सकता हूँ। उसको पाकर तुम धन-कुबेर बन जाओगे।''

''मुझे धन-पिशाच नहीं बनना।'' सुदामा ने उस कपाल की ओर देखकर पूछा, ''यह किसका है?''

''एक अहंकारी और अत्याचारी मंत्री का।''

''क्या कृष्ण भी तुम्हारी तरह इस प्रकार की विद्या जानता है?'' सुदामा की खोजी दृष्टि ने अघोरी की ओर देखा। अघोरी जैसे किसी अन्य लोक में खो गया।

''बोलती क्यों बंद हो गई?'' सुदामा प्रसन्न हुए कि उन्होंने भी अघोरी की बुद्धि को चकरा दिया।

''मैं एक बार कृष्ण से मिला था। उन्होंने मुझे दिखाया कि ये विद्याएँ तो उनके चरणों के नखों का मैल भी नहीं हैं। वे श्रीहरि हैं, हरण करनेवाले।'' सहसा अघोरी अपने पुराने औघड़ रूप में आ गया और बोला, ''इस समय वह तुम्हारा धन हरण कर रहा है। अभी भी कहो तो मैं तुम्हारे लिए धन का भंडार लगा दूँ।''

''तुम्हारा धन्यवाद! तुम मुझे क्षमा करो।''

''तुम ब्राह्मणों के पास इसीलिए लक्ष्मी नहीं आती। उसके आने से पहले तुम उसका तिरस्कार करने को तत्पर रहते हो। चलो, मैं यह धन किसी अन्य को दे देता हूँ।'' वह पथिकों को पुकारने लगा, ''अरे, किसी को एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ चाहिए तो ले जाओ। मैंने तो ये सुदामा के लिए मँगवाई थीं; पर लगता है, इसके भाग्य में दरिद्रता ही है। ये मेरे किसी काम की नहीं। अरे, ले जाओ कोई!'' वह उस पोटली को बजाकर पथिकों को पुकार रहा था; किंतु उसकी पुकार सुनकर सामान्य गति से चलते पथिक उससे बचने के लिए अपने पगों की गति को बढ़ा रहे थे। सुदामा के मन में आया कि वह लोगों को चिल्लाकर कहे कि यह अघोरी सत्य कह रहा है। आओ। पर उन्हें यह समझ में आ गया कि कोई उन्हें बोलने से रोक रहा है।

''सुन रे कालू बाबा!'' अघोरी ने अपने कुत्ते को पुकारा।

कुत्ता खड़ा होकर अघोरी की ओर देखने लगा।

''कल के भोजन में तुझे मांस नहीं अपितु स्वर्ण-मुद्राएँ खाने को मिलेंगी।''

''तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगे?'' सुदामा ने अघोरी की ओर गंभीर दृष्टि से देखा।

''जितनी इच्छा हो उतने प्रश्न पूछो। मैं तो यहाँ तुम्हारे लिए ही बैठा हूँ।'' अघोरी हँसा।

''तुम मेरी बात को अन्यथा ले गए। मेरा अभिप्राय यह नहीं था कि तुम मेरे दास हो और मेरे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने को बाध्य हो।'' सुदामा ने विनम्र स्वर में कहा, ''मैं अपने मन की दुविधा तुम्हारे सामने रखना चाह रहा हूँ। तुम उसका रहस्य मुझे बता सकते हो, ऐसा मेरा विश्वास है।''

''अभी तो तुम कह रहे थे कि मैं...''

''...वह सब मैंने अपने अज्ञान में कहा। उसके लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।'' सुदामा ने अपने हाथ जोड़ दिए।
''पूछो!'' अघोरी जैसे वरदान देने को तत्पर था।
''रामदास को क्या हुआ था?'' सुदामा को लगा कि इस सिद्ध अघोरी को रामदास की कथा सुनाना व्यर्थ होगा। इसलिए उन्होंने सीधी बात पूछी।
अघोरी ने अपनी आँखें मूँदीं। कुछ देर आनंदित हो मुसकराता रहा। कभी हाथ जोड़ता और कभी अपनी गरदन को घुमाते हुए अपनी देह को झुमाता। सुदामा शांत बैठे उसकी विभिन्न मुद्राएँ देखते रहे। फिर अघोरी सहज हुआ।
''रामदास गया काम से।'' अघोरी मुसकराकर बोला।
''मुझसे पहेलियों में बात मत करो। कृपा कर स्पष्ट शब्दों में कहो।'' सुदामा का स्वर व्याकुल था।
''तुमने भी तो रामदास को कथा सुनाई थी। अब मुझसे भी एक कथा सुनकर उत्तर खोजो।'' अघोरी बोला, ''एक बार दो साधक शक्ति की साधना कर रहे थे। प्रसन्न होकर दोनों को माँ भगवती ने दर्शन दिए। पहला साधक प्रसन्न होकर उनका गुणगान करने लगा और दूसरा पागल होकर मक्खी के समान भिनभिनाने लगा। तब पहले साधक ने माँ भगवती से पूछा कि इस भेदभाव का अर्थ क्या है? हम दोनों ने एक साथ आपकी साधना आरंभ की थी। मुझे आपने संतुलित रखा और उसे पागल कर दिया? तब माँ भगवती रहस्यमयी मुसकान के साथ बोलीं कि पुत्र, पूर्व जन्मों में यह क्षण उपस्थित होने पर तू भी न जाने कितनी बार इसकी भाँति विक्षिप्त होकर भटका है। अभी इसका समय नहीं आया है और तेरी उपस्थिति के प्रभाव के कारण इसने समय से पहले वह देख लिया है, जो इसे नहीं देखना चाहिए था।''
''तो तुम्हारे अनुसार रामदास ने कुछ ऐसा देख लिया है, जो उसे नहीं देखना चाहिए था और वह यह सब हमारे प्रभाव के कारण ही देख पाया।'' सुदामा ने अपने अनुमान की पुष्टि के लिए अघोरी की ओर देखा।
''तुम ठीक समझे।'' अघोरी सुदामा की ओर देखता रहा।
''तो इसका अर्थ है कि इसका दोष हमारी उपस्थिति हुई। उसका दंड वह क्यों भुगते?'' सुदामा के स्वर में याचना भर आई, ''तुम यदि रामदास के सामान्य होने का उपाय बता दो तो मैं तुम्हारा आभारी होऊँगा।''
''उसे इस जन्म में यों ही भटकने दो। यह भटकना उसके लिए शुभ होगा।'' अघोरी बोला।
''तुम मुझे उपाय बताओ।'' सुदामा ने अघोरी को जैसे आदेश दिया।
अघोरी ने पुन: अपनी आँखें बंद कीं। सुदामा ने देखा कि इस बार उसके मुख पर कोई भाव नहीं था। वह जैसे ध्यानस्थ था।
''एक वर्ष बाद।'' अघोरी उसी ध्यानस्थ अवस्था में बोला, ''ठीक एक वर्ष बाद रामदास भटकता हुआ तुम्हारे द्वारे आएगा। तुम कठिनाई से उसे पहचान पाओगे। उस समय जो अतिथि तुम्हारे यहाँ ठहरा हो, उसके हाथ से उसे अपने घर में बने कृष्ण-मंदिर में रखा चरणामृत पिलवा देना। वह सामान्य हो जाएगा। जहाँ से तुमने उसे छोड़ा था, वहीं से उसकी यात्रा फिर आरंभ हो जाएगी। यदि यह क्षण तुम चूक गए तो फिर उपाय नहीं है।'' अघोरी ने अपने कुत्ते की ओर देखा और उसे चिढ़ाया, ''क्यों रे! कहीं तू ही तो वह दूसरा साधक नहीं है, जो मेरे साथ कालू बाबा के रूप में भटक रहा है?''

अघोरी अपने कुत्ते से बात करता रहा और सुदामा मध्य रात्रि तक द्वारका पहुँचने का संकल्प लेकर पथ पर अग्रसर हो गए।

❑

तीन

चलते-चलते सुदामा का ध्यान इस ओर गया कि वे संतुलित होकर नहीं चल रहे हैं। यदि उन्होंने तुरंत ही किसी वस्तु का आश्रय नहीं लिया तो वे गिर जाएँगे। यदि गिर गए तो इस परदेस में कौन उनकी सहायता करेगा? ऐसा न हो कि वे अपने और अपने परिवार को संकट से उबारनेवाली इस यात्रा को ही उनके जीवन की यातनापूर्ण यात्रा बना दें। यदि ऐसा हुआ तो फिर यह उनके लिए भी अति दयनीय होगा। सुदामा को मार्ग पर एक छोटी सी पुलिया दिखाई दी। वे उसका आश्रय ले, उस पर अपनी पीठ टिका कर बैठ गए। बैठते ही जैसे निद्रा ने उन्हें घेरना आरंभ कर दिया। उन्हें लगा कि यदि वे निद्रा के साथ चल रहे संघर्ष में कोई रणनीति नहीं बनाते हैं तो वह उन पर छा जाएगी। यदि एक बार वे निद्रा के प्रभाव में आ गए तो फिर न जाने कब उनकी आँख खुले। अभी तक की यात्रा में वे यह अनुभव तो कर ही चुके थे कि पथ पर जब वे चलते हैं तो उनके जैसा अभावग्रस्त वहाँ अन्य कोई दिखाई ही नहीं देता और लोग उनको आश्चर्य से देखते हैं। सुदामा को स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि द्वारका प्रभावित क्षेत्र में एक भी व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं दे रहा था, जिसके पास जीविका का संतोषजनक साधन न हो। इसलिए वे रात्रि की सुखद शीतलता में ही अपनी शेष यात्रा अविराम करना चाहते थे। सुदामा का ध्यान बहते हुए जल की ध्वनि पर गया। सामान्यत: मार्ग में बनी ये पुलियाँ अधिकांश तीन-चार हाथ चौड़ी और दो-ढाई हाथ गहरे कृत्रिम जल-मार्गों के लिए बनाई गई थीं। इन जल-मार्गों को नदियों से जोड़ा हुआ था और इनका उपयोग कृषि-कर्म के लिए होता था। इनमें सुदामा को न स्वयं बह जाने का भय था और न डूबने का। उनको जल का यह उथला संसार प्रिय था। इस प्रकार की बहती जलधाराओं में उतरकर विशाल नदी में उतरने जैसा सुख प्राप्त कर लिया करते थे। उनको लगा कि नीचे बहता जल उनको सुदामा-सुदामा कहकर पुकार रहा है। वे सोचने लगे कि पुलिया के नीचे उतरती ढलान से वे बहती जलधारा के निकट जाकर अपने मुँह पर छींटे मार सकते हैं। शीतल जल का स्पर्श उनकी निद्रा को कुछ समय के लिए तो उनसे दूर ले ही जाएगा। उन्होंने नीचे झाँका। ज्योत्स्ना में जल का रजत वर्ण दिखा। वे उठे। ढलान की ओर बढ़े। नीचे उतरने के लिए पैर रखा ही था कि ढलान के कीचड़ ने उनको गिरा दिया। उनको पता नहीं कि कब गिरने के भय और बचने की हड़बड़ाहट में उनके हाथ ने ढलान पर उगी झाड़ी की मोटी टहनी पकड़ ली। वे घुटनों के बल ऊपर की ओर चढ़े और पुन: पुलिया का आश्रय लेकर बैठ गए। उनकी श्वास-गति असंतुलित हो गई। वे अनुभव कर रहे थे कि उनके घुटने छिल गए हैं और पहले से ही मैली और पुरानी धोती इस घर्षण को सहन नहीं कर पाई है। उन्हें अपनी इस दुर्गति पर हँसी आ रही थी। उनसे कम शिक्षित भी उनसे श्रेष्ठ जीवन जी रहा है। कम शिक्षित क्यों, एक अशिक्षित व्यक्ति का जीवन स्तर भी उनसे कहीं श्रेष्ठ है। वह छोटा-मोटा व्यापार करता है और अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक धन लाता है। उसे ज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं। उसके पास सुविधापूर्ण आवास है, सुंदर वस्त्र हैं, सुखी परिवार है।...और सुदामा के पास क्या है? घास-फूस और गारा की कुटिया, अभावग्रस्त दु:खी परिवार। धूल खाते उनके द्वारा लिपिबद्ध्‌ ज्ञानपूर्ण ताड़पत्र, जिनको उन्होंने धनार्जन का माध्यम नहीं बनाया। वे यह अनुभव कर रहे थे कि यदि उन्होंने किसी बड़े पदाधिकारी के सामने अपनी रीढ़ झुकाई होती तो आज वे किसी महान् पद पर प्रतिष्ठित होते, आय का साधन होता, गोधन होता, सेवक होते, रथ और सारथि होते। रेशमी वस्त्रों में लिपटी उनकी पत्नी सुमति किसी अप्सरा के समान शोभित हो रही होती। उनकी संतान

के मुख पर भरे-पूरे परिवार का गौरव होता।

सुदामा को हँसी आ गई और बढ़ती गई। वे पेट पकड़कर हँसने लगे। वे सोचने लगे कि कल्पना करने में वे कितने कुशल हैं। क्षण भर में वे धनपति हो जाते हैं। अपने और अपने परिवार के प्रति अपने दायित्व का पालन कर लेते हैं। उनको अभावग्रस्त जीवन से निकालकर सुख-वैभव के आँगन में ला खड़ा कर देते हैं। वे अद्भुत हैं। सुदामा की हँसी थम ही नहीं रही थी।

''ऐ मित्र! क्या बात है? क्या दुःख है तुम्हें? रो क्यों रहे हो?'' सुदामा का ध्यान उनके कान के पास गूँजे स्वर की ओर गया।

उन्होंने अपनी ओर देखा। वे जिसे हँसी समझ रहे थे, वह कब उनको रुदन की गुफा में ले गई, उनको इसका बोध ही नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि उनकी आँखों से अश्रु बह रहे हैं और अधर भूख, दुःख, कष्ट, क्लांति और आत्मग्लानि से काँप रहे हैं।

उन्होंने मुँह उठाकर देखा तो स्वर्णाभूषणों से लदा हुआ एक धनी व्यक्ति उनके निकट बैठा था। उसके मुँह और वस्त्रों से उठती गंध से उन्हें यह समझने में विलंब नहीं हुआ कि उस व्यक्ति ने प्रचुर मात्रा में मदिरापान किया है और अब वह उस मद के प्रभाव में है। मार्ग के किनारे एक सुंदर रथ खड़ा था और उसका सारथि किसी भयभीत सेवक के समान हाथ बाँधे आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा था।

''पीओगे?'' उसने स्वर्ण निर्मित पात्र सुदामा की ओर बढ़ाया और बोला, ''ये वेश्याएँ केवल धन की पुजारिन होती हैं। मैंने वसंतबेला को जितना प्रेम दिया, उतना कोई न तो अपनी पत्नी को देगा और न प्रेयसी को।...और धन कितना दिया, उसकी तो मैं चर्चा ही नहीं करना चाहता। उसके लिए विशाल भवन, रथ, दास-दासियाँ और जो कुछ धन से क्रय किया जा सकता था, सब दिया। सब दिया, सबकुछ दिया उसे।'' उसने सुदामा की ओर देखा और मदिरा पात्र को अपने मुँह से लगा लिया, ''परंतु वह इतनी कृतघ्न निकली कि नगर-श्रेष्ठी के नवविवाहित पुत्र को अपने प्रेमपाश में बाँधकर उसके साथ यात्रा पर चली गई। लो, तुम भी पीओ।'' उसने पुनः सुदामा की ओर मदिरा पात्र बढ़ा दिया और बोला, ''तुम अपनी वेश्या को कभी भी सबकुछ मत दे डालना, नहीं तो वह तुमको भोगा हुआ आम्रफल जानकर त्याग जाएगी।''

''मैं वेश्याओं के पीछे नहीं भागता।'' सुदामा ने जैसे उस व्यक्ति को डाँटा।

''तुम ऐसे भी नहीं हो कि वेश्याएँ तुम्हारे पीछे भागेंगी।'' उसने मद से भारी हुई आँखों को बलपूर्वक खोलते हुए सुदामा की दुर्दशा को देखा और बोला, ''हाँ, यह हो सकता है कि न तो तुम वेश्याओं के पीछे भागते होगे और न वे तुम्हारे; परंतु तुम किसी भांड के समान उनके आगे भागनेवालों में से होगे।'' वह अपनी बात पर प्रसन्न होकर हँसा और सुदामा की ओर देखता रहा। सुदामा की ओर से कोई प्रतिक्रिया न पाकर बोला, ''क्षमा करना। मैं नहीं बोल रहा, यह दुष्टा मदिरा और वसंतबेला का वियोग बोल रहा है। भगवान् न करे कि कभी तुम्हें तुम्हारी पे्रमिका छोड़कर जाए।''

''श्रीमन्! आपको यह शोभा नहीं देता। आपका अपने परिवार के लिए कुछ दायित्व है। आपके विचारों को जानकर मुझे लग रहा है कि आपकी पत्नी बहुत ही सुशील और सरल होगी; किंतु आप उसका और अपनी संतान का तिरस्कार कर मल के ढेर में किसी शूकर की भाँति मुँह मार रहे हैं। भाषा से आप शिक्षित और संभ्रांत कुल के लग रहे हैं; किंतु आपका आचरण म्लेच्छों जैसा है। क्या आपकी आत्मा आपको तनिक भी नहीं धिक्कारती?'' सुदामा को आवेश हो आया, ''जितना धन तुमने वेश्या पर लुटाया, उतने धन से यदि तुमने एक बड़ा आश्रम बनवाकर,

उसमें ज्ञानी ब्राह्मणों को शोध करने का संरक्षण दिया होता तो उनके आशीर्वाद और साहचर्य से आपकी उस आत्मा का विकास हुआ होता, जिसको आपने मदिरा के मद में मार दिया है।''

''आश्रम बनवाना शासन का कार्य है।'' मद्यप के स्वर में आवेश था।

''आपकी पत्नी और बच्चों को प्रेम देना तथा आपके माता-पिता को यश देना यह भी शासन का कार्य है क्या?'' सुदामा जैसे उस पर झपटा, ''और आपका कार्य है मदिरा का स्वर्ण पात्र लेकर वेश्याओं के पीछे किसी कामांध साँड़ के समान भागना।''

''ऐ वाचाल! तुझे ज्ञात नहीं है कि तू किससे संवाद कर रहा है?'' मद्यप चीखा, ''मैं राजपुरुष हूँ। यादव राजसभा का सम्मानित सदस्य।''

''अति उत्तम! सुंदर यही होगा कि आप भविष्य में किसी को अपना परिचय ही न देना। यह परिचय जानकर लोग आपसे और अधिक घृणा करेंगे। आपको शाप देंगे। क्या आपके राजसभा के महानायक योग-योगेश्वर श्रीकृष्ण भी आपकी तरह हैं? लगता है, यह सब तुम उनसे ही सीखे हो। क्यों?''

''कृष्ण मदिरा नहीं पीते और उनके विषय में कुछ न ही कहो तो अच्छा होगा। तुम्हें ब्राह्मण जानकर अब तक शांत हूँ।'' उस मद्यप का सारा मद जैसे उतर गया।

''जानकर प्रसन्नता हुई कि आप शांत हैं। तो उसी शांत मन से यहाँ बैठे-बैठे अपनी तुलना श्रीकृष्ण से करें।'' सुदामा के आवेश ने उस राजपुरुष का तल उनकी दृष्टि में और नीचे गिरा दिया। वे बोले, ''उन यादव श्रेष्ठ श्रीकृष्ण से, जिनके सम्मान की रक्षा के प्रति तुम मत्त अवस्था में भी सजग हो। उनकी राजसभा के सदस्य होने के कारण तो तुम्हें अपने व्यवहार को सदा सुसंस्कृत और मर्यादित रखना चाहिए। एक काम करो। अपनी आत्मा की तुला के एक पलड़े में स्वयं बैठ जाओ और दूसरे में श्रीकृष्ण को बिठा दो। माँ शारदा की सौंगंध लेकर कहता हूँ कि यदि तुमने पवित्रता के साथ यह विश्लेषण किया तो तुमको अवश्य अपने स्तर के विषय में सब ज्ञात हो जाएगा। यदि कण मात्र भी लज्जा शेष है तो इसी क्षण संकल्प लो कि मदिरा का त्याग कर, अपने परिवार और समाज का हित संपादन कर, अपने अब से पूर्व किए कुकृत्यों का प्रायश्चित्त करोगे। वह करके देख लिया, अब यह करके देखो जो मैं कह रहा हूँ। शेष तुम्हारी इच्छा। तुम सोचो कि मुझे तुमको यह सब सुनाकर क्या मिला? तुम मुझसे रुष्ट ही हो गए न! यदि तुम्हारे आग्रह पर मैं मदिरा पीता तो हो सकता है, तुम यह स्वर्णपात्र मुझे देकर आगे बढ़ जाते। परंतु ये सभी पदार्थ गौरव का हरण करनेवाले हैं, कीर्ति को नष्ट करनेवाले हैं। तभी तो मैंने न केवल इनका तिरस्कार किया वरन् तुमको भी कठोर शब्द कहे। इन कटु शब्दों में छिपे अमृत को अनुभव करना।'' सुदामा तेजी से उठे और पथ पर बढ़ गए। उनकी सारी वेदना, क्लांति, भूख इत्यादि निराश करनेवाली सभी दशाएँ न जाने किस दिशा में तिरोहित हो गई थीं।

सुदामा ने मुड़कर देखा। वह मद्यप उनकी ओर ही देख रहा था। उसका सारथि उसे सहारा देकर रथ पर चढ़ाने का प्रयास कर रहा था।

सुदामा अपने इस रूप को देखकर चमत्कृत थे। वे कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि पथ पर चलते किसी परिचित व्यक्ति को भी वे मार्ग देने के लिए, संकोचवश निवेदन भी न कर पानेवाला सुदामा, किसी राजपुरुष को इस प्रकार धिक्कार सकता है। वे अपने भीतर उस अज्ञात शक्ति को खोज रहे थे, जिसने यह सब किया। किंतु उनके हाथ निराशा ही लगी। वे अब कुछ भयभीत होने लगे थे। उन्होंने देखा कि वह रथ तेजी से उनकी ओर बढ़ा चला आ रहा है। वे अपने आप पर खीजे, 'सुदामा, तुझे क्या आवश्यकता थी उस राजपुरुष को धिक्कारने की? अच्छा तो

यही होता कि तू उसे प्रणाम कर अपनी राह लेता। अब यदि उसके सारथि ने तुझे अपने रथ से बाँधकर द्वारका के सैनिकों के सुपुर्द कर दिया तो तू क्या करेगा?'

'मैं उनको बताऊँगा कि मैं तुम्हारे महानायक श्रीकृष्ण का सहपाठी हूँ।' सुदामा को अपने भय को दबाने का इससे प्रभावशाली उपाय नहीं सूझा।

'और वे तेरी बात सुनकर अपने पद-प्रहारों से तेरी आरती उतारेंगे।... अब शीघ्रता कर और इस वृक्ष के विशाल तने के पीछे छिप जा।'

सुदामा ने अपनी बुद्धि के परामर्श का तत्काल पालन किया। रथ तेजी से उनके सामने से धूल उड़ाता और घरघराता हुआ निकल गया। सुदामा ने अपनी बुद्धि के प्रति आभार प्रकट किया। वे वृक्ष के तने की ओट से पथ पर आ गए। रथ तब तक बहुत दूर जा चुका था।

सुदामा ने मन-ही-मन यह संकल्प किया कि वे भविष्य में ऐसे प्रसंगों के प्रति सजग रहेंगे। यदि उनको ऐसा तेजस्वी रूप दिखाना भी होगा तो वे उसके लिए साहित्य-लेखन का आश्रय लेंगे। उपयुक्त अवसर पाकर सुदामा की भूख, क्लांति, आत्मग्लानि, वेदना इत्यादि भावों ने कँपकँपी का रूप ले लिया।

चंद्रमा उनके सिर पर था। उसकी ज्योत्स्ना में मार्ग पर वृक्षों की पत्तियों और शाखाओं के प्रतिबिंब बन रहे थे। अर्धरात्रि होने को थी और निर्जन पथ पर वे मंत्र-जाप करते हुए बढ़ रहे थे। मार्ग ने एक घुमाव लिया और उसके बाद उनको दीपमालाओं से नहाई एक सुंदर नगरी दिखाई दी। लगा जैसे वहाँ दिन ही निकला हो। उनकी दृष्टि नगर-द्वार पर बनी रक्षा-चौकी की ओर गई। वहाँ अनेक सैनिक सन्नद्ध थे। सुदामा के शरीर पर फुरफुरी दौड़ गई : आधी रात को वे अति सुरक्षित द्वारकापुरी में प्रवेश कर रहे हैं। क्या वे यह कार्य सूर्योदय के बाद नहीं कर सकते थे? उस समय जनसमूह के मध्य वे सुविधापूर्वक इस सैनिक-बाधा को पार कर सकते थे। पर अब वे रक्षकों की दृष्टि में आ गए थे। एक रक्षक उनकी ओर अँगुली से संकेत कर रहा था।

'यह मेरी ओर संकेत क्यों कर रहा है?' सुदामा ने भयभीत होकर अपनी बुद्धि से पूछा।

'चलते रहो। अभी कुछ ही समय पश्चात् सब ज्ञात हो जाएगा।' बुद्धि ने जैसे अपना माथा ठोका हो।

'किंतु अभी तुम तो बताओ।' सुदामा अपनी बुद्धि पर खीजे।

'मैं क्या बताऊँ? अभी वह राजपुरुष इन द्वार-रक्षकों को अपना वह स्वर्ण-पात्र देकर यह बता गया होगा कि अभी एक महान् ब्राह्मण देव पधारेंगे। उनको शत्रु-गुप्तचर का सम्मान देकर काल-कोठरी में उनके आतिथ्य की व्यवस्था करना।'

'ओह, यह मैंने क्या बो दिया?' सुदामा ने अपने माथे पर मुक्का मारा, 'अच्छा भला अपनी कुटिया में था। उस सुमति की मति मारी गई थी और उसने इस संकट में झोंक दिया।'

'सुमति ने तुमसे कहा था कि तुम उस विलासी राजपुरुष के राजगुरु बनो?' उनके मन से उठे किसी स्वर ने उनको आड़े हाथों लिया, 'दोष अपना और आरोप किसी और पर! वह अघोरी एक सहस्र मुद्राएँ दे रहा था। क्यों नहीं ली? वैभव पर पद-प्रहार करके व्यर्थ के संकट को गले लगाने की क्या आवश्यकता थी?'

सुदामा को उपाय सूझा कि वे पथ के किनारे किसी वृक्ष के तने के पीछे छिप जाएँ और प्रात: होने पर ही द्वारकापुरी में प्रवेश करें। नहीं, वे द्वारकापुरी में नहीं जाएँगे। उस राजपुरुष का प्रेत उनको द्वारका में खोज ही लेगा। वे अपनी मायापुरी ही लौट जाएँगे। सुदामा छिपने के लिए वृक्ष की ओर बढ़े।

''ऐ, उधर कहाँ जा रहे हो?'' द्वार-रक्षक तेजी से उनकी ओर भागा।

''हे राम! रक्षा करो।'' सुदामा के प्राण सूख गए। उनका पूरा शरीर सूखे पत्ते के समान काँपने लगा।

''कौन हो तुम? वहाँ कहाँ जा रहे हो?'' रक्षक सुदामा के निकट आ गया।

''जाना कहाँ है, भाई?'' सुदामा ने अपने स्वर को दयनीय बनाया, ''व्रत के कारण कल से भोजन नहीं किया है तो उदर में पीड़ा हो रही है। एक पग नहीं चला जा रहा । सोचा कि थोड़ा विश्राम कर लूँ।''

''ओ शक्ति सिंह! इधर ले आ इसे।'' अवरोध के पास बैठे व्यक्ति का कड़कदार स्वर गूँजा।

''आओ महाराज! हमारे नायक से पेट का चूरन पाना।'' सैनिक हँसा।

सुदामा को लगा कि अब वे फँस चुके हैं। उनसे बचने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। रामदास उन्हें प्राय: बताता था कि नगर-रक्षक उत्कोच लेकर अपराधी को छोड़ देते हैं। पर न तो वे अपराधी हैं और न ही उनके पास उत्कोच देने के लिए ही कुछ है। है तो आध सेर मोटा चावल, जिसे इनके घर में बँधा घोड़ा भी खाने से मना कर देगा।

नायक ने सुदामा का अपनी आँखों से निरीक्षण किया।

''लग तो ब्राह्मण रहे हो?'' नायक के स्वर में टटोलने का भाव था।

अन्य द्‍वार-रक्षक भी अपने मनोरंजन के लिए सुदामा के चारों ओर घिर आए।

''श्रीमन्, यदि कोई आपको आकर कहे कि आप लग तो सेनानायक रहे हैं तो आप क्या कहेंगे?'' सुदामा स्वयं पर चकित थे कि उनके घबराए हुए चित्त से यह सधा हुआ और आत्मविश्वास से पूर्ण स्वर कैसे प्रकट हुआ, ''आप यही कहेंगे न कि जब सेनानायक हूँ तो वही तो लगूँगा। इसी प्रकार जब मैं ब्राह्मण हूँ तो आपने बिना किसी त्रुटि के जान लिया और कह दिया। आपकी दृष्टि जाँचने की ऐसी क्षमता रखती है, तभी तो आपको इस महत्त्वपूर्ण पद पर शोभित किया गया है।''

''मेरा वह अर्थ नहीं था, ब्राह्मण देव!'' नायक का स्वर सहसा परिवर्तित हो गया, ''मेरी जिज्ञासा यह थी कि यह समय तो निशाचरों के विचरने का है। ब्राह्मण के दर्शन तो ब्राह्म-मुहूर्त में होते हैं।''

सुदामा के मन से कोई पुकार कर कहनेवाला था कि वह जो रथ अभी गया, क्या उसको रोककर भी तुमने कहा कि यह समय निशाचरों का है, न कि राजपुरुषों का? पर सुदामा ने उस स्वर का मुँह कसकर दबा दिया।

''आपका कहना उचित ही है। पर मैं तीर्थ-यात्रा पर निकला हूँ। लक्ष्य तक पहुँचे बिना कुछ भी ग्रहण न करने का संकल्प लिये हूँ। पूर्णिमा की शीतलता से परिपूर्ण रात्रि में यात्रा सुखद रहती है, इसलिए अविराम चल रहा हूँ।'' सुदामा अपने नए रूप को देख रहे थे।

''कहाँ से पधारे हैं, देव?'' सैनिक ने जिज्ञासा की।

''तेरा बीच में बोलना आवश्यक है क्या? तुझे कब से कह रहा हूँ कि घामड़ के घर से कंठ को तर करने के लिए कुछ ले आ। पर...'' उसने सुदामा की ओर देखा और बोला, ''आप अपनी यात्रा पर पधारें, महाराज!''

सुदामा ने आशीर्वाद के रूप में हाथ उठाया और तेजी से आगे बढ़ गए। वे सुन रहे थे कि नायक अपने अधीनस्थ सैनिकों को कहीं से मदिरा लाने का निर्देश दे रहा था।

सुदामा ने धैर्य की साँस ली। वे अपने को देख रहे थे कि वे किस प्रकार जो नहीं घटा है, उसके घटने की कल्पना करके असंतुलित हो गए थे। वे यह भी अनुभव कर रहे थे कि परिस्थिति के समक्ष यदि आत्मविश्वास से खड़ा हुआ जाए तो कुछ-न-कुछ उपाय निकल ही आता है। वे घर से बाहर निकले तो तीन ही दिन में उनको जीवन ने वे अनुभव दे दिए, जो संभवत: वे ग्रंथों में आजीवन अनुभव न कर पाते। उन्होंने यह अनुभव किया कि शास्त्र केवल सूचनाएँ दे सकते हैं और जीवन अनुभव देता है। यदि दोनों ही हों तो सोने पर सुहागे जैसी बात हो जाए। वे

अब द्वारकापुरी के सुंदर और सुदृढ़ पथ पर थे। धूल नाम की कोई वस्तु वहाँ न थी। कहीं पर कुछ भी ऐसा नहीं पड़ा था, जिसे वे कूड़े की संज्ञा दे सकें। वायुमंडल में जैसे धुएँ का प्रवेश निषेध था। पवनदेव को केवल पुष्पों की सुगंध को वहन करने की अनुमति थी। जो कुछ भी उनको दिखाई दे रहा था, वह व्यवस्थित था। पथ के दोनों ओर प्रकाश-स्तंभ थे। सुदामा की दृष्टि किसी ऐसे ग्रामीण बालक के समान विस्मय से फैल गई थी, जिसके सामने जीवन में पहली बार हाथी आया हो और वह उतने विशाल तथा शक्तिशाली जीव को देखकर ठगा-सा रह गया हो। रात के समय भी द्वारका प्रकाश में ऐसे नहाई हुई थी जैसे शीतकाल की सुबह में कहीं अवसर पाकर मेघों के मध्य से कुछ समय के लिए सूर्य झाँक रहा हो। जहाँ भी सुदामा की दृष्टि गई, वहाँ प्रकाश-स्तंभ ही थे। भवन का आकार-प्रकार, उनका शिल्प, उनकी सज्जा जैसे कथाओं में वर्णित स्वर्ग की आभा को भी धूमिल कर रही थी। वे सोच रहे थे कि हो न हो, किसी ऐसी ही पुरी को देखकर उसकी कल्पना स्वर्ग पर आरोपित कर दी होगी। या संपूर्ण वैभव की उपस्थिति को ही स्वर्ग कहा गया होगा। वे मार्गों की चौड़ाई देखकर चकित थे। मार्गों के दोनों ओर पचास हाथ की चौड़ाई के बराबर उद्यान थे और जहाँ भी मार्ग जाता, उसके समानांतर गतिमान थे। पथों और वीथियों की स्वच्छता व सुंदरता को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे वे किसी विशाल चित्र के ऊपर भ्रमण कर रहे हैं।

उन्होंने अपने गाँव की स्थिति देखी है। वह तो जैसे साक्षात् नरक का द्वार है। स्वर्ग और नरक की परिकल्पना उनको स्पष्ट हो गई थी। जहाँ कहीं भी राजपुरुष व्यवस्था के प्रति सजग हैं, वहाँ स्वर्ग है और जहाँ वे केवल अपने भोग-विलास में डूबे हैं, वहाँ निश्चित नरक है। तभी दो अश्वारोही रक्षक आते दिखाई दिए। सुदामा ने अनुभव किया कि उनके मन में भय तो है ही नहीं, अपितु उनसे कुछ जानकारी प्राप्त करने की इच्छा है।

''असमय इस दशा में विचरण कर रहे हैं, सब कुशल तो है विप्रवर?'' इससे पहले कि सुदामा कुछ कहते, एक रक्षक ने उनसे पूछा।

''प्रभु तुम्हारा मंगल करें। मैं बहुत दूर से भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आया हूँ। मेरा मार्गदर्शन करें।'' सुदामा ने सीधी बात की।

''दर्शन करने योग्य तो श्रीकृष्ण ही हैं। परंतु इस समय तो वे शयन कर रहे होंगे। यह समय उनके दर्शन का नहीं है।'' दूसरे रक्षक के स्वर में निहित ध्वनि यह कह रही थी कि वह इस बात को सुनकर अट्टहास करना चाहता है; किंतु अभी इतनी जल्दी नहीं। वह उसके साथ चोर-रक्षक संवाद का कुछ नाटक तो खेल ले। वह बोला, ''हमें वास्तविकता बताओ।''

''क्या सत्य वचन को आप वास्तविकता नहीं मानते? जो जैसा था, मैंने कह दिया।'' सुदामा बोले।

''मुझे एक बात बताइए विप्रवर, कि यदि अर्धरात्रि के पश्चात् धूल-धूसरित दशा में, नंगे पैर फटे, वस्त्र धारण किए कोई कहे कि वह यादवों के सर्वेसर्वा के दर्शन करने आया है तो उसका क्या अर्थ लिया जाएगा?'' पहला रक्षक अश्व से नीचे उतर आया।

''इस समय द्वारका का सारा संसार गहरी नींद में सोया है और आप जिनके पास दर्शनार्थ जाने की बात कर रहे हैं, वह बात संदेह को जन्म क्यों न दे? क्या यह व्यावहारिक है? उनके दर्शन के लिए आया व्यक्ति स्वच्छ और सुंदर वस्त्रों को धारण कर आता है। अपने सामर्थ्य से अधिक स्वयं को प्रदर्शित करता है और आपकी ओर देखकर कोई भी यही कहेगा कि किसी ने भिक्षा के लिए अथवा चौर्य-कर्म के लिए यह रूप धारण किया है।'' दूसरा रक्षक भी अश्व से नीचे उतर गया।

सुदामा हतप्रभ रह गए। आज तक उनको निर्धन तो अनेक लोगों ने कहा, किंतु उनकी निर्धनता को भिखारी

अथवा चोर की संज्ञा किसी ने नहीं दी थी। सुदामा ने स्वयं को अपमानित अनुभव किया। उनके मन में आया कि वे उन रक्षकों से कहें कि वे उसको बाँधकर अपने सर्वेसर्वा श्रीकृष्ण के पास ले जाएँ और कहें कि हमें यह निर्धन ब्राह्मण भिखारी और चोर दिखाई देता है। यह कहता है कि बहुत दूर से आपके दर्शनार्थ आया है। आपका क्या विचार है?

सुदामा ने देखा कि उन दोनों रक्षकों की दृष्टि सुदामा में चोर होने का प्रमाण खोज रही है।

''ब्राह्मण देव, पोटली में क्या है?'' पहले ने पूछा।

सुदामा के मन में आया कि कहें, दिव्यास्त्र हैं। पर वे भली प्रकार जानते हैं कि मन में आई बात मन में ही बोल लेते हैं।

'सुदामा, तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो? तुम संसार के कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति हो नहीं कि दिगंबर भी चलोगे तो लोग तुम्हें प्रणाम करेंगे।' सुदामा का विवेक उनसे बोला, 'अपनी स्थिति को स्वीकार करो। धन्यवाद दो इन रक्षकों को कि जब तक इन्हें तुम्हारे चोर होने का प्रमाण नहीं मिल रहा, तब तक ये तुमसे संवाद तो सम्मानजनक रूप से कर रहे हैं। यह श्रीकृष्ण की सुव्यवस्था का ही परिणाम है। यदि कोई अन्य राज्य होता तो इस रूप-सज्जा के चलते तुम अभी तक कहीं बँधे पड़े होते। इनके साथ सहयोग करो।'

''पोटली में चावल हैं, प्रसाद-रूप चावल।'' सुदामा ने पोटली खोल दी, ''यह सत्य है कि निर्धन को संसार चोर की दृष्टि से देखता है। उसे तपस्वी भी चोर दिखाई देता है, संन्यासी भी और ज्ञान की साधना में अपना सबकुछ न्योछावर कर देनेवाला ब्राह्मण भी। मैं कोई व्रत धारण कर चला हूँ। मुझे नहीं पता, आपको व्रत की महिमा का कितना ज्ञान है; परंतु मैं आपको बता दूँ कि व्रतधारी के लिए उसकी तपस्या ही प्रमुख होती है—शेष सामाजिकता गौण।''

दोनों रक्षकों ने एक-दूसरे की ओर देखा।

''श्रीकृष्ण से आपको क्या काम है?'' पहले ने पूछा।

''कहा न दर्शनार्थ आया हूँ।'' सुदामा समझ गए थे कि ये लोग उनका पूरा शोध करके ही मानेंगे।

''हम काम पूछ रहे हैं।''

''वही तो बता रहा हूँ—दर्शनार्थ। क्या दर्शन करना काम नहीं है? क्या यह कर्म नहीं कहलाता?''

दूसरा रक्षक कुछ अप्रिय बोलने जा रहा था, पर पहले ने उसके मन को भाँपकर, उसे रोक दिया।

''क्या आप पहले भी उनके दर्शनार्थ आ चुके हैं?''

''नहीं, पहली बार आया हूँ।''

''उनसे मिलने के लिए शासन के उन उच्चाधिकरियों और व्यापारियों को भी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, जो उनसे यदा-कदा मिलते ही रहते हैं और आप तो उनसे मिलने ऐसे जा रहे हैं जैसे आप उनके पिता हों।'' दूसरे रक्षक का स्वर बता रहा था कि उसके मुँह का स्वाद भयंकर रूप से कसैला हो गया है, ''तो अवश्य ही श्रीकृष्ण आपके दर्शनार्थ आपके घर आते रहते होंगे?''

''नहीं।''

''पूर्व जन्म के संबंध के कारण तो श्रीकृष्ण आपको जानते ही होंगे? उनका-आपका तो बहुत पुराना साथ होगा? आप दोनों ने तो एक ही थाली में भोजन पाया होगा? आप दोनों पूर्व जन्म के बिछड़े संबंधी होंगे और तब वे द्वारकाधीश नहीं हुआ करते होंगे। क्यों?''

''तुम इतनी जल्दी व्याकुल क्यों हो जाते हो?'' पहले रक्षक ने दूसरे को टोका, ''बात पूरी हो जाए, उसके बाद भी यदि लगेगा कि कुछ उचित नहीं जान पड़ रहा तो फिर देखेंगे। अभी से...''

''...इसे कुछ मत कहो। यह तो दूरदर्शी है।'' सुदामा को लगा कि वे अपने अपमान का कुछ तो प्रतिशोध ले ही लें। अब जब उन्होंने ओखली में सिर दे ही दिया है तो अब क्या डरना, ''आप तो कुछ जान ही न पाए और इन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि से सब जान लिया।'' सुदामा ने दूसरे रक्षक की ओर देखा और उनके भीतर से ऐसा स्वर निकला, जिसके दर्शन उन्होंने पहली बार किए। वे बोले, ''आपने जो कहा वह सत्य है। श्रीकृष्ण मुझे जानते हैं। मेरा और उनका बहुत पुराना साथ है। कंस को आशीर्वाद देने के बाद वे अपने अग्रज बलरामजी के साथ हमारे गुरु संदीपनिजी के आश्रम में चौंसठ दिन रहे थे। मैं एकांतप्रिय था। जिस कुटिया में मैं रहता था, उसमें गुरुदेव ने श्रीकृष्ण को रहने का निर्देश दिया। इसलिए विवश हो हमें एक-दूसरे के साथ एक ही थाली में प्रसाद पाना पड़ा। मैंने धन की पूजा नहीं की, ज्ञान की पूजा की। लक्ष्मी की अपने घर आने की मनुहार मैंने कभी नहीं की। अब अपने मित्र लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण के पास लक्ष्मी को प्रसन्न करने की विद्या सीखने जा रहा हूँ। आप एक काम करें कि मुझे बाँधकर श्रीकृष्ण के निकट ले जाएँ और कहें कि एक बहुरूपिया स्वयं को आपका मित्र बताकर द्वारका में चोरी करने आया है। तो चलें?'' सुदामा ने पहले रक्षक को कठोर दृष्टि से देखा, ''मेरे संबंध में आपकी जो बातें अपूर्ण रह गई हैं, वे उनके विषय में श्रीकृष्ण से पूछ लीजिएगा।''

दोनों रक्षकों ने एक-दूसरे को भौंचक दृष्टि से देखा और अवाक् हो देखते ही रह गए।

''आप कुपित न हों, देव! हम तो अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रहे हैं। आप कुछ क्षण रुकें, हम कुछ औपचारिक चर्चा कर लें। फिर आपको अपेक्षित स्थान तक पहुँचा देंगे।'' पहले रक्षक ने हाथ जोड़कर सुदामा से कहा और तुरंत ही अपने साथी को बाँह से खींचकर सुदामा से इतनी दूरी पर ले गया कि सुदामा उनकी चर्चा न सुन पाएँ।

उनके अश्व भी चकित नेत्रों से इस प्रसंग को देख रहे थे।

''हाथ जोड़ने की क्या आवश्यकता थी?'' दूसरा रक्षक आग उगलते हुए बोला, ''अभी इसे अपने अश्वों के पैरों में गिराता हूँ। तब इसका यह सारा आडंबर घरा-का-धरा रह जाएगा।''

''यदि यह वही हुआ जो कह रहा है तो तेरा सिर अभी जहाँ है, वहीं धरा-का-धरा नहीं रह जाएगा। हो सकता है कि तुझे श्रीकृष्ण उतना बड़ा दंड न दें; परंतु बलराम तो तुझे अपने हल से चीर ही देंगे। तू मर, मेरा क्या? परंतु एक बात का ध्यान रख कि अभी मैं भी तेरे साथ रात के पहरे पर हूँ। तेरे किए में मैं भी सहभागी माना जाऊँगा, तो एक बात भली प्रकार समझ ले कि मैं तुझे यह सब नहीं करने दूँगा।''

''तो फिर क्या करें?'' पहला रक्षक सहम गया।

''ऐसा करते हैं। इसे अभी लेकर महामहिम श्रीकृष्ण के महल की ओर चलते हैं। वहाँ के सुरक्षा अधिकारी को सारी बातें बताकर इसे सौंप देंगे। यदि यह वह नहीं हुआ जो यह कह रहा है तो हमें सजग होकर अपने कर्तव्य का पालन करने का पुरस्कार मिलेगा।''

''और यदि यह वही निकला, जो यह कह रहा है तो...?'' दूसरे रक्षक ने अपना थूक सटका।

''तो तू जाने, तेरा काम जाने। अब चल।'' पहले ने अब की बार दूसरे की बाँह नहीं खींची। वह स्वयं ही उसके पीछे खिंचा चला गया।

''विप्रदेव!'' पहले रक्षक ने सुदामा से विनम्र स्वर में कहा, ''यदि मुझसे कुछ अनुचित कहा गया हो तो क्षमा कीजिएगा। हमारा कार्य ही कुछ ऐसा है। आप मेरे पीछे अश्व पर बैठें। हम आपको श्रीकृष्ण के महल तक ले चलते

हैं।''

''मैंने श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी की भी सहायता न लेने का व्रत लिया है, इसलिए धन्यवाद। मैं अश्व पर नहीं बैठ सकता।''

''बैठ जाइए न!'' पहले ने जैसे धमकाया, ''नहीं तो हमें भी पैदल चलना पड़ेगा।''

''आप मुझे मार्ग बता दीजिए। मैं स्वयं चला जाऊँगा। आपको साथ चलने की भी कोई आवश्यकता नहीं। फिर भी, यदि आप दोनों की रुचि मेरी सुरक्षा करने की है तो आप अश्व पर रहिए। मैं पैदल चलता रहूँगा।''

''यह कोई विक्षिप्त है और तुम व्यर्थ में अपने साथ मेरी शोभा-यात्रा निकलवाना चाहते हो।'' दूसरे रक्षक ने कहा तो पहलेवाले के कान में, पर कहा इस ढंग से कि सुदामा सुन ले।

''आपका नाम क्या है?'' सुदामा का स्वर यह स्पष्ट कह रहा था कि वे उसके दुर्व्यवहार के विषय में उसके उच्चाधिकारियों से कहेंगे।

''क्यों?'' दूसरे रक्षक के मुख पर भय और क्रोध के दोनों भाव एक साथ प्रकट हुए।

''धन्यवाद श्रीमान 'क्यों।' मेरा नाम सुदामा है। अब चलें?'' सुदामा उन दोनों रक्षकों की उपेक्षा कर पथ पर आगे बढ़ गए। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो दोनों रक्षक उनसे एक दूरी बना कर उनके पीछे-पीछे आ रहे हैं। उनका मन कर रहा था कि वे नए जनमे इस सुदामा की पीठ ठोंके, उसे सम्मानित करें। वे तो सदा संकोच और भय के कारण अपनी कुटिया में ही बंद रहे।

''तू तो गया 'श्रीमान क्यों' काम से। मेरा मन कह रहा है कि यह सत्य कह रहा है। यह बताएगा श्रीकृष्ण को कि उसके रक्षक 'श्रीमान क्यों' ने उसका अपमान किया, उस पर पैरों से प्रहार किया। इतना ही बहुत रहेगा कहना। आगे श्रीकृष्ण उससे जानना ही नहीं चाहेंगे। वे बलराम को बुलाकर शेष क्या करना है समझा देंगे।'' पहले रक्षक ने मुँह बनाया, ''समझा भी क्या देंगे, बलराम ऐसे विषयों में स्वयं चतुर हैं। वे तो ऐसे अवसरों की खोज में रहते हैं।''

''वैसे तो यह ब्राह्मण नहीं, पाखंडी है। बहुत हुआ तो यह संदीपनि के आश्रम में जूठे पात्र धोनेवाला कोई सेवक होगा और हमसे बचने के लिए यह स्वाँग रचने लगा है। यदि यह भूल से वह निकल भी गया तो मेरे साथ तू भी गया काम से।''

''मैं बुद्धि में तेरा पिता हूँ। मैं तो गया देख स्वाँग करने।'' पहला रक्षक तेजी से सुदामा की ओर बढ़ा और उससे बोला, ''विप्रदेव, क्या आप हाथ देखकर भविष्य बता देते हैं?''

''मैं आत्मा देखकर चरित्र बता सकता हूँ। वह जानना है क्या?'' सुदामा को खेल में आनंद आने लगा।

''आप अपना रोष त्यागें, देव! मैं धर्मलाभ अपने व्यवहार के लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ।'' धर्मलाभ ने हाथ जोड़ दिए।

''यथा नाम तथा गुण रहने का प्रयास करोगे तो धर्म भी पाओगे और लाभ भी।'' सुदामा ने चेतावनी-मिश्रित आशीर्वाद दिया।

''मैं भविष्य में आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'' धर्मलाभ ने अपने स्वर को अनुग्रहपूर्ण बनाने का प्रयास किया।

''अब जाओ श्रीमान् 'क्यों' के साथ रहो। मुझे एकांत चाहिए।'' सुदामा ने सम्राटों के समान संकेत रूप में हाथ उठा दिया। रक्षक ने तुरंत सुदामा से पूर्ववत् दूरी बना ली। आदेश देने का गर्व सुदामा पहली बार अनुभव कर रहे थे।

''मुझे तो आशीर्वाद इस पाखंडी से ही मिल गया, तुझे श्रीकृष्ण दे देंगे।'' धर्मलाभ ने प्रसन्नतापूर्वक अपने अश्व की गरदन को थपथपाया।

''तू क्या कहता है कि मैं भी जाकर क्षमा माँग लूँ?'' दूसरे के मुख पर भय प्रकट हुआ।

''वह पाखंडी अभी क्रोध में है। मुझे ही भगा दिया। कहता है, एकांत चाहिए। मेरा कार्य तो सिद्ध हो ही गया।'' धर्मलाभ अपने सहयोगी को भयभीत देख प्रसन्न हो रहा था।

''तेरे जैसा स्वार्थी सहयोगी मैंने आज तक नहीं देखा।'' दूसरा रक्षक बोला।

''और अब देखेगा भी नहीं। तेरा शेष जीवन कहाँ बीतनेवाला है, इसका आभास तुझे हो ही गया है। पर यह भी स्मरण रखना कि यह सब तेरे अहंकार की देन है। मैं तो अपना सिर इसके आगे झुकाकर अपने अहंकार को समझा आया कि तेरे किए का दंड मैं नहीं भुगतनेवाला।''

''ठीक है, मैं भी इससे क्षमा माँग लेता हूँ। परंतु यदि यह पाखंडी निकला तो फिर देखना, मैं इसका क्या करता हूँ।'' दूसरा बोला और सुदामा की ओर बढ़ने ही वाला था कि धर्मलाभ ने उसे संकेत से अपनी ओर बुलाया।

''क्या है?'' दूसरे रक्षक ने धीरे से पूछा।

''यह सिद्ध है। मन की बातें जानता है। इसे ज्ञात है कि तू नाटक करने आ रहा है।'' धर्मलाभ ने उसे डराया।

दूसरे रक्षक ने चिढ़कर धर्मलाभ को अश्लील संकेत किया और सुदामा की ओर बढ़ गया। वह सुदामा के निकट पहुँचकर कुछ बोलना ही चाह रहा था कि सुदामा ने न केवल उसे चुप रहने का संकेत किया अपितु उससे पूर्ववत् दूरी बनाए रखने का सांकेतिक आदेश भी दे डाला। वह लौटकर धर्मलाभ के पास आ गया।

''मैंने अपने को इतना असहाय कभी नहीं पाया। यह भिखारी हमें अपने संकेतों पर नचाता जा रहा है और हम नाचते जा रहे हैं।'' दूसरे रक्षक का स्वर घृणा और क्रोध से भरा था।

''हम नहीं, तुम। तुम इसके संकेतों पर नाच रहे हो। इस पर बल-प्रयोग क्यों नहीं करते? इसे अपने अश्व के नीचे गिराकर सताओ। मैं दूर से ही मना करता रहूँगा और तुम्हें रोकने नहीं आऊँगा।'' धर्मलाभ धीरे से हँसा।

''और जब मुझे मृत्युदंड दिया जा रहा होगा, तब भी दूर से देखकर आनंदित होगा।''

''एक चोर को पीटने पर कैसा मृत्युदंड!'' धर्मलाभ की हँसी थम नहीं रही थी।

''यह चोर श्रीकृष्ण का मित्र है।'' दूसरे रक्षक ने चिढ़कर कहा।

''इस दृष्टि से तो श्रीकृष्ण को तुमने चोर कहा।'' पहले ने त्योरियाँ चढ़ाईं, ''देखो, बहुत हुआ। अपनी भाषा पर ध्यान दो। अपने अहंकार में तुम बहुत कुछ न कहने योग्य भी कह गए हो और सुनो, अब मौन रहो। इसी में तुम्हारा हित है।

सुदामा अपने आत्मविश्वास पर इतराकर चल रहे थे।

'अपने बल पर इतरा रहे हैं!' उनको लगा कि सुमति उनके सामने है।

'मुझे लग रहा है कि मैं हनुमान हूँ, जिसमें सागर संतरण की क्षमता तो है, पर उसे उसका बोध नहीं था। ज्ञान के बल का परीक्षण आज हो ही गया।' सुदामा की आँखें चमक उठीं।

'किंतु हनुमान के पास जो बल था, वह तो श्रीराम का ही था। हनुमान ने सिंधु की मर्यादा तोड़ी, लंका भस्म की, सिया की सुधि लाए; किंतु गर्वित तो तनिक भी नहीं हुए।...और आप...अभी आपने कुछ प्राप्त भी नहीं किया है। सबकुछ वायवीय है। और आपका अहंकार हिमालय के शिखर पर जा बैठा। यह बल, यह आत्मविश्वास—जिस पर आप इतरा रहे हैं—भगवान् श्रीकृष्ण का ही तो है।'

'कृष्ण का कैसे है?' सुदामा तुनककर खड़े हो गए।

'जब राजपुरुष का रथ आ रहा था और आपको द्वार-रक्षक ने पुकारा था, तब अपनी अवस्था देखी थी न! उस

समय तक कृष्ण आपके मन में नहीं थे। कृष्ण के अभाव में आप भयग्रस्त थे। अब आप जो भी कर रहे हैं, कृष्ण की उपस्थिति को अनुभव करके कर रहे हैं। यदि इस द्वारका में आपको यह आत्मविश्वास न हो कि कृष्ण आपके हैं तो बताइए, क्या फिर भी आपका यह आत्मविश्वास होगा?'

मन में सुमति को अपने सामने खड़ा देख सुदामा लज्जित हुए और उनका वह मन, जो आत्मबल से भरा था, अब आत्मग्लानि से भर गया।

'लज्जित न हों, केवल मन के शत्रुओं के प्रति सजग रहें, स्वामि!' सुमति जैसे उनके हृदय में गंगा बनकर बही और उनका अहंकार रूपी बाघ उनके मन के आँगन में कीचड़ के जो पैर भर कर ले आया था, गंगा की वह पावन ऊर्मि उन पद-चिह्नों को धो गई।

उन्होंने अनुभव किया कि सत्य ही तो कह रही है सुमति। वे जिस बल पर इतरा रहे हैं वह श्रीकृष्ण का ही तो प्रताप है, अन्यथा उनसे तो हिरण भी न डरे। कृष्ण के नाम की उपस्थिति ही उनको उत्साह और साहस से भर देती है। यही तब भी हुआ था, जब वे आश्रम में उनकी कुटिया में आए थे। उन दिनों सुदामा कितने एकांत-प्रेमी और संकोची स्वभाव के थे। कोई दूसरा उन्हें बात करते तो तब देखे, जब उन्होंने ही स्वयं को बात करते देखा हो। वे सदा मौन रहा करते थे। आश्रमवासी भी उनके स्वभाव को जानकर उन्हें आश्रम की सामाजिकता का निर्वाह करने के लिए भी नहीं कहते थे। किंतु कृष्ण के आते ही जैसे उनके उदासीन जीवन में उत्सव की लहर आ गई। वे चंचल हो गए और कृष्ण के साथ रहकर जी भरकर खेले-कूदे। वे देख रहे थे कि यदि कृष्ण उनके जीवन में न आते तो वे यह जान ही नहीं पाते कि मित्रता क्या होती है और मैत्री में खेलना-कूदना, रूठना-मनाना क्या होता है! जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना से वे वंचित रह जाते। फिर हुआ भी यही। कृष्ण-बलराम गुरुदक्षिणा देने के पश्चात् जब लौटे तो सुदामा फिर से अमावस्या के चंद्रमा बन गए। वह कृष्ण का प्रकाश ही था जिसने उनको पूर्णिमा का चंद्रमा बना दिया था। उसके बाद का सारा जीवन उनके पूर्ववत् स्वभाव के अनुसार चलने लगा। इतना अंतर अवश्य हुआ कि वे पुन: पहले जैसे नितांत एकांतजीवी नहीं रहे। यदा-कदा किसी से ज्ञान-चर्चा भी करने लगे थे।

वे उस समय को स्मरण करने लगे। कितनी शीघ्रता से वह समय बीता। वे चौंसठ दिन ऐसे लगे जैसे चौंसठ क्षण हों। कृष्ण तो किसी सुखद स्वप्न के समान प्रकट हुए और कब उनकी आँख खुली, इसका उनको पता ही नहीं चला। यह समय की गति भी अद्भुत है। सुख के बरस भी दिन के समान बीत जाते हैं और दु:ख का दिन भी बीतने में बरसों का समय ले लेता है। उन्होंने अपने शरीर पर दृष्टि डाली। दुबली-पतली काया। उनकी वृद्धावस्था का स्वागत करने के लिए समय उनकी देह की दहलीज पर पहले ही अपना डेरा डाल चुका है। क्या उनमें इतना भी सामर्थ्य नहीं कि उसका डेरा उखाड़ फेंकें? वे भी सुदर्शन पुरुष न सही, किंतु समर्थ तो दिखने लगें। और कितनी ज्ञान की साधना करेंगे वे। बस हो चुकी पर्याप्त ज्ञान-साधना। अब वे अपने परिवार इत्यादि को और नहीं बिसराएँगे। उस राजपुरुष को तो वे उपदेश पिला गए। पर वे उससे कहाँ कम हैं। उसमें और उनमें इतना ही भेद है कि वह केवल मदिरापान कर रहा है और सुदामा ज्ञान की मदिरा पी रहे हैं। उस मदिरा के मद में वे अपने परिवार के प्रति अपना दायित्व भूल गए हैं। ये पोथियाँ उनके मदिरा-पात्र ही तो हैं। सुदामा के आत्ममंथन ने उनको कुछ मथ कर दिया।

'तो क्या ज्ञान भी मदिरा है?' सुदामा जैसे पूछ उठे।

'जब धन को तुम विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर सकते हो तो ज्ञान को क्यों नहीं? क्या यह उससे भिन्न है?' मंथन से उपजा स्वर बोला, 'ज्ञान-मदिरा, पे्रम-मदिरा, रूप-मदिरा, बल-मदिरा, पद-मदिरा, कुल-मदिरा—कहाँ

तक गिनाऊँ?'

'गिनाने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे अनुसार इस संसार में मदिरा के अतिक्ति कुछ है ही नहीं।' सुदामा जैसे उस स्वर से असहमत थे।

'तुम ठीक समझे सुदामा! यहाँ सबकुछ मद से भरा है।' स्वर बोला।

'तो इसका अर्थ है कि मनुष्य जीए ही न।' सुदामा ने मुँह बनाया।

'ऐसा किसने कहा? ओह! तुमने ही तो कहा!' स्वर सुदामा की सहजता पर हँसा और प्रेमपूर्ण स्वर में बोला, 'तुम मदिरा नहीं पीते?...मेरी ओर टुकुर-टुकुर क्या देख रहे हो? मैं जो पूछ रहा हूँ, उसका उत्तर दो।'

'हाँ, नहीं पीता।'

'तो क्या तुम जी नहीं रहे?'

'मदिरा पीनेवालों से कहीं श्रेष्ठ जीवन जी रहा हूँ।' सुदामा ने अपनी बात पर बल दिया।

'तो जिस प्रकार तुम मदिरा नहीं पीकर श्रेष्ठ जीवन जी रहे हो, ठीक इसी प्रकार ज्ञान, धन, रूप, बल इत्यादि से उपजे मद को स्वीकार न कर तुम इनके प्रभाव रूपी मदिरापान से बचकर श्रेष्ठ जीवन जी सकते हो। तुम्हारे पास ज्ञान तो हो, पर उसका मद न हो; तुम धनवान् तो बनो, पर लक्ष्मी के मद को अपने पर चढ़ने न दो; तुम ऊँचे-से-ऊँचे पद पर तो बैठो, पर पद पर बैठा अहंकार का प्रेत तुम्हारी मति को भ्रष्ट न कर दे। यदि इनसे मनुष्य बच सके तो वह श्रेष्ठ जीवन जीने का अधिकारी होता है।' स्वर ने जैसे सुदामा की गहराई में झाँका, 'यह तनिक भी आवश्यक नहीं था कि तुम केवल ज्ञान की एकांगी यात्रा करते। तुम धनार्जन भी करते और विद्यार्जन भी। किंतु तुम दोनों को साध नहीं सके।'

'दोनों को कोई कैसे साध सकता है?' सुदामा का मुँह अकबकाकर खुला।

'जैसे कृष्ण ने सभी कुछ साधा।' स्वर बोला।

'सभी कृष्ण तो नहीं हो सकते।' सुदामा ने प्रतिकार किया।

'उचित कहा।' स्वर ने सुदामा को घेरा, 'पर सभी सामान्य बैलगाड़ी तो हो ही सकते हैं।'

'हाँ, वह हो सकते हैं।' सुदामा ने सहज रूप से स्वीकार किया।

'तो बैलगाड़ी भी दो चक्रों से सधती और गतिशील होती है। इसी प्रकार जीवन रूपी गाड़ी को सुचारु रूप से चलाने के लिए पुरुषार्थ और भाग्य दोनों ही अनिवार्य हैं।'

'भाग्य पुरुषार्थ से अलग है क्या?'

'पुरुषार्थ का परिणाम ही भाग्य है।' स्वर ने सार कहा।

'ठहरो, ठहरो। अभी तुम जाओ और मुझे इन बातों को चबाने दो। इनको पचाने के लिए मुझे कुछ समय एकाकी छोड़ दो।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।' स्वर ने स्वयं को समेट लिया।

❑

चार

ब्राह्म मुहूर्त होने में अभी बहुत समय शेष था। वे लोग कृष्ण के महल के प्रवेश-द्वार पर पहुँच गए। वहाँ खड़े सशस्त्र सैनिकों को देखकर सुदामा ने अपने दाँतों तले अँगुली दबा ली। इतने दीर्घकाय, स्वस्थ और बलिष्ठ सैनिक उन्होंने जीवन में नहीं देखे थे। वे सोचने लगे कि इनको सैनिक कहना उचित न होगा। ये तो योद्धा हैं। सैनिकों की एक विशेष प्रजाति। उनको देखने मात्र से ही शत्रु के प्राण निकल जाएँ। महल स्वयं अपने वैभव और सुदृढ़ होने की गाथा कह रहा था।

सुदामा समझ नहीं पा रहे थे कि यहाँ उनके साथ कैसा व्यवहार होने जा रहा है। उनकी सारी आशा तो कृष्ण पर ही टिकी है और यदि कृष्ण ही द्वारका में न हुआ तब?...उस विकल्प की स्थिति में उनकी बुद्धि मार्ग खोजने लगी। उसे सूझा कि यदि कृष्ण न हुआ तो क्या हुआ, बलराम भी तो उनको जानते हैं और बलराम भी न हुए तो अधिक-से-अधिक उनको कृष्ण के आने तक कारागार में डाल दिया जाएगा। बहुत संभव है कि उस कारागार का नाम अतिथिशाला हो। तभी उसे दूसरे रक्षक की बात ध्यान आई कि कृष्ण से मिलने के लिए अति विशिष्ट व्यक्तियों को भी समय लेना पड़ता है। तब जाकर कहीं वे श्रीकृष्ण से क्षणिक भेंट कर पाते हैं। वे तो अपने अज्ञान में यह समझे बैठे थे कि कृष्ण अपने भवन में होगा। वे द्वार खटखटाएँगे और कृष्ण कपाट खोलेगा। कोई व्यक्ति इतना अति महत्त्वपूर्ण और अति व्यस्त भी हो सकता है, इसकी कल्पना तो उन्होंने कभी स्वप्न में भी नहीं की थी। वे समझ नहीं पा रहे थे कि कोई इतना अधिक व्यस्त कैसे हो सकता है कि उससे मिलने के लिए समय लेना पड़े और उसके बाद उससे पल भर की भेंट ही हो पाए। उनकी बुद्धि इस प्रसंग का अपने जीवन से तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरांत इसे राज-समाज के पाखंड के रूप में ही स्वीकार कर रही है।

धर्मलाभ ने सुदामा को दूसरे रक्षक के साथ कुछ दूरी पर रुकने का निर्देश दिया और उन योद्धाओं के निकट जाकर उनको सैनिक अभिवादन किया। उसने उनसे कुछ बात की और संकेत से आने के लिए कहा। एक योद्धा ने अपने निकट खड़े सेवक की ओर देखा। उसने आगे बढ़कर दोनों अश्वों की रास थाम ली और उनको अश्वशाला में ले गया। याद्धा मार्ग से हट गया। धर्मलाभ सुदामा को लेकर रक्षा-प्रमुख के कक्ष की ओर बढ़ा। कक्ष से पहले ही उसने दोनों को रुकने के लिए कहा और स्वयं सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ रक्षा-प्रमुख के कक्ष में चला गया। कुछ ही पलों में एक रक्षक उस कक्ष से निकला और सुदामा के साथ रुके रक्षक को संकेत से आने की अनुमति दी।

रक्षा-प्रमुख ने सुदामा की ओर देखा। वह जैसे उनका मूल्यांकन कर रहा था।

''विप्रवर को रक्षा-प्रमुख का प्रणाम!''

''प्रमुख स्वागत अधिकारी तथा श्रीकृष्ण के निजी सहायक सुभाष का भी प्रणाम स्वीकार करें, ब्रह्मदेव!''

''प्रसन्न रहें।'' सुदामा ने दोनों की ओर आशीर्वाद देते हुए हाथ उठा दिए।

सुदामा ने देखा कि रक्षा-प्रमुख का व्यक्तित्व उसके कर्म के सर्वथा अनुकूल था। इस समय भी वह इतनी स्फूर्ति से भरा था कि मिलनेवाले को लगे जैसे रात उस पर अपना प्रभाव छोड़ने में असफल रही है। उसने धर्मलाभ और उसके सहयोगी रक्षक को भी देखा। उनके मुख पर थकान, अपने कार्य के प्रति सामान्य औपचारिकता और शिथिलता थी। जबकि ये लोग तो अकल्पनीय स्फूर्ति और सावधानी से पूर्ण हैं। उसने सुभाष की ओर देखा। उसका

व्यक्तित्व उसके स्वागत अधिकारी होने को प्रमाणित कर रहा था। विकार-रहित प्रसन्न वदन। मस्तक पर तिलक। सिर पर पगड़ी और श्वेत वस्त्र।

''क्षमा चाहता हूँ देव, हमारे पास आपके शुभागमन की कोई सूचना नहीं है।'' रक्षा-प्रमुख की अन्वेषणात्मक दृष्टि सुदामा के व्यक्तित्व में कुछ संदेहास्पद खोज रही थी।

''संभवत: रक्षक धर्मलाभ ने आपको मेरी स्थिति, मेरे आने का उद्देश्य और कृष्ण के साथ मेरे संबंधों की परिचयात्मक भूमिका स्पष्ट कर दी होगी। यदि ऐसा नहीं है तो मुझे पुन: वे सभी बातें कहनी होंगी, जो मुझे यात्रा में अनेक बार कहनी पड़ीं।'' सुदामा ने रक्षा-प्रमुख की आँखों में आँखें डालकर कहा और मुड़कर उन दोनों रक्षकों की ओर देखा, ''धर्मलाभ में तो कुछ धर्म है भी, किंतु यह दूसरा रक्षक इस योग्य नहीं कि इसे रक्षक की मर्यादा का बोध भी हो। वैसे यह देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि संसार में व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी वेशभूषा से किया जाता है। द्वारका पथ पर तो मैंने इस तथ्य को...तथ्य की अपेक्षा सत्य कहना उचित होगा, अनुभव किया कि एक भी व्यक्ति ऐसा न था जो मुझे अवांछनीय पदार्थ के समान नहीं देख रहा हो। चरित्र के मूल्यांकन का आधार जब ज्ञान न होकर धन, रूप और पद हो जाए तो समाज के सांस्कृतिक पतन में विलंब नहीं होता।'' सुदामा ने रक्षा-प्रमुख की ओर देखा, ''आप यदि धर्मलाभ की जानकारी से संतुष्ट नहीं हैं अथवा उनको मेरे ही द्वारा सुनना चाहते हैं तो कहें।''

''रक्षक ने मुझे बताया...बताया...'' रक्षा-प्रमुख को दीन-हीन सुदामा से ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। सुदामा की ओर से हुए इस आकस्मिक वाचिक आक्रमण से वह हतप्रभ हो गया। यदि कोई शत्रु उसके सुरक्षा-चक्र में प्रवेश कर जाता तो वह तनिक भी हतोत्साहित न होता; किंतु जो उसके समक्ष था, वह न तो अभी तक शत्रु घोषित हुआ था और न मित्र ही प्रमाणित हुआ था।

सुदामा यह अनुभव कर रहे थे कि उन्होंने आवश्यकता से अधिक ही कह दिया है। अब उनको उपस्थित अधिकारियों की प्रतिक्रिया देखनी चाहिए।

''विप्रवर! आप कृपा कर आसन ग्रहण करें और मुझे इस संबंध में भावी काररवाई करने के लिए कुछ समय दीजिए।''

रक्षा-प्रमुख ने बैठने के लिए जिस सुखद और सुंदर आसन की ओर संकेत किया था, सुदामा उस पर बैठ गए। रक्षा-प्रमुख सुभाष को लेकर कक्ष से बाहर आ गया।

''आपका क्या कहना है, सुभाषजी?''

''अर्थात्?'' सुभाष ने अपनी ठोड़ी पर चिंतित होने के अभिनय-स्वरूप अपने दाहिने हाथ की अँगुलियों को फिराना आरंभ कर दिया।

''अर्थात् क्या !'' रक्षा-प्रमुख के स्वर में खीज प्रकट हुई, ''यह व्यक्ति वास्तव में महाराज श्रीकृष्ण का मित्र है अथवा...''

''आपको क्या लगता है?'' सुभाष रक्षा-प्रमुख की ओर देखकर मुसकराया।

''जो आप कहेंगे मुझे तो वही लगेगा। आप इस परिस्थिति का आनंद फिर उठा लीजिएगा। अभी तो मुझे इस संकट से उबारें।'' रक्षा-प्रमुख का स्वर चिंतित था।

''इसमें संकट कैसा? यह कृशकाय, अति निर्धन, दीन-हीन ब्राह्मण कोई दस्युओं का रेवड़ लेकर थोड़े आया है!'' सुभाष हँसा।

''वह लेकर आता तो आनंद ही न आ जाता। हमारे शस्त्रों और भुजाओं का वास्तविक व्यायाम हो जाता।'' रक्षा-प्रमुख का स्वर पुन: चिंतित हो गया, ''पहले ही ब्राह्मण देव इन रक्षकों के शाब्दिक कटु-बाणों से आहत हो चुके हैं। मैं नहीं चाहता कि जो स्वयं को भगवान् का मित्र बता रहा है, उसको उसकी गरिमा के अनुकूल व्यवहार न मिले। तुम नीति-कुशल हो भाई! अब मुझे समझ में आया कि परमात्मा ने इस समय तुम्हें यहाँ क्यों रोक रखा हैं, अन्यथा तुम तो अपने घर जा रहे थे। अपना मत प्रकट करो न!''

''तुमने ब्राह्मण की भाषा देखी। परिमार्जित, अलंकृत और ज्ञान के आत्मबल से परिपूर्ण। यह तो निश्चित है कि ये विप्र हमारे महाराज से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। यदि ऐसा न होता तो इतने आत्मविश्वास, इतनी सहजता और इतने आत्मीय अधिकार के साथ ये संवाद नहीं करते। अब यह एक भिन्न विषय है कि हमारे प्रभु इनके साथ संबंधों की कितनी घनिष्ठता को अनुभव करते हैं। हमारे प्रभु तो हैं ही पे्रम के सागर। हो सकता है, वे कहीं बरसे हों और प्रभु के पे्रम की स्वाति नक्षत्र की वर्षा की एक बूँद इस निरीह ब्राह्मण के मुख में गिर गई हो और इसकी भक्ति के प्रभाव से वह बूँद आत्मीयता का मोती बन गई हो। उसी मोती के बल पर यह विपदा का मारा भगवान् से भेंट करने चला आया हो और हो सकता है कि भगवान् इसको जानते भी न हों अथवा पहचान भी न पाएँ।''

''आप यह सब कैसे जान लेते हैं?'' रक्षा-प्रमुख ने चकित होकर पूछा।

''जैसे तुम व्यक्ति के शारीरिक गठन और उसके शस्त्रों को देखकर उसके योद्धा होने के स्तर का मूल्यांकन करते हो, वैसे ही हम मनुष्य की वाणी अनुभव कर उसका चरित्र पढ़ लेते हैं।'' सुभाष बोला, ''परंतु मुझे एक बात का आश्चर्य हो रहा है।''

''शीघ्र कहिए!'' रक्षा-प्रमुख की व्याकुलता बोली।

''आप उस दृष्टि से विचार न करें।''

''किस दृष्टि से?'' रक्षा-प्रमुख चकित था कि अभी तो उसने अपने मनोभाव को प्रकट भी नहीं किया, फिर...

''आपकी उत्सुकता इस बात में है कि मैं विप्रवर सुदामा की किस बात से आश्चर्यचकित हूँ और आप फिर उस आश्चर्य में से संदेह का सृजन करेंगे और उस संदेह से इस पात्र को पाखंडी सिद्ध करने का प्रमाण जुटाएँ।''

रक्षा-प्रमुख ने लज्जित होकर सिर झुका लिया।

''मैं इस बात से चकित हूँ कि विगत चौदह वर्षों से मैं भगवान् की सेवा में हूँ और उनके प्रत्येक परिचित को जानता हूँ। यहाँ तक कि संदीपनि आश्रम के लिए भी सदा मानार्थ कुछ-न-कुछ जाता ही रहता है; परंतु उस सूची में सुदामा जैसा कोई नाम नहीं है और रक्षक धर्मलाभ ने सुदामा के जिस ग्राम का नाम बताया है, वह बीस-पचास घरों का कोई बहुत ही छोटा उपेक्षित ग्राम लगता है।''

''यह व्यक्ति भी तो उपेक्षित ही लगता है। यदि इसने जनेऊ और शिखा धारण न की हो तो या तो यह विक्षिप्त लगे या कोई बहुरूपिया। आपने इसके वस्त्र देखे।...'' रक्षा-प्रमुख ने जैसे असंगत शब्द चयन के निवारण-स्वरूप अपना सिर हिलाया, ''...कहना तो नहीं चाहिए, पर वस्त्र हो तो देखें। एक पतली धोती है, वह भी पुरानी और मैली। कोई क्यों न इनकी ओर विस्मय से देखे? मैंने द्वारका में एक भी व्यक्ति इस दशा में नहीं देखा। याचक तो यहाँ हैं ही नहीं। सब श्रमिक हैं। वे भी ऐसी दीन दशा को प्राप्त नहीं हैं। साधु तो बहुत ही अच्छी अवस्था में हैं''

''कह तो आप उचित रहे हैं।'' सुभाष मुसकराया।

''प्रश्न यह है कि अब करें क्या? मेरी इस स्थिति पर आप बाद में मुसकरा लीजिएगा। अभी मुझे इस संकट...''

''आइए।'' सुभाष ने रक्षा-प्रमुख की बात काटी और उसे अपने पीछे आने का संकेत कर कक्ष की ओर बढ़ गया।

''विप्रवर सुदामाजी, आप हमारे महाराज के मित्र हैं। अत: हमारा यह धर्म है कि हम आपके सत्कार की सम्यक् व्यवस्था करें। हमारा आपसे निवेदन है कि आप अतिथि-गृह में विश्राम करें। स्नान-ध्यान करके भोजन पाएँ। भगवान् के आने पर हम उनको आपके शुभागमन की सूचना दे देंगे।'' सुभाष के स्वर में सम्मान था।

''क्या कृष्ण द्वारका में नहीं हैं?'' सुदामा का स्वर ऐसा था कि उन्हें लगा कि यदि उन्होंने संयम नहीं रखा तो वे रो ही पड़ेंगे। वे सोचने लगे कि इतने कष्ट और अपमान सहकर वे यहाँ तक आए। अब जाने कब कृष्ण का आगमन होगा और ये उसको घेरे हुए सुरक्षा-चक्र के उपकरण पता नहीं कृष्ण तक उसका संदेश पहुँचाएँगे भी या नहीं। यह भी तो हो सकता है कि ये उसको प्रात: यह कह दें कि इनके महाराज ने कहलवाया है कि वे किसी सुदामा को नहीं जानते या वे कुछ दिन व्यस्त हैं। सुदामा को कहा जाए कि वह फिर कभी पधारें। ऐसे में वे यह हठ तो कर ही नहीं सकेंगे कि कृष्ण को उनके सामने प्रस्तुत करो। यदि कृष्ण अपने मुख से उनको पहचानने से या मिलने से मना करेंगे तो वे चले जाएँगे। उनको लगा कि यदि ऐसा हुआ तो वे दोनों रक्षक भी उससे प्रतिशोध लेंगे। सुदामा ने एक दृष्टि वहाँ उपस्थित सभी लोगों पर डाली। सुभाष उनके सामनेवाली चौकी पर उनके उत्तर की प्रतीक्षा में उनका मुँह ताक रहा था और शेष लोग तो सुदामा को उस पर घात लगाए हिंसक जीव ही दिख रहे थे। उसे लगा कि ये अधिकारी गण उसको यहाँ से सम्मानपूर्वक खदेड़ने का षड्यंत्र रच रहे हैं।

''वे द्वारका में ही हैं। परंतु एक निश्चित समय पर मैं उनकी सेवा में उपस्थित होता हूँ और उनके सम्मुख दिन भर की रूपरेखा प्रस्तुत करता हूँ। मेरा कहने का आशय यही था कि सभा-कक्ष में उनके आने पर आपके आगमन की सूचना...''

''ओह!'' सुदामा ने अपना माथा पकड़ा।

''आपका स्वास्थ्य तो ठीक है विप्रवर, '' सुभाष ने सुदामा का हाथ छुआ।

''मैं पूर्णत: स्वस्थ हूँ।'' सुदामा ने अनुभव किया कि अब ये लोग उसको रुग्ण घोषित कर चिकित्सालय भेजना चाहते हैं। हो सकता है कि वह चिकित्सालय मानसिक हो। नहीं, वे किसी भी मूल्य पर इन राजकीय चाकरों को सफल नहीं होने देंगे। सुदामा बोले तो उनका स्वर संकल्पपूर्ण था, ''श्रीमान सुभाषजी! इस समय श्रीकृष्ण को सूचना देना क्यों संभव नहीं है? जब मैं उससे भेंट करने तीन दिन भूखा-प्यासा चलता आया हूँ और मेरी पत्नी ने मुझसे यह प्रतिज्ञा करवा ली थी कि मैं केवल कृष्ण का ही आतिथ्य स्वीकार करूँगा और वह भी साक्षात् कृष्ण के हाथों तो मुझे नहीं लगता कि दो मित्रों के मध्य बाधा-स्वरूप आपको उपस्थित होना चाहिए। आपको दूत के रूप में आपात संदेश श्रीकृष्ण तक पहुँचाना चाहिए।''

रक्षा-प्रमुख के भीतर बैठा अधिकारी जागने लगा। उसे लगा कि यह ब्राह्मण वास्तव में कोई मनोरोगी है और उन सभी को मूर्ख बना रहा है। यदि इसके कहने पर वे इस समय महामहिम श्रीकृष्ण को जाकर यह सूचना देंगे और वे इसे आपात सूचना जानकर यहाँ आकर यह कहेंगे कि वे इसे नहीं जानते तो उसका सिर तो अपनी अयोग्यता में ही झुक जाएगा। उससे पूछा जाएगा कि क्या उसको व्यक्ति की भी पहचान नहीं रही? क्या उसे राजकीय आचार-विचार और अनुशासन का भी विचार नहीं है? उसके लिए यह आदेश है कि वह इस समूचे क्षेत्र को सुरक्षित रखे तथा प्रत्येक आगंतुक की सुरक्षा संबंधी जाँच करे और जिसने मिलने का जो समय लिया हो, उसे उसी समय प्रवेश की अनुमति दे उसके जीवन में न कभी ऐसा अवसर आया और न ही नियमावली में ऐसी परिस्थिति की चर्चा ही की गई है कि यदि राजप्रमुख के परिवार के किसी सदस्य का कोई अपरिचित दीन-हीन मित्र उससे भेंट करने अर्धरात्रि के पश्चात् अकस्मात् प्रकट हो जाए तो उस समय उसका क्या कर्तव्य होना चाहिए। यदि हठ करने पर वे

उसे बलपूर्वक यहाँ से हटा देते हैं और यह वास्तव में वही निकला जो यह अपने विषय में बता रहा है, तब तो... वह महाराज के घनिष्ठ मित्र के रूप में अपना परिचय देनेवाले किसी भी व्यक्ति के संबंध में स्वयं कोई अदूरदर्शी निर्णय लेकर अपने लिए संकट खड़ा नहीं करेगा। वह सुभाष पर ही इसका सारा दायित्व डाल देगा। यदि कुछ असंगत हुआ तो सुभाष से प्रश्न करने का कोई साहस नहीं करेगा। वह महाराज का प्रिय है और उनका निजी सहायक है।

''आपकी इच्छा शिरोधार्य है, सुदामाजी! मैं आपकी भावदशा समझ रहा हूँ; किंतु इतना निवेदन करना चाहूँगा कि इन दिनों राजनीतिक उथल-पुथल बहुत अधिक है। भगवान् श्रीकृष्ण को तो तीन दिन पश्चात् लौटना था। परंतु जाने कल उनको द्वारका का कौन सा कार्य स्मरण हो आया कि अत्यावश्यक संगोष्ठी को छोड़कर अविराम यात्रा करके मध्य रात्रि से कुछ देर पहले ही द्वारका पहुँचे हैं। उनके सेवक के रूप में मेरा यह धर्म है कि मैं उनके विश्राम में सहायक बनूँ और जितना भी हो सके, उनको अनावश्यक कार्यों से बचाकर रखूँ। एक सच्चे मित्र के रूप में आशा है, आप भी यही चाहेंगे कि इस असमय उनके विश्राम में बाधा उत्पन्न न की जाए।''

रक्षा-प्रमुख सुभाष की सहिष्णुता देखकर चकित था। वह सोचने लगा कि कोई सुभाष के सम्मुख श्रीकृष्ण के सम्मान में एक शब्द भी अनुपयुक्त प्रयोग कर जाए तो वह उसकी ऐसी दशा कर देता है कि भविष्य में वह व्यक्ति उसके सामने श्रीकृष्ण के संबंध में मौन ही रहता है। वह हृदय से उनको भगवान् मानता है और उनका भक्त है। परंतु आज उसको यह क्या हो गया? एक दो कौड़ी का साधारण से भी निम्न स्तर का विक्षिप्त उनके सर्वेसर्वा के संबंध में इस प्रकार चर्चा कर रहा है जैसे...जैसे...रक्षा-प्रमुख का सिर चकरा गया। उसे अपने 'जैसे' के लिए उपमा नहीं मिल रही थी।

''सुभाषजी!'' सुदामा मुसकराया, ''मित्रता का मूल्य चुकाना होता है। मित्र वही है, जो संकट में काम आए। मुझ पर संकट गहराया है, इसीलिए मैं अपने मित्र से मिलने आया हूँ।''

''आप हमें आदेश करें कि किसने आपके साथ अत्याचार किया? हम अभी उसको...''

''...शांत!'' सुदामा ने रक्षा-प्रमुख को वहीं रोक दिया और उससे बोले, ''संवाद वही होता है, जो दो के मध्य हो। तीन के बीच वह प्रलाप बन जाता है।''

रक्षा-प्रमुख ने अपने अधीनस्थ सहयोगियों की ओर देखा। उसने अनुभव किया कि वे उसकी इस दुर्गत पर मन-ही-मन हँस रहे होंगे। आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसको किसी ने इस प्रकार डाँटा हो। वह जिस पद पर है, वहाँ तो प्रत्येक उससे सम्मानजनक रूप से बात करता है। आगंतुक उसके सामने हड़बड़ाने लगते हैं और यह शक्तिहीन ब्राह्मण उनसे इस प्रकार बात कर रहा है जैसे वे द्वारपाल हों और वह सेनापति। उसने सोचा कि वह कुछ कठोर होकर इस ब्राह्मण से बात करे परंतु कुछ सोचकर उसने मौन रहना ही उचित समझा।

''यदि आप इस समय कृष्ण को मेरे आने की सूचना नहीं दे सकते तो...'' सुदामा उठ खड़े हुए, ''...तो जब वे उठ सभागार में आएँ तो उनसे कहिएगा कि गुरु संदीपनि का शिष्य और उनका सहपाठी सुदामा उनसे मिलने आया था और हमने उनको लौटा दिया। यदि वे आप लोगों को मुझे लिवा लाने के लिए भेजें तो कह दीजिएगा कि यह सुदामा की प्रतिज्ञा है कि वह अब मुड़कर द्वारका नहीं आएगा।''

रक्षा-प्रमुख ने सुना था कि ऋषियों में शाप और वरदान देने की शक्ति होती है। यह ब्राह्मण तो जैसे शाप दे रहा है।

''आप सेवक को क्षमा करें, सुदामाजी! यह सब कहना हमारी दिनचर्या और अनुशासन का अंग है। उस औपचारिकता का निर्वाह भर करना था, वह हो गया। आप उचित कहते हैं कि मित्रता का मूल्य तो चुकाना होगा।

अब यह तो भविष्य बताएगा कि किसने कितना मूल्य चुकाया। आप आसन ग्रहण करें। मैं तत्काल भगवान् को आपके शुभागमन की सूचना देने जा रहा हूँ।''

''मेरी सम्मति इसमें नहीं है, सुभाषजी!'' रक्षा-प्रमुख के स्वर में आदेश का नहीं वरन् गिड़गिड़ाने का भाव था।

''सब दायित्व मेरा रहा।'' सुभाष ने जैसे रक्षा-प्रमुख को अभयदान दिया।

रक्षा-प्रमुख ने अपने कान पकड़े, माथे पर आया पसीना पोंछा और छत की ओर हाथ जोड़कर परमात्मा को धन्यवाद दिया। उसने चौकी पर रखा जल का पात्र उठाया। उसे पीया और धैर्य की साँस ली।

सुदामा ने अपनी आँखें मूँद लीं और चौकी के पृष्ठ भाग पर अपने सिर को विश्राम की मुद्रा में टिका दिया। सुदामा सोचने लगे कि क्या सुभाष वास्तव में कृष्ण के पास जाएगा या फिर यों ही कुछ समय व्यतीत कर उनको यह सूचना देगा कि श्रीकृष्ण से उनका संपर्क नहीं हो पा रहा, या वे उनसे कल सभागार में मिलेंगे, या वे इन दिनों उनसे मिल नहीं सकते?

सुदामा का सिर किसी चक्रवात के द्वारा घुमाए पत्ते के समान घूम रहा था। उनके सिर में एक भंभीरी-सी बज रही थी।

तभी उन्हें सुभाष के साथ आवेश की अवस्था में श्रीकृष्ण आते दिखाई दिए।

''कृष्ण!'' सुदामा पुकार उठे।

''तुम्हें मर्यादा का कुछ विचार है कि नहीं, सुदामा!'' कृष्ण का स्वर कुपित था, ''यह अर्धरात्रि का समय...इस समय कोई सज्जन पुरुष किसी के द्वार नहीं जाता। तुम्हारे ज्ञान को क्या हुआ?''

''मैं तो मैत्री का आधार...'' सुदामा ने अनुभव किया कि उनकी दशा काटो तो रक्त नहीं जैसी हो गई है।

''...मैत्री! कैसी मैत्री? तुम ब्राह्मण अपने को समझते क्या हो? एक वे द्रोण थे, जो तुम्हारे समान मैत्री-मैत्री पुकारते द्रुपद की सभा में प्रवेश कर गए और उनके साथ समकक्ष जैसा व्यवहार करने लगे। मर्यादा भी कुछ होती है!''

सुदामा को लगा किसी ने उनके प्राण ही ले लिये हैं।

''आप बताइए! इसका क्या करें, प्रभु? इसने तो हमें भी बहुत सताया है। सताया क्या अपमानित भी बहुत किया। आपका नाम लेकर हमें भयभीत भी बहुत किया। यदि आप कहें तो इसे कारागार...''

''...नहीं! क्या द्रुपद ने अपने मित्र द्रोण को कारागार में डाला था?'' कृष्ण ने दयादृष्टि से सुदामा की ओर देखा और सुभाष से कहा, ''हमारी मित्रता के नाम पर विप्र को कुछ वस्त्र, धन और भोजन देकर विदा करो।''

श्रीकृष्ण जिस आवेश में आए थे, उसी आवेश में पैर पटकते चले भी गए। सुदामा यही सोचते रह गए कि वे सुमति के सम्मुख किस मुख से जाएँगे? यह सब सुनकर तो उस निरीह अबला का ह्रदय ही फट जाएगा। वह अघोरी ठीक ही कह रहा था कि उसे सब ज्ञात है कि उनके साथ क्या होनेवाला है। किंतु उन्होंने उस सिद्ध की बात भी नहीं मानी। सुदामा हताश मन से मुड़े। वे सीढ़ियों के पास पहुँचे। उनका पैर असंतुलित हुआ और वे गिर गए। उनको उठाने के लिए अनेक लोग दौड़े। उन्हें सुभाष का स्वर सुनाई दे रहा था। वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से कह रहा था कि एक तीव्रगामी रथ पर इस ब्राह्मण का शव रखकर मायापुरी ग्राम में इसकी पत्नी को सौंप आओ। यह सुनकर सुदामा भयभीत हो गए कि वे मर गए हैं। उनको लगा कि यदि कृष्ण ने उनको दुत्कार भी दिया था तो इस बात को ह्रदय पर लेकर प्राण त्यागने की क्या आवश्यकता थी? उनको लौटकर अपनी पत्नी और बच्चों के पास जाना चाहिए था और इस ज्ञान को चूल्हे में भस्म करके अपनी सारी ऊर्जा को धन कमाने में लगा देना चाहिए था। वे रो पड़े, ''हे भगवान्! यदि तू है तो मुझे प्राणदान दे। मैं अपने परिवार के प्रति जिस कर्तव्य का निर्वाह नहीं

कर पाया, उसके लिए मुझे एक अवसर दे। अन्यथा मेरी आत्मा सदा भटकती ही रहेगी। मुझ पर दया करो श्रीहरि!'' सुदामा को लगा कि सुमति उनके पास खड़ी उनसे कह रही है कि जाने भी दें स्वामी! जब राम ही चाहता है कि हम नष्ट हो जाएँ तो फिर इस जीवन का क्या लाभ? और इतना कहते ही सुमति ने भी अपने प्राण त्याग दिए। तभी उन्हें संदीपनि गुरु आते दिखाई दिए। वे उनके बच्चों को अपने आश्रम में ले जाने के लिए आए हैं। सुदामा ने पुकारकर संदीपनि से कहा, 'गुरुदेव, इनका ध्यान रखिएगा और जैसे मुझे माता-पिता का पे्रम दिया था, वैसा ही इनको भी दीजिएगा और यदि भविष्य में कोई कृष्ण आपके आश्रम में आए तो उससे मेरे बच्चों की रक्षा कीजिएगा। सुदामा सुमति के शव को पड़ा देखकर चीख उठे।

''अरे, कोई इस ब्राह्मण को उठाओ।'' रक्षा-प्रमुख का स्वर गूँजा।

सुदामा ने देखा कि दो योद्धा उन्हें उठाने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने उनको उठाया और पुन: आसन पर बिठा दिया। सुदामा ने चारों ओर देखा। न सुमति का शव पड़ा था और न ही वे मरे थे। नींद के झोंके ने उनको स्वप्न लोक में गिरा दिया था और स्वप्न लोक उनको अशुभ जगत् की सैर पर ले गया था। सुदामा ने हाथ जोड़कर आकाश की ओर मुँह किया और बोले, ''तेरी अपार कृपा है राम! कि तूने मेरे प्राण नहीं लिये। मुझे चेताकर ही छोड़ दिया। तेरी कृपा अपार है। मैं अपने परिवार के प्रति अपने कर्तव्य का भली-भाँति निर्वाह करूँगा और तेरे ध्यान में भी अपना मन लगाऊँगा।''

रक्षा-प्रमुख की दृष्टि आकाश की ओर हाथ जोड़कर बड़बड़ाते सुदामा पर टिक गई। रक्षा-प्रमुख जान नहीं पा रहा था कि ऐसा इस अनाकर्षक सुदामा में क्या है, जो सुभाष उसकी उपेक्षा नहीं कर सका ऐसी बात नहीं है कि प्रत्येक आगंतुक को महाराज से मिलने का समय दे देता है। संभवत: उसके इसी विशेष गुण के कारण महाराज उसे हर समय अपने साथ रखते हैं। वह किसी भी अनावश्यक व्यक्ति को उनके पास पहुँचने नहीं देता और ऐसा नहीं है कि वह उनको निराश लौटाता है। वह उनको संतुष्ट ही नहीं, प्रसन्न करके विदा करता है। परंतु आज इसे क्या हो गया? तभी उसे ध्यान आया कि सुभाष को तो कुछ नहीं हुआ, पर इस सुदामा को हो गया है। यह परम असंतुष्ट जीव टलने का नाम ही नहीं ले रहा था। टलने को राजी हुआ तो कुपित होकर। आज तक उसके सामने एक भी ऐसा हठी आगंतुक नहीं आया। इस स्थान पर आकर तो अच्छे-अच्छे अपनी हठ त्याग देते हैं। बड़े-से-बड़ा अशिष्ट भी यहाँ शिष्टता और विनम्रता की प्रतिमूर्ति बना होता है। अपने सामर्थ्य से अधिक श्रृंगार करके आता है। अपने प्रत्येक हाव-भाव से यही सिद्ध करता है कि वह धनी और आभिजात्य परिवार से है।...और यह सुदामा...यदि यह भगवान् के उतना ही निकट रहा है जितना यह कह रहा है तो अब तक तो इसकी गणना अति प्रतिष्ठित जनों में हो चुकी होती और यह गाजे-बाजे के साथ द्वारका आता—ऐसे समय में नहीं कि जब इसको ही संदेह की दृष्टि से देखा जाता।

रक्षा-प्रमुख का ध्यान सुभाष की ओर गया। वह उसके इस दु:साहस के कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो चुका था। वह यही समझ नहीं पा रहा था कि सुभाष ने यह व्यर्थ का संकट क्यों मोल ले लिया और अब वह महाराज को किस मुँह से उठाएगा?

उसने सोचा कि प्रतीक्षा के समय को चिंता में नष्ट न करके मनोरंजन में व्यतीत किया जाए।

''धर्मलाभ!'' रक्षा-प्रमुख ने पुकारा, ''अपने सहयोगी रक्षक को इधर लाओ।''

सुदामा की आँख खुल गई। उन्होंने देखा कि दूसरा रक्षक उनकी ओर देखता हुआ रक्षा-प्रमुख की ओर बढ़ रहा था।

''क्यों रे, महाराज के मित्र का अपमान करता है!'' रक्षा-प्रमुख ने उसे डाँटा और अपने अधीनस्थ सहयोगियों से

बोला, ''यह दुष्ट जिन उच्चाधिकारियों के अधीन है, उनको संदेश भेजो कि वे तत्काल यहाँ उपस्थित हों।''

''परंतु रक्षा-प्रमुखजी यह महाराज का मित्र नहीं है। यह हम सबको मूर्ख बना रहा है।'' दूसरा रक्षक बोला, ''इस प्रकार तो चोरों का साहस और बढ़ जाएगा। मैंने इसके साथ जो व्यवहार किया, इसे चोर जानकर किया।''

''और धर्मलाभ, तुमने सुदामाजी को क्या समझा?'' रक्षा-प्रमुख ने चुहल की।

''प्रभुजी, जब आप जैसे गुणीजन ही सुदामा के संबंध में किसी प्रामाणिक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाए तो यह सेवक किस कोटि में आता है। मैंने यदि इनको समुचित सम्मान नहीं दिया तो इनका अपमान भी नहीं किया।'' धर्मलाभ ने सिर झुका कर कहा।

रक्षा-प्रमुख उसका अंतिम वाक्य सुनकर ठिठक गया। एक साधारण रक्षक यह कह रहा है कि उसने प्रामाणिक निष्कर्ष के अभाव में सुदामा को यथोचित सम्मान नहीं दिया तो उनका अपमान भी नहीं किया और वह क्या कर रहा है? एक प्रकार से सुदामा को अपमानित करने के लिए यह स्वाँग रच रहा है। उसे अपने कृत्य पर लज्जा आई। उसके मन में आया कि वह उठे और सुदामा से अज्ञान में हुई त्रुटि के लिए क्षमा माँग ले। वह महाराज का मित्र है और ब्राह्मण है। यदि वह सुदामा के चरण भी पकड़ लेगा तो कुछ हानि तो होने से रही। वह उठने को हुआ ही था कि उसकी बुद्धि ने उसे धिक्कारते हुए कहा, 'तुझसे बुद्धिमान तो वह साधारण रक्षक ही है, जिसने बिना जाने न उसे सम्मान दिया और न उसका अपमान ही किया। और तू क्या करने जा रहा है? किसके चरण पकड़ने जा रहा है? तेरे अधीन सहस्रों योद्धा हैं और तू इस असहाय के चरणों में गिरकर अपनी सारी प्रतिष्ठा, पद, मान-मर्यादा, आत्मसम्मान को धूल में मिला लेना चाहता है?'

'धूल में तो एक दिन सबकुछ मिलना ही है, उससे पहले अपने किए का प्रायश्चित्त हो जाए तो सुंदर बात है।' रक्षा-प्रमुख के हृदय ने अपना पक्ष रखते हुए कहा, 'यह तो सत्य है कि तुमने अपने मन में इस निर्दोष ब्राह्मण को बहुत अपमानित किया है। मन से की गई उस हिंसा का प्रायश्चित्त क्षमा माँगकर कर लो। ब्राह्मण तुरंत क्षमादान भी दे देते हैं। आगे बढ़ो और अपनी आत्मा पर चढ़ाए बोझ को उतार फेंको। फिर जाने अवसर मिले या न मिले।'

'अवसर! क्यों, ऐसा क्या होने जा रहा है?' रक्षा-प्रमुख की बुद्धि बिदकी और उसने उसके हृदय को एक दुलत्ती मारी, 'चल यहाँ से! इतने कर्मचारियों के मध्य पहले ही यह अशिष्ट ब्राह्मण रक्षा-प्रमुख को नीचा दिखा चुका है और अब तू इस पद की शेष प्रतिष्ठा को धूल में मिलाने को तत्पर है। तू चाहता है कि महामहिम रक्षा-प्रमुख इस विक्षिप्त के चरण छूएँ और बाद में जब यह प्रमाणित होगा कि यह एक मनोरोगी है, न कि भगवान् श्रीकृष्ण का मित्र, तब अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के मध्य क्या आत्मसम्मान रह जाएगा।'

रक्षा-प्रमुख ने बुद्धि की बात मान ली। मानता भी क्यों न। सौ में से निन्यानबें अवसरों पर तो उसी का आश्रय लेकर उसे चलना है। हृदय का क्या है? न उसकी जाति, न पद, न प्रतिष्ठा और न अनुशासन।

धर्मलाभ के उत्तर के सम्मुख रक्षा-प्रमुख को सिर झुकाए चिंतन करते देख वातावरण में एक स्तब्धता छा गई। जो जहाँ था, वहीं चित्रवत् हो गया। पता नहीं उस कक्ष में ऐसा क्या आ घुसा था, जिसने सबको नि:शब्द कर दिया था। रक्षा-प्रमुख ने देखा कक्ष का द्वार खुला। श्रीकृष्ण के साथ सदा गोपनीय रूप से रहनेवाले दो अंगरक्षक प्रकट हुए। ये वे दो रक्षक थे, जो किसी भी परिस्थिति से निबटने में प्रवीण थे और श्रीकृष्ण के साथ छाया के समान रहते थे। इनको वहाँ के अदृश्य योद्धा भी कहा जाता है। स्थितियाँ तनिक भी असामान्य हुईं और ये न जाने कहाँ से प्रकट हो जाते हैं। परंतु ये यहाँ क्या करने आए हैं? क्या सुभाष को असमय वहाँ देखकर इन योद्धाओं ने उनको इस समय महाराज के शयन-कक्ष में प्रवेश की अनुमति नहीं दी और स्वयं इस विषय की सत्यता का शोध करने चले आए हैं?

तभी उनके पीछे से सुभाष सिर झुकाए और ऐसा निस्तेज मुख लिये चला आ रहा था, जैसे महाराज ने उसे उसकी इस मूर्खता के लिए धिक्कारा हो और उसे मूर्ख शिरोमणि कहकर सम्मानित किया हो।

''पधारें सुभाषजी! क्या बनी?'' रक्षा-प्रमुख की अंधी गुफाओं में बैठा अहंकार का नाग उसके संयम को धता बताते हुए बाहर निकल आया। सुभाष की यह दशा देखकर वह प्रफुल्लित हो अपना फन लहरा रहा था।

सुभाष सुदामा की ओर सिर झुकाए बढ़ा।

''क्या हुआ, सुभाष?'' सुदामा चौकी से उठ गए।

''मैंने असमय प्रभु को उठाया और आपके विषय में बताया कि कोई विप्र सुदामा आए हैं। स्वयं को आपका सहपाठी बता रहे हैं और तत्काल मिलने का हठ पकड़े हैं।'' सुभाष का स्वर दु:खी था, ''जानते हैं, महाराज ने क्या कहा?'' उसने सभी की ओर देखा। वातावरण की स्तब्धता और भी घनीभूत हो गई थी। फिर वह निराश स्वर में बोला, ''महाराज ने मुझे चकित होकर देखा और उच्च स्वर में बोले, 'कौन सुदामा?' मैंने उनका ऐसा स्वर कभी नहीं सुना।''

''मैं न कहता था कि यह चोर है।'' दूसरा रक्षक उत्साह में चीखा, ''इस चोर को यहाँ तक लाने के लिए अब मुझे पुरस्कृत किया जाना चाहिए। इस चोर को मुझे सौंपा जाए। मैं इसे अपने अश्वों के कठोर पैरों में गिराकर अपने अपमान का प्रतिशोध लूँगा।''

''तुम अब क्या कहते हो, धर्मलाभ?'' रक्षा-प्रमुख के अहंकार ने अपने पैने दाँत चमकाए और इठलाते हुए कहा, ''तुम इस मानसिक रोगी को भाव दे रहे थे। तब सम्मान नहीं कर पाए, अब अपमान कर लेना। अच्छा हुआ, मैंने स्वयं को संयत रखा। मेरा पागल हृदय तो यह कह रहा था कि इस ब्राह्मण के चरणों में लोट जा। पर वह तो भला हो मेरी बुद्धि का, अन्यथा मैं स्वयं अपनी दृष्टि में इस नट के कारण जीवन भर आत्मग्लानि में भरा रहता। इस बहुरूपिए को इसके किए का दंड तो दिया ही जाएगा। साथ-ही-साथ यह शोध भी किया जाएगा कि यह किसका गुप्तचर है। इस समय भगवान् के अनंत अज्ञात शत्रु उनका अनिष्ट करने के लिए सक्रिय हैं। लगता है, यह उनमें से ही एक है।'' रक्षा-प्रमुख ने धर्मलाभ की ओर देखा और कठोर और अपमानजनक स्वर में बोला, ''धर्मलाभ, यदि तुम्हारे जैसे धर्मभीरु रक्षक द्वारका में होंगे तो उसमें सेंध लगने में देर नहीं लगनेवाली।''

सुदामा ने अपने अंतस में झाँका। स्वयं को न पहचाने जाने के परिणाम-स्वरूप वे जिस आशंका और भय की कल्पना कर रहे थे, इस समय उनके चित्त में ऐसा कोई भाव ही नहीं था। उन्होंने अपने चित्त में और गहराई से गोता लगाया। किंतु वहाँ तो कोई भाव था ही नहीं। वहाँ भयभीत होनेवाला कोई था ही नहीं। यह क्या हो गया है उन्हें? ऐसी स्थिति में तो उनको मन-ही-मन कृष्ण को कोसना चाहिए था; किंतु उनके मन में भाव की कोई तरंग ही नहीं थी। वे सोच रहे थे कि ऐसा कैसे हो सकता है कि भाव ही तिरोहित हो जाए? वे किसी भी भाव के सूत्र को पकड़ ही नहीं पा रहे थे। उनको सुमति के शब्द सुनाई दे रहे थे कि यदि प्रभु के द्वार से वे तिरस्कृत हुए तो भी वह स्वयं को सौभाग्यशाली समझेगी। वे मन-ही-मन बोले, 'जैसी तेरी इच्छा कृष्ण! मेरा और मेरे परिवार का यह जीवन तुझ पर समर्पित। तू जो करे।'

तभी द्वार पर सभी को छका देनेवाली खनखनाती हँसी और नयनों में छलने से उपलब्ध प्रसन्नता की चमक लिये श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने पीतांबर लपेटा हुआ था। कंधों तक लंबे और काले केश बिखरे हुए थे।

''सुदामा!'' उन्होंने अपनी भुजाएँ फैलाईं और बाल-सुलभ त्वरा के साथ आगे बढ़कर सुदामा के घुटनों तक झुके और उन्हें पकड़कर उठा दिया।

सुदामा को लगा कि वे अभी भी चौकी पर बैठे स्वप्न देख रहे हैं। जाने उनको कितनी देर यहाँ बैठे-बैठे कितने स्वप्न देखने होंगे। उन्होंने देखा कि दूसरा रक्षक यह दृश्य देखकर चीख मारकर अचेत हो गिर गया है और अन्य रक्षक उसे उठाकर तुरंत बाहर ले गए। रक्षा-प्रमुख निकट रखी अपनी पगड़ी सिर पर लगाने के प्रयास में धड़ाम से गिरा। सुदामा ने मन-ही-मन प्रार्थना की कि हे कृष्ण! यह स्वप्न न हो।

''अरे, बस भी कर गिरधारी! पहले ही तू मेरे प्राण ले चुका है।'' सुदामा चिल्लाए, ''निर्मोही! तूने तो मुझे मार ही डाला था।''

सुभाष और अन्य उपस्थित यह देखकर किंकर्तव्यविमूढ़ थे कि आज तक किसी ने भी श्रीकृष्ण को इस प्रकार की शब्दावली से संबोधित नहीं किया, उनके परम आत्मीय जनों ने भी नहीं। वे भी उनके लिए अति सम्मानजनक शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसा नहीं है कि सुदामा ने किसी अपमानजनक शब्द का उपयोग किया है, परंतु बात करने की यह शैली तो ऐसी है जैसे कि कोई दो किशोर मित्र एक-दूसरे को संबोधित कर रहे हों।...और भगवान्! इनको क्या हो गया? इन्हें न सुदामा के श्रमकणों की दुर्गंध आई, न उसका धूल-धूसरित शरीर दिखाई दिया और न उसकी अर्धनग्न व दीन-हीन देह ही दिखाई दी। उनको वह सब क्यों नहीं दिखा, जो उनको दिखाई दिया? द्वारका-पथ के यात्रियों को दिखाई दिया और इन रक्षकों को दिखाई दिया। सुभाष स्वयं यह अनुभव कर रहे थे कि चाहे कोई उनका कितना भी घनिष्ठ मित्र क्यों न हो, वह यदि उनसे मिलने असमय और इस दुर्दशा में आए तो वे उसे यही परामर्श देंगे कि पहले वह स्नान इत्यादि से निवृत्त हो ले, उसके बाद वे उससे मिल लेंगे। सुभाष ने अपना माथा ठोका और मन-ही-मन स्वयं से बोला कि सुभाष, धिक्कार है तुझ पर भी, जो चौदह वर्ष रहकर भी तू श्रीकृष्ण की थाह न ले पाया। कुछ गहरा गोता तो मारा होता कृष्ण-सागर में। यह क्या चौदह वर्ष उथले जल में हाथ-पैर मारता रहा। डूबने से डरता था क्या? तेरी दृष्टि अभी भी देह देखती है और देख अपने परमात्मा की ओर—वे आत्मा को देखते हैं—उसके आवरण को नहीं।

''तुम भयभीत होना कब छोड़ोगे, सुदामा?'' श्रीकृष्ण ने ऐसा ठहाका लगाया कि सारा परिवेश गूँज उठा, ''पवनदेव बहें और पीपल के पत्ते तालियाँ बजाएँ तो तुम डर जाओ। कहीं सूर्य की किरणों के चुंबन से कलियाँ चटखकर फूल बनें तो तुम डर जाओ। कोई कुएँ में जल लेने के लिए पात्र गिराए तो उस ध्वनि को सुनकर तुम डर जाओ। इससे अधिक कुछ हो जाए तो तुम मर ही जाओ।...तुम्हें स्मरण है न, एक बार जब मैंने तुमसे पूछा था कि तुम किस-किससे डरते हो, तो तुमने यही बताया था न!'' कृष्ण ने सुदामा के पैर भूमि पर टिकाए। उनके कंधों पर अपने दोनों हाथ रखकर उसे निहारते रहे और फिर इससे पहले कि सुदामा कुछ और समझते, उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। सुदामा ने अनुभव किया कि उनकी भूख, प्यास, पीड़ा, दुःख और क्लांति सब ऐसे लुप्त हो गए जैसे सूर्य के निकलने पर चंद्रमा।

रक्षा-प्रमुख का मन कर रहा था कि वह अपने पद-त्राणों को निकालकर उससे अपना मुँह पीट ले। उससे तनिक भी धैर्य न रखा गया और वह अपने अहंकार के हाथों विवश हो महाराज के मित्र को मनोरोगी ही नहीं कह गया, अपितु जो व्यक्ति उनके मित्र का सम्मान कर रहा था, वह उसे उसका अपमान करने के लिए प्रेरित कर रहा था। उसने अपने भीतर झाँका। वह सज्जन पुरुष है। किंतु वर्षों से दमित उसके अहंकार ने किस संवेदनशील अवसर पर घात लगाकर आक्रमण किया। उसका पवित्र हृदय बार-बार कह रहा था कि ब्राह्मण के चरण पकड़कर क्षमा माँग ले। परंतु यह कुटिल बुद्धि कब चाहती है कि मनुष्य माया का आवरण तोड़े। वह उसके मार्ग में कुतर्क के ऐसे काँटे बोती है कि हृदय की कोमल देह वहाँ चाहकर भी पग नहीं धरती। उसे लगा कि अब वह अवसर जा चुका है, जब

सुदामा से क्षमा माँगी जाती। अब तो जो क्षमा होगी, वह हार्दिक क्षमा नहीं अपितु शासन के भय की ओढ़ी हुई क्षमा मानी जाएगी। उसे लगा कि रक्षा-प्रमुख तो धर्मलाभ को होना चाहिए। उसमें उससे अधिक संयम है। उसके कानों में धर्मलाभ का कथन गूँज रहा था कि 'मैंने यदि इनको समुचित सम्मान नहीं दिया तो इनका अपमान भी नहीं किया।' कितना सधा हुआ व्यवहार था उसका। और एक वह है कि अपने अहंकार के हाथों विवश हो बुरे स्वभाव का न होने के पश्चात् भी बुरा व्यवहार कर गया। परमात्मा ने उसे धर्मलाभ की टिप्पणी के द्वारा चेताया भी, परंतु उसका अहंकार अपनी चाल चल गया और वह ठगा गया। उसने मन-ही-मन संकल्प किया कि वह प्रात: होते ही अपना त्यागपत्र देकर चला जाएगा। अब वह अपने भगवान् को अपना यह कुरूप मुँह नहीं दिखाएगा। उसने अपने हृदय की ओर देखा। उसका हृदय बोला, 'देख अभागे! भगवान् बिना किसी संकोच के किसी शिशु के समान अपने सखा के साथ कैसे खेल रहे हैं। तू अपनी प्रतिष्ठा को रो रहा था। अपने पद के अहंकार में मरा जा रहा था। देख और बता, तेरा पद भगवान् श्रीकृष्ण से बड़ा है क्या? इनको देखकर कोई यह कह सकता है कि यह यादव शिरोमणि योगेश्वर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हैं। नहीं, इनमें से एक भी विशेषण इस समय इनके साथ नहीं है। ये तो वे ही गोपाल हो गए हैं, जो गौओं को अपनी मधुर वंशी की धुन सुनाया करते थे और गोपों की टोली के साथ क्रीड़ा किया करते थे। तभी तो संसार इन्हें भक्त-वत्सल कहता है। यदि यह सुदामा तेरा मित्र होता तो तेरे रक्षकों ने तो इसको मरणासन्न कर कारागार में डाल दिया होता और निद्रा से जागने के अपराध में तू इसे यमपुरी पहुँचा चुका होता।'

'बस करो!' रक्षा-प्रमुख मन-ही-मन चीखा, 'बस करो, नहीं तो मेरे प्राण ही निकल जाएँगे।'

सुदामा को विचित्र लग रहा था कि वह इस प्रकार मलिन देह लिये और श्रमकणों की दुर्गंध के रहते कृष्ण के हृदय से लगे हैं। उन्होंने अपने को कृष्ण की भुजाओं से खींचकर बाहर किया।

''इतने वर्षों पश्चात् अपने मयूरपंखी का स्मरण हो ही आया।'' कृष्ण ने सुदामा के गले में अपना दाहिना हाथ किसी हार के समान झुला दिया और उसे अपने साथ ले जाने के लिए चल दिए।

''तुम्हें आज भी वह स्मरण है!'' सुदामा की आँखें आश्चर्य से भरी थीं, ''कोई इतनी छोटी बात कैसे स्मरण रख सकता है। जब पहली बार तुम मेरी कुटिया में आए थे और मैंने तुम्हारे आने को अपने एकांत का हस्तक्षेप समझा था। तब मैंने तुम्हें चिढ़ाने के लिए या यों कहो, तुम्हारा अपमान करने के लिए ही तुम्हारे सिर पर मोरपंख देखकर तुम्हें 'मयूरपंखी' कहा था।''

''मुझे तो वह सम्मान पाकर इतना आनंद हुआ था कि जब कभी मुझे अट्टहास करना होता तो मैं तुम्हें प्रकट करके तुमसे मयूरपंखी कहलवा लेता था।'' कृष्ण ने ठहाका लगाया।

वे कक्ष के द्वार से बाहर निकलकर गलियारे में प्रवेश करने ही वाले थे कि सुदामा रुके। उन्होंने धर्मलाभ की ओर देखा और बोले, ''मैं तुम्हारे सहयोग के प्रति आभारी हूँ, धर्मलाभ! प्रभु तुम्हारा कल्याण करें।''

''विप्र सुदामा का कथन ब्रह्मवाक्य है, रक्षक! तुम तो तर गए।'' कृष्ण ने मुसकराकर धर्मलाभ की ओर देखा और आशीर्वाद के रूप में पलकें झपकाकर अपना शीश हिला दिया।

धर्मलाभ को लगा जैसे उसे संसार की सबसे अनमोल निधि मिल गई है। वह चाह रहा था कि कोई उसका सबकुछ हर ले और उसे केवल कृष्ण-नाम में डूबने के लिए व्रजभूमि में छोड़ दे। उसे लगा कि वह दूर से कृष्ण-दर्शन करने की दिव्य दृष्टि पा गया है।

कृष्ण सुदामा को लेकर गलियारे में बातें करते और हँसते जा रहे थे।

रक्षा-प्रमुख धर्मलाभ के निकट आया। उसकी आँखों में अश्रु थे।

धर्मलाभ ने उसकी ओर देखा।

''भाई धर्मलाभ, तुम रक्षा-प्रमुख होने के योग्य हो।'' रक्षा-प्रमुख का स्वर थका हुआ था।

''जो महान् पद आपके लिए मोक्ष का महाद्वार बन सकता था, उसे आपने अपने अहंकार के कारण नरक का द्वार बना लिया।'' रक्षा-प्रमुख से यह कहकर धर्मलाभ कक्ष से बाहर निकल आया।

बाहर आकर उसने अनुभव किया कि वह तो कुछ बोल सकने की स्थिति में ही नहीं था, फिर उसकी जिह्वा से यह कौन बोल गया?

❑

पाँच

सुमति ने करवट ली। उसे लगा कि वह अब और नहीं सो सकेगी, क्योंकि उसकी आँखों में नींद ही नहीं थी। उसने उठकर देखा। चाँदनी उसके छप्पर से वर्षा की बूँदों के समान यत्र-तत्र टपक रही थी। उसकी दृष्टि अपने तीनों बच्चों पर गई। उनकी चादर एक ओर गिरी पड़ी थी और वे एक-दूसरे पर अपनी टाँगें उलझाए पड़े थे। वह उठी और उसने उनको चादर ओढ़ाई और सभी को ममतापूर्ण होकर पुचकारा। वह कुटिया से बाहर आ गई। चाँद किसी झुकी हुई शाखा के अंतिम सिरे पर लगे फल के समान धरती पर पूरा झुका हुआ था।

उनकी कुटिया गाँव के पश्चिमी भाग में गाँव से बाहर थी। यह भूमि का वह छोटा टुकड़ा था, जो सुदामा के पूर्वजों को किसी जमींदार ने भूदान-यज्ञ में दिया था। इस भूखंड के साथ ही उसे सुदामा के द्वारा सुनाई आत्मकथा स्मरण हो आई। वह घर से बीस हाथ की दूरी पर बनी सुदामा की ज्ञान-कुटीर के बाहर बिछी एक ढीली खाट पर लेट गई। उसे वह संध्या स्मरण हो आई जब वह पहली बार गर्भवती हुई थी और उसने सुदामा से कोई कहानी सुनाने के लिए कहा था। तब यही लेटे-लेटे और तारों को देखते हुए सुदामा ने अपनी कहानी सुनाई थी। सुदामा के पिता प्राय: गुरु संदीपनि के आश्रम में उनसे ज्ञान और आशीर्वाद प्राप्त करने जाया करते थे। सुदामा भी पिता के साथ जाते थे। एक दिन उनके पिता ने संदीपनि को बताया कि उनका पुत्र बहुत ही संकोची स्वभाव का है। घर में भी यदि इसकी माँ इसे कुछ दे देगी तो खा लेगा, नहीं तो भूखा रहेगा; परंतु माँगेगा कुछ नहीं। वे चिंतित थे कि यदि उसका स्वभाव ऐसा ही रहा तो ऐसा वह जब संसार करेगा तो उसका क्या होगा?

...तब संदीपनि ने सुदामा की शिक्षा-दीक्षा का दायित्व अपने ऊपर लेकर उनको चिंता-मुक्त कर दिया था। गुरु संदीपनि ने सुदामा को आश्रम में वेदपाठी ब्रह्मचारियों के समूह के साथ स्थान दे दिया था। कुछ समय बाद जब उसके पिता संदीपनि के चरणों में प्रणाम करने आए तो उनको ध्यान आया कि उन्होंने उनके बालक का दायित्व लिया था। तब व्याकुल होकर उन्होंने एक आचार्य को बुलाकर उनकी वर्तमान स्थिति की जानकारी ली। उनको बताया गया कि सुदामा इतना एकांतप्रिय है कि रात्रि को कुटीर में न सोकर आश्रम में वृक्ष के नीचे किसी चबूतरे पर ही सो जाता है। प्रात: उठकर बिना किसी के आदेश की प्रतीक्षा में गौओं की सेवा करता है और उनको वन में चराने ले जाता है। तत्पश्चात् स्नान-ध्यान कर अध्ययन के लिए संबंधित आचार्य की कक्षाओं में चला जाता है। उन्हें बताया गया कि उससे संवाद करने को कुछ है ही नहीं। उसके योग्य जो कार्य नियत किया जाता है, वह उसे बताया जाता है और उसके बाद वह अपने कार्य को तब तक नियत समय पर त्रुटिरहित संपन्न करता रहता है, जब तक कि उसे अन्य निर्देश न दिया जाए।

सुदामा के पिता एक दिन के लिए घर ले जाने के लिए आए थे। संदीपनि ने कहा कि अब यह यहाँ रम गया है, इसलिए अच्छा यही होगा कि वे उसके विकास में बाधा न बनें। तब उनके पिता ने कहा था कि सुदामा उनकी एकमात्र संतान है। वे तो किसी प्रकार धैर्य भी धारण कर लें, पर वे उसकी अति संवेदनशील माँ को किस विधि समझाएँ। उसने तो सुदामा के विरह में रो-रोकर अपना शरीर ही सुखा लिया है। यह सुनकर संदीपनि कुछ देर ध्यानस्थ होने के बाद बोले थे कि उनको प्रत्येक पूर्णिमा को अपने पुत्र को ले जाने की अनुमति होगी और तीसरे दिन वे उसे यहाँ छोड़ जाएँगे। उन्होंने यह आदेश दिया था कि उनके इस नियम में प्रमाद न हो। दो वर्षों तक ऐसा चला। फिर सुदामा के पिता का देहांत हो गया। उन्हीं दिनों तिमि नामक राक्षस संदीपनि के एकमात्र पुत्र का

अपहरण करके ले गया । तब उन्होंने अनुभव किया था कि वास्तव में संतान का वियोग क्या होता है। उनको सुदामा की माता के दु:ख से सहानुभूति हो रही थी। उन्होंने सुदामा को एक माह तक अपनी माँ के निकट रहने का निर्देश दिया था। उन्होंने एक ब्रह्मचारी के हाथ कुछ अन्न तथा वस्त्र भिजवा दिए थे और उसे यह निर्देश था कि वह सुदामा की गतिविधियों और आवश्यकताओं की जानकारी उन तक पहुँचाता रहे। उन्हें पता लगा कि सुदामा के घर चूल्हा यदा-कदा ही जलता है। सुदामा तो जैसे पिता के दु:ख में अन्न ही त्याग चुका है। उसको किसी ने कभी रोते नहीं देखा; परंतु उनके दु:ख की गहराई इतनी दिखाई देती थी कि किसी में उसमें गोता लगाकर उसकी थाह लेने का साहस न था। सुदामा की माँ दिन भर उनको कुछ खिलाने के लिए उनके आगे बैठी रोती रहती, पर सुदामा के मौन और उपवास का उन पर इतना ही प्रभाव पड़ता कि वे अपनी हथेली पर थोड़ा सा नमकीन सूखा भात रखकर उसका एक-एक दाना आत्मलीन अवस्था में अपने मुँह में घोलते रहते। वे बताते थे कि पिता की मृत्यु से उनके मन को गहरा आघात पहुँचा था। उन्हें अपने सरल और ज्ञानी पिता का साथ बहुत प्रिय था। उनको यह तनिक भी नहीं भाया था कि उनके पिता उनको अपने से दूर किसी आश्रम में छोड़ रहे हैं। उनको तो अपने पिता का ज्ञान-कुटीर ही भाता था। वह उनके पास रखे हस्तलिखित ग्रंथों का अध्ययन करता रहता था और पिता के सहायक के रूप में दौड़-दौड़कर उनका कार्य किया करता था। उसके पिता वे ग्रंथ विभिन्न आश्रमों के आचार्यों से अध्ययन हेतु लाते थे और उनमें अनेक सूत्रों को वे सूखे पत्तों पर लिपिबद्ध कर लिये करते थे। अधिकांश ग्रंथ तो उन्होंने अपने हृदय में ही लिपिबद्ध कर लिए थे। वे दिन भर अध्ययन में डूबे रहते थे और संध्या होते ही उसको लेकर नदी में स्नान के लिए जाते थे। वहाँ सुदामा लहरों को देखता-देखता उनमें खो जाता था और वे तब हँसकर उसे यही कहा करते थे कि ये छोटी-छोटी लहरें हम हैं। जब एक विराट् लहर आती है तो अनेक लहरों को अपने में समा लेती है। यदि तू यों ही बैठा रहा तो एक दिन परमात्मा को स्वयं लहर बनकर आना पड़ेगा और तब तुझे कुछ समझ नहीं आएगा कि क्या हुआ। इसलिए एक-आध गोता लगा लिया कर, जिससे बड़ी लहर का कुछ अनुभव तो होगा। तब उसके पिता अपने साथ लाए पात्र में जल भर कर उसको स्नान कराया करते थे।

सुदामा को वही सुखद लगता था। नदी में उतरना उनको कँपाता था। एक बार उनके पिता ने उनके इस भय को मन से निकालने का प्रयास भी किया । वे अकस्मात् उनको उठाकर नदी में ले गए और उन्हें तेज बहती जलधारा में खड़ा कर दिया। तभी सुदामा के पैरों में एक शैवाल लिपट गया। सुदामा को लगा कि किसी जलचर ने उनका पैर पकड़ लिया है। वे चीखे और भय से काँपते हुए अपने पिता से चिपट गए। कुटिया तक पहुँचते-पहुँचते वे काँपते ही रहे। कुटिया पर पहुँचकर माँ ने देखा कि उनका शरीर ज्वर से तप रहा है। वे सप्ताह भर तक भय से उत्पन्न उस ज्वर से ग्रस्त रहे। उसके पश्चात् उनके पिता ने कभी उनकी प्रकृति को परिवर्तित करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने उन्हें सहज रहने दिया। वे निर्धन थे, इसलिए वे उसे सेवाभाव द्वारा शिष्य भाव के साथ गुरु के सान्निध्य में शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरुकुल भेजना चाहते थे। परंतु गुरुकुल जाने की बात सुनते ही वे अपने पिता से लिपटकर रोते हुए उनको गुरुकुल न भेजने के लिए कहने लगे। पिता ने नाममात्र को उन्हें समझाया और जब यह जान लिया कि उनकी रुचि उनसे दूर जाने की नहीं है तो उन्होंने इस विचार को ही त्याग दिया और फिर स्वयं ही उसकी शिक्षा-दीक्षा के लिए प्रथम गुरु बन गए। जब सुदामा बारह वर्षों के हुए तो वे उनको अपने साथ विभिन्न आश्रमों और गुरुकुलों में ले जाने लगे। वे देखते थे कि उनके पिता उन आश्रमों में जाकर ऋषियों के ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ तैयार किया करते थे। यह कार्य उनके लिए एक पंथ दो काज के समान था। एक तो इससे उनकी ज्ञान-पिपासा शांत हो रही थी और दूसरे पेट की क्षुधा के लिए आश्रम और गुरुकुलों से कुछ सीधा भी मिल जाया करता

था। सुदामा अपने पिता के निकट बैठ उनको प्रतिलिपियाँ तैयार करते देखते थे। उनका लेखनी उठाना, उसे मसिपात्र में डुबोना, अनावश्यक मसि को मसिपात्र से सटाकर उसमें वापस जाने देना और फिर उनकी सधी हुई अँगुलियों में लेखनी का मंथर गति से नृत्य करते किसी नर्तक के समान अति सुंदर अक्षरों को प्रकट करना। सुदामा को इस कार्य में रुचि थी। पिता प्रसन्न हुए कि उनका पुत्र ज्ञान-मार्ग की ओर बढ़ रहा है। कुछ ही दिनों में वे अपने पिता के साथ मिलकर सुंदर-सुंदर प्रतिलिपियाँ तैयार करने लगे। उनकी कार्य-कुशलता और मौन स्वभाव को देखकर आश्रमों में उनके पिता का गौरव और बढ़ने लगा था। वानप्रस्थी आश्रमवासी सुदामा की प्रशंसा करते हुए, उनके पिता को बधाइयाँ देते थे। उस समय उनके पिता को लगता था कि वे संसार के सबसे धनवान् व्यक्ति हैं। फिर एक दिन एक आश्रमवासी ने बताया कि गुरु संदीपनि ने उनको विशेष कार्य से बुलाया है। संदीपनि गुरुकुल उत्कृष्ट गुरुकुलों की शृंखला में शिखर पर था। वहाँ प्रवेश पाना ही दुष्कर कार्य था। केवल उच्च कोटि के साधक और सिद्ध ही उस गुरुकुल में ज्ञान-पिपासुओं को शिक्षा देते थे। यह आश्रम ज्ञान-विज्ञान के एक महत्त्वपूर्ण केंद्र और प्रयोगशाला के रूप में विख्यात था। जब वे गुरु संदीपनि से भेंट करने गए तो उनकी चौकी पर उसके पिता की तैयार की हुई प्रतिलिपि रखी थी। वे उनके पिता के सुलेख से बहुत प्रभावित थे। जब उन्होंने उनके पिता से चर्चा की तो यही कहा कि उन्होंने अपने को केवल लिपिकार ही नहीं रहने दिया, वरन् उन पुस्तकों को हृदयस्थ भी किया है। उन्होंने उनके पिता को प्रतिलिपि तैयार करने का कार्य सौंपा। पिता जिस ग्रंथ की प्रतिलिपि तैयार करनी होती, उसे घर ले आते थे और निर्धारित समय के पश्चात् उसकी प्रतिलिपि के साथ उपस्थित होते थे। अपने ज्ञान-कुटीर में कार्य करना उनके लिए सुखद और सुविधाजनक था। उनको कार्य के मध्य अनेक वस्तुओं की आवश्यकता होती रहती। एक प्रकार से एक सहयोगी की। वे यह नहीं चाहते थे, वे गुरु संदीपनि से एक सहायक की माँग कर अपने महत्त्वपूर्ण होने का संदेश दें जो कि उनका भाव नहीं था अपितु विवशता थी। ... और सुदामा की माँ से अच्छा उनका सहायक कौन हो सकता था। इससे उनकी माँ को भी संतोष था कि उनका परिवार उनके निकट है। पहली भेंट में गुरु संदीपनि ने सुदामा से पूछा था कि वह किस गुरुकुल में शिक्षा पा रहा है। सुदामा तो मौन रहे, पर उनके पिता ने उनकी स्थिति स्पष्ट कर दी। तब गुरु संदीपनि ने हँसते हुए पूछा था, 'क्या मेरे निकट रहकर शिक्षा पाएगा?' तब सुदामा ने अपने पिता के कान में अपनी स्वीकृति दे दी। तब गुरु संदीपनि ने पूछा था कि क्या उसे इस आश्रम में डर नहीं लगेगा? उसके उत्तर में सुदामा ने पुन: अपने पिता के कान में कुछ कहा। उसके पिता ने बताया कि सुदामा कह रहा है कि वह आप में अपने बाबा को देख रहा है, इसलिए स्वयं को सुरक्षित अनुभव कर रहा है। एक ही वर्ष में सुदामा के पिता ने और सुदामा ने संदीपनि के हृदय में विशेष स्थान पा लिया। एक दिन गुरु संदीपनि ने मेरे पिता से मेरे विषय में अन्य जानकारी प्राप्त की। पिता ने उनको विस्तार से मेरे संकोची और आत्मलीन स्वभाव के विषय में बताया। यह सुनकर वे कुछ देर मौन रहे और फिर सुदामा के दायित्व को अपने ऊपर ले लिया। उनके पिता को लगा कि जैसे उनकी सेवा से प्रसन्न होकर माँ शारदा ने उनको वरदान दे दिया।

पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी माँ का भी मन धरती पर नहीं लगा। सुदामा नितांत एकाकी हो गए। वे अपने पिता के ज्ञान-कुटीर में ही पड़े रहते थे। तब उनकी सुध लेने अनेक आश्रमवासियों के साथ स्वयं गुरु संदीपनि आए। आश्रमवासियों में से किसी ने कभी सुदामा को न हँसते देखा था, न मुसकराते और न ही रोते हुए। वे तो निर्विकार शून्य में दिखते रहते थे। परंतु आज पहली बार सभी ने सुदामा को गुरु संदीपनि से लिपटकर क्रंदन करते देखा था। सभी ने यह भी देखा कि सदा ब्रह्मलीन रहनेवाले गुरु संदीपनि के नयन भी सजल हैं। उन्होंने अपना स्नेहासिक्त वरदहस्त सुदामा के सिर पर रखते हुए यह वरदान दिया था कि तू अपने पिता को मुझमें समाया जान।

आश्रमवासी यह भली-भाँति जानते थे कि यह ऐसे अवसरों पर कहा जानेवाला औपचारिक वाक्य नहीं था। यह गुरु संदीपनि के श्रीमुख से उच्चरित शब्द था। उनका प्रत्येक शब्द ब्रह्म-रूप होता है और उन शब्दों का जोड़ ब्रह्म-वाक्य। उन्हीं दिनों गुरु संदीपनि के एकमात्र पुत्र का अपहरण तिमि नाम के एक राक्षस द्वारा कर लिया गया था। संदीपनि सुदामा को अपने साथ आश्रम ले गए और उनको एक अलग कुटीर दे दिया। सुदामा अपने पिता को सच्ची श्रद्धांजलि देने के लिए ज्ञान की उपासना में लीन हो गए। वे प्रत्येक पूर्णिमा के दिन अपने पिता के ज्ञान-कुटीर पहुँचते और दिन भर वहाँ महीने भर से एकत्रित हुई धूल-धँवास को साफ करते और फिर रात भर ज्ञान-कुटीर के भीतर बैठ आत्मलीन हो जाते।

आश्रम में भी उनके एकांत में बाधा देने उनकी कुटिया के पास कोई न आता था। आश्रमवासी उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे। एक दिन सुदामा ने देखा कि दो किशोर अपने सामान के साथ उनकी कुटिया में आ धमके हैं। एक श्यामवर्ण था और दूसरा गौरवर्ण । श्यामवर्ण के किशोर ने अपने सिर पर मोरपंख लगाया हुआ था और कंधे पर पीतांबर था। वह न मोटा था और न पतला। गौर वर्ण का किशोर कुछ मोटा था, किंतु उसका शारीरिक गठन यह बता रहा था कि उसमें अपार बल है। सुदामा ने उसको वह प्रसंग संवाद सहित सुनाया था।

''ऐ मोरपंखी! तुम कौन हो?'' सुदामा ने अपनी अरुचि को प्रदर्शित करते हुए कहा था।

सुदामा की बात सुनकर श्यामवर्ण बहुत हँसा था।

''तुम विक्षिप्त हो क्या?'' सुदामा को उसका हँसना जैसे अपना अपमान लगा।

सुदामा की इस बात को सुनकर तो वह पेट पकड़कर हँसने लगा।

''अरे ओ कृष्ण! ओ श्याम!'' कृष्ण के बाद फिर सुदामा ने गौरवर्ण किशोर की ओर देखा, ''और तुम जो हो अति बलवान् और हृष्ट-पुष्ट! तुम दोनों हो कौन? तुम तो इस कुटीर में ऐसे प्रवेश कर गए जैसे बैलों की कोई जोड़ी मटर के खेत में घुस गई हो।''

अब की बार तो दोनों ही पेट पकड़कर हँसे।

''दाऊ! मैं तो इस महात्मा सुदामा की कुटिया से जानेवाला नहीं।'' कृष्ण बोला।

''तो यह नंदी बैल अब कहाँ किसी दूसरे खेत में चरने जानेवाला है, कृष्ण!'' दाऊ भूमि पर लेटकर अपनी हँसी को थामने के लिए मुक्के मारने लगे।

सुदामा ने अपने जीवन में ऐसे मनमौजी जीव कभी नहीं देखे थे। उसने अनुभव किया कि इन दोनों किशोरों के व्यवहार में उद्दंडता का भाव न होकर किसी सरल और निर्दोष हिरण का-सा भाव है। हिरण जो अपनी प्रसन्नता में कुलाँचें भरता है और उसकी मौज को देखकर चकित होनेवाले को विस्मय से देखता है।

''मैं क्षमा चाहता हूँ कि मैंने तुम्हें श्याम तथा कृष्ण कहा।'' सुदामा ने कृष्ण से कहा और फिर दाऊ की ओर देखकर कहा, ''तुम भी मुझे क्षमा करना दाऊ भैया! आपको अभी इसी नाम से तुम्हारे इस भाई या मित्र ने पुकारा था। आशा है, यही तुम्हारा नाम होगा। मैंने तुम पर कटाक्ष करते हुए तुम्हें 'अति बलवान् और हृष्ट-पुष्ट' कहा। मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था। मुझे तुम्हारा स्वागत करने के बाद परिचय पूछना चाहिए था।''

''मित्र सुदामा!'' कृष्ण तुरंत सहज हो गए। उनका स्वर आत्मीयता से भर उठा, ''हमें तुम्हारा यह औपचारिक रूप प्रिय नहीं लगा। पहले तुमने कितने अधिकार और प्ेरम से हमसे बात की थी और अब तुम अपरिचितों जैसा शुष्क व्यवहार कर रहे हो।''

सुदामा का मुँह खुला-का-खुला रह गया—कैसे जीव हैं ये। मैं जब इनका अपमान कर रहा था तो उसे ये अपना

सम्मान मान रहे थे। अब सम्मान कर रहा हूँ तो ये उसे अपना अपमान मान रहे हैं।

''तुम क्या सोच रहे हो कि जो तुम्हारा पहला व्यवहार था, वह हमारा अपमान था और जो तुम अब हमारे साथ कर रहे हो, वह सम्मान है!'' कृष्ण ने संकुचित सुदामा का हाथ अपने हाथों में लेकर तथा उसकी आँखों में आँखें डालकर कहा, ''हमें तो जो प्रेम में भरकर अधिकारपूर्वक डाँटे, हम उसके और जो व्यासपीठ पर बैठे किसी वक्ता के समान हमारे साथ औपचारिक हो उसे हमारी राम-राम!''

''क्या तुम अंतर्यामी हो?'' सुदामा के मुँह से अकस्मात् निकला।

''नहीं तो।'' कृष्ण ने भौहें तिरछी कर गरदन हिलाते हुए कहा।

''तो फिर तुमने वह सब कैसे जाना, जो मैं अपने मन में सोच रहा था?''

''क्या सोच रहे थे तुम?'' दाऊ ने सुदामा के कंधे पर हाथ रख ऐसे पूछा जैसे वे उसे अभी धमकानेवाला हो।

''वही मान-अपमानवाली बात।'' सुदामा ने थूक सटका।

''वह तो हमारे परस्पर संवादों से उपजी सहज प्रतिक्रिया थी। वास्तव में अंतर्यामी होने में तुम तो हमारे गुरु हो।'' कृष्ण ने चकित होने का अभिनय किया।

''मैं और अंतर्यामी! क्यों मेरे साथ परिहास कर रहे हो'' सुदामा सकुचाए।

''तुमने मुझे मोरपंखी कहा, कृष्ण कहा, श्याम कहा। कहा या नहीं कहा, बोलो?'' कृष्ण ने अपनी दृष्टि सुदामा पर टिका दी, ''तो कहो, अंतर्यामी तुम हुए या हम?''

''मैं फिर क्षमा माँगता हूँ कि मैंने तुमको वह सब कहा। मुझसे जाने ऐसी भूल क्यों हो गई। अब तुम्हारे श्याम या कृष्ण होने में तुम्हारा क्या दोष। वैसे मुझे तुम्हें तुम्हारे रंग के संबोधन से पुकारकर तुम्हारा हृदय नहीं दुखाना चाहिए था। मुझसे भूल हुई।'' सुदामा का स्वर पश्चात्ताप से भरा था।

''सुदामा!'' कृष्ण का स्वर प्रेम से पूर्ण था, ''उन्होंने सुदामा के क्षमायाचना में जुड़े हाथों को अपनी दोनों हथेलियों में समेट लिया और कहा, ''इस दृष्टि से तो हमें भी तुमसे क्षमा माँगनी चाहिए कि हमने तुम्हें 'सुदामा' कहा।''

''सुदामा तो मेरा नाम है।''

''तो तुमने भी तो हमारा नाम ही लिया है, बिना हमें अब से पूर्व जाने।'' दाऊ बोला।

''तुम्हारे सिर पर मोर पंख देखकर मैंने तुम्हें चिढ़ाने के लिए मोरपंखी कहा था और तुम्हारे काले रंग के कारण तुम्हें श्याम या कृष्ण कहा था।...वैसे तुम पर काले रंग की झलक है। तुम काले नहीं हो। तुम्हारे श्यामल वर्ण में गहराई है, सुंदरता है।''

''और मुझे तुमने सीधे-सीधे मोटा कहकर तो नहीं चिढ़ाया, पर मुझे अति बलवान् और हृष्ट-पुष्ट कहने के पीछे तुम्हारा वही उद्देश्य था। क्यों?'' दाऊ ने मुसकराते हुए आँखें दिखाईं।

''ये मेरे अग्रज बलराम हैं। इनको मैं दाऊ कहकर बुलाता हूँ। कृष्ण और श्याम मेरे वास्तविक नाम हैं। वैसे मेरे मित्र और बंधु-बांधव मुझे इतने अधिक नामों से पुकारते हैं कि मुझे ही समझ नहीं आता कि मैं हूँ कौन? और अब तुमने एक नाम और दे दिया—मयूरपंखी। अच्छा लगा।'' कृष्ण ने अपनी आँखें मटकाईं।

''क्या तुम्हें सत्य ही मेरा इस प्रकार का व्यवहार बुरा नहीं लगा अथवा तुम मेरा मन रखने के लिए यह सब कह रहे हो?'' सुदामा ने जिज्ञासा की ।

''सुदामा! मैं केवल शब्दों को नहीं पकड़ता। शब्दों की आत्मा को देखता हूँ। वे शब्द किस भाव की ऊर्जा से अनुप्राणित होकर प्रकट हुए हैं, मैं उस रस को चखता हूँ। तुम्हारे शब्द चाहे कैसे भी रहे हों, किंतु वे जिस केंद्र से

उठे थे, वहाँ सरलता और सहजता ही थी।'' कृष्ण ने अपनी हथेलियों में थामे सुदामा के क्षमा-याचना में जुड़े हाथ छोड़ते हुए कहा, ''गुरु संदीपनि की इच्छा से ही हम तुम्हारे कुटीर पर अधिकार करने आए हैं। अब यदि तुम अपने पर अधिकार नहीं करने दोगे तो हम अपनी पराजय स्वीकार करके चले जाएँगे। गुरुदेव ने बताया था कि सुदामा से बचकर रहना। वह ज्ञानवीर योद्धा है।''

''मेरा अपना तो कुछ भी नहीं है, कृष्ण। मैं तो स्वयं गुरुदेव की कृपा और स्नेह का पात्र हूँ। तुम इस कुटिया के साथ-साथ मुझे भी स्वीकार कर लो। मैंने आज तक किसी से कोई वार्त्तालाप नहीं किया। किंतु आज न जाने क्यों मेरा हृदय तुम्हारा होना चाह रहा है।''

''तो हुए तुम मेरे। मैंने तुम्हें अपना कहा। तथास्तु !'' कृष्ण ने रंगमंच के किसी पात्र के समान अपनी वाणी को नाटकीय रूप देते हुए कहा और अपनी भुजाएँ सुदामा की ओर बढ़ा दीं। सुदामा आगे बढ़कर कृष्ण के हृदय से लग गए।

अपने माता-पिता और गुरु संदीपनि के अतिरिक्त वे किसी के हृदय से नहीं लगे थे। कृष्ण के हृदय से वे अपने हृदय में प्रवाहित होती, उन तरंगों को अनुभव कर रहे थे, जो उनके लिए अज्ञात थीं। उन्हें लग रहा था कि जैसे उनके भीतर बहुत जैसे कोई हल चला रहा है और फिर बीज फेंक रहा है।

''वैसे कुछ माह पूर्व गुरुदेव ने तुम्हारे नामधारी योद्धा की चर्चा आश्रम में की थी।'' सुदामा ने कृष्ण के हृदय से अलग होते हुए विषयांतर किया।

''कौन था वह योद्धा?'' कृष्ण ने आश्चर्यचकित होने का अभिनय किया।

''उसका नाम भी कृष्ण था और उसने मथुरा के अत्याचारी राजा कंस का वध कर दिया। किसी राजा की रंगशाला में जाकर उसको मारनेवाला योद्धा कितना अपूर्व साहसी होगा। मैं तो किसी कीट को मारने की बात भी नहीं सोच सकता। क्या वह कृष्ण भी तुम्हारी तरह श्यामवर्ण है?'' सुदामा मुसकराए, ''या बल भैया की तरह गोरा है? अच्छा, एक बात बताओ कि यदि तुम दोनों भाई हो तो बल भैया गोरे क्यों हैं और तुम काले क्यों हो?''

''बताओ कृष्ण, तुमसे सुदामा कुछ पूछ रहा है?'' बलराम की आँखों में चमक थी।

''बात यह है कि मुझे तो अपने विषय में कुछ ज्ञात नहीं था। बालक ही तो था। किंतु बड़े भैया होने के कारण दाऊ भैया ने व्रज के सब गोप-ग्वालों को यह बताया था कि माता यशोदा मुझे हाट से क्रय करके लाई हैं और इन दाऊ महाराज को उन्होंने जना है। परंतु इसमें सारा दोष दाऊ का भी है। ऐसा तो हो नहीं सकता कि मैया हाट पर जाएँ और दाऊ साथ न हों। तब इन्होंने किसी श्वेत कृष्ण को क्रय करना था। दाऊ को दूसरों को सताने में रस आता है, इसलिए इन्होंने ही मैया से कहा होगा कि वे किसी कृष्ण वर्ण के बालक को क्रय कर लें। इस सारे षड्यंत्र में दाऊ की प्रमुख भूमिका है। फिर इन बातों को कह-कहकर इन्होंने मुझे बहुत खिजाया है।'' कृष्ण ने अपने स्वर को उदास-सा बनाते हुए कहा।

''तुमने अभी क्या कहा कि तुम व्रज के हो? वह कृष्ण भी व्रज का ही था।'' सुदामा उछला, ''मुझे उस कृष्ण के विषय में और कुछ बताओ न?''

''उसके विषय में तो तुम किसी से भी पूछ लो।'' बलराम बोला।

''किससे?''

''किसी भी आश्रमवासी से।''

''किंतु मैं क्या करूँ, मेरे कंठ से स्वर ही नहीं फूटता। मैं तो स्वयं पर चकित हूँ कि मैं आज इतना वाचाल कैसे हो

रहा हूँ।''
''तुमने वाचाल जैसा तो कुछ भी नहीं कहा है।'' बलराम बोले।
''सदा मौन रहनेवाले का एक वाक्य भी वाचाल समान होता है। किंतु तुमसे इतनी बातें करके भी स्वयं को अबोला ही पा रहा हूँ।'' सुदामा कृष्ण की ओर मुड़े, ''अपने ग्राम के कृष्ण के विषय में कुछ बताओ न!''
''यही है वह कृष्ण।'' बलराम हँसे।
''नहीं। यह वह कृष्ण हो ही नहीं सकता।'' सुदामा निश्चयात्मक स्वर में बोला।
''क्यों नहीं हो सकता?'' बलराम की भौंहें तिरछी हुईं।
''यह बालकों के समान क्रीड़ा करनेवाला विनोदी स्वभाव का कृष्ण किसी राजा का वध कैसे कर सकता है? उसके लिए तो एक भयंकर मुखवाला क्रूर कर्म करने की हुंकार भरनेवाला मनुष्य चाहिए। यह तो हँसमुख और सुंदर कर्म करनेवाला गोप कृष्ण है।'' सुदामा ने बात को समाप्त करने के उद्देश्य से कहा, ''अच्छा, जब मन हो तब बता देना अभी तो मुझे प्रतिलिपि तैयार करनी है। तुम चाहो तो विश्राम करो अथवा आश्रम का भ्रमण कर आओ।''
''क्या तुम हमें आश्रम नहीं दिखाओगे?'' कृष्ण के स्वर में सुदामा के लिए आग्रह था।
''नहीं, मुझे प्रतिलिपि का कार्य पूरा करना है। तुम किसी अन्य को इस कार्य के लिए खोज लो।'' सुदामा ने मसिपात्र में लेखनी डुबो दी ।
''आओ दाऊ, हम तो सुदामा के भरोसे थे।'' कृष्ण ने दाऊ का हाथ पकड़ा और कुटीर से बाहर हो गए।
दोनों के जाते ही सुदामा को ऐसे लगा जैसे उनके भीतर जो उत्साह का दीपक जला था, वह कुटिया से बाहर हो गया और उनके हृदय पटल पर पुन: अंधकार छा गया है। वह अपनी सारी लेखन-सामग्री को ज्यों-का-त्यों छोड़कर बाहर आ गए। उन्होंनें देखा बाहर वे दोनों नहीं थे। वह चकित था कि गए कहाँ?
''कृष्ण! कृष्ण!! श्याम !!!'' उन्होंनें और आगे बढ़कर देखा और व्याकुलता व रोष के साथ पुकारा, ''ओ मयूरपंखी! इतनी शीघ्रता से कहाँ चला गया रे?''
''हो!'' कृष्ण कुटिया के पीछे से निकले और सुदामा को उनके घुटनों से पकड़कर आकाश में उठा दिया।
''पिताजी!'' सुदामा चीखा।
''अरे, उतार उसे नीचे!'' दाऊ ने कृष्ण को डाँटा, ''तू अब बालक नहीं रहा।''
''क्या हुआ, सुदामा?'' कृष्ण ने उन्हें नीचे उतारा।
सुदामा भयभीत हो काँप रहे थे। वह कृष्ण से इस प्रकार चिपट गए थे, जैसे वानर-शिशु अपनी माँ से। सुदामा को चीखते देख आश्रमवासियों की भीड़ एकत्र हो गई। सभी कृष्ण की ओर संकेत करके बातें कर रहे थे।
सुदामा भय से काँप रहे थे।
''सुनो कृष्ण!'' तभी चंद्राचार्य ने वस्तुस्थिति को समझते हुए चिंतित स्वर में कहा, ''यह सुदामा छुईमुई का पौधा है और तुमने तो इसे जड़ से ही उखाड़ दिया।''
कृष्ण ने मुसकराकर भय से काँपते हुए सुदामा को देखा। सभी को उसके कंपन्न से यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि कुछ ही पल में सुदामा अचेत होकर गिर जाएगा और फिर अनेक दिवसों तक ज्वरग्रस्त रहेगा। गुरु संदीपनि का आश्रमवासियों को यह निर्देश था कि वे सुदामा के साथ कोमलता का व्यवहार रखें।
''कृष्ण, तुम्हें आचार्य ने यह पहले ही बता दिया था कि सुदामा अति संवेदनशील है। फिर भी तुम अपनी बाल-

सुलभ क्रीड़ा करने से नहीं माने।'' चंद्राचार्य के स्वर में खेद था, ''यह सुदामा है और तुम्हारे शक्तिशाली हाथों ने कंस को जो गति दी है, उसे ये आश्रमवासी भी जानते हैं।''

''सिंहनी अपने जिन शक्तिशाली नखों और दाँतों से हाथियों की देह को क्षत-विक्षत कर देती है, उन्हीं नखों और दाँतों से वह अपने शावकों से भी खेलती है। आप निश्चित रहें, सुदामा को कुछ नहीं होगा।'' कृष्ण ने काँपते सुदामा के हृदय पर हाथ रखते हुए कहा, ''आप सभी ने सुदामा की प्रकृति के साथ सहयोग किया तथा उसे और दुर्बल बनाते गए।''

सुदामा ने अनुभव किया कि जैसे उनके मन में शक्ति का संचार हो रहा है। उनका मन जैसे एक छलांग लगाकर अपनी दुर्बल मन:स्थिति से बाहर आ गया।

''तुम ठीक तो हो, सुदामा?'' चंद्राचार्य का स्वर चिंतित था।

''मैं स्वस्थ हूँ आचार्य! किंतु आप यह क्यों पूछ रहे हैं?'' सुदामा आश्रमवासियों भी भीड़ की ओर देखकर बोला, ''यहाँ इतना समाज क्यों आ जुटा है?''

''कृष्ण-बलराम को देखने के लिए।'' चंद्राचार्य का मुँह खुला-का-खुला रह गया।

''ये दोनों भाई हैं ही दर्शनीय।'' सुदामा हँसा, ''परंतु अभी बाल-बुद्धि हैं।''

चंद्राचार्य और आश्रमवासी चकित थे कि यह सुदामा तो बोल भी रहा है और हँस भी रहा है।

❑

कृष्ण सुदामा को अपने साथ धकेलते लिये जा रहे थे। सुदामा के तो केवल पग उठ रहे थे, प्रेग में भरे हुए कृष्ण उसे जैसे खींच रहे थे। उन्होंने सुदामा के आने पर ऐसा कोलाहल मचाया कि सभी को लगा कि कुछ विचित्र घटा है। कृष्ण के द्वारा कुछ भी लीलापूर्ण करना सामान्य बात थी; किंतु इधर बहुत समय से उनके द्वारा कोई लीला नहीं हुई थी तो सभी ने यह मान लिया था कि बढ़ती हुई राजनीतिक गतिविधियों के कारण अब कृष्ण के भीतर बैठा बालकृष्ण उदासीन हो गया है। कुछ ही पलों में सारा भवन प्रकाशित हो गया। वहाँ उपस्थित परिवार के सभी सदस्य समझ नहीं पा रहे थे कि कृष्ण से मिलने इतनी रात जो पधारा है, वह कौन है? उसकी विशेषता क्या है? और कृष्ण इससे मिलकर इतने प्रफुल्लित क्यों हैं?

''प्रणाम पिताजी!'' एक सुदर्शन युवक अति मधुर स्वर के साथ नतमस्तक हुआ। उसकी दृष्टि सुदामा पर गई। उसने देखा कि उसके पिता एक दीन-हीन ब्राह्मण के साथ हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं।

''सुदामा, यह है मेरा सबसे बड़ा पुत्र चारुदेष्ण और चारुदेष्ण, ये हैं विप्रवर ज्ञानदेव मेरे किशोर सखा सुदामा।'' कृष्ण हँसे, ''मेरी बाल-सखा की सूची तो समाप्त ही नहीं होती; किंतु किशोर सखा की सूची में एकमात्र नाम तुम्हारा ही है।''

''प्रणाम!'' चारुदेष्ण ने सुदामा के सम्मुख हाथ जोड़ दिए, किंतु समझ कुछ नहीं पाया।

''जाओ और अपनी माँ से कहो कि सुदामाजी के पद-प्रक्षालन के लिए एक कलश में उष्ण जल लेकर आएँ।'' चारुदेष्ण को मुड़ते देख कृष्ण बोले, ''विभिन्न फलों के मधुर रस के लिए भी कहना और हाँ, अपनी अन्य माताओं को भी संदेश पहुँचाओ कि कल सुदामा के सम्मान में रात्रिभोज नहीं होगा।''

''मेरे आने पर सबको उपवास करवाओगे? कहीं तुम यह तो कहना नहीं चाह रहे हो कि सुदामा के आने के शोक में कल रात्रिभोज नहीं होगा!'' सुदामा ने हँसने का प्रयास किया।

''मैं जानता था कि तुम बोले बिना नहीं रहोगे, तभी मैंने यह कहा। पर मैंने यह तो नहीं कहा कि भोजन नहीं होगा।''

''अभी तुमने कहा कि कल रात्रिभोज नहीं होगा।''

''हाँ, कहा। परंतु तुमने वाक्य पूरा होने ही कहाँ दिया!''

''तुम अपनी बात को विराम दे चुके थे, तब मैं बोला।''

''वह विराम इसीलिए तो दिया था कि तुम बीच में बोलो।''

''अच्छा, समझो, मैं बोला ही नहीं। अब पूरा करो वाक्य।'' सुदामा ने जैसे बचने की चुनौती दी।

''...सुदामा के सम्मान में रात्रिभोज नहीं होगा अपितु प्रीतिभोज होगा।'' कृष्ण ताली बजाकर हँस दिए, ''तुम तो चिंतित हो गए थे कि कल रात्रि तुम्हें उपवास करना पड़ेगा।''

''तुम मुझे इतना सताते क्यों हो?''

''यही तो मेरा खेल है। मेरे इतना सताने के बाद भी जो मेरे प्रेमी हैं, वे मुझसे न तो द्वेष रखते हैं और न ईर्ष्या। मेरा यह सताना उनके धैर्य और प्रेम की परीक्षा के रूप में ही होता है।'' सहसा कृष्ण किसी अन्य शिखर पर पहुँच गए।

''अनेक बार जैसा तुम आचरण करते हो, उससे तो यह लगता है कि जैसे तुम बहुत...''

''...पिताजी, मेरे लिए कोई अन्य आदेश है तो कहें।'' चारुदेष्ण ने अपनी उपस्थिति से अवगत कराने के उद्देश्य से सुदामा की बात काटी।

''अभी इतना ही।'' कृष्ण की दृष्टि ने यह भी कहा कि वह इस कार्य में विलंब न करे।

''हाथ-मुँह तो मैं धो लूँगा, परंतु अभी कुछ ग्रहण नहीं करूँगा।'' सुदामा सकुचाए। वह अनुभव कर रहे थे कि उन्होंने इस असमय उपद्रव खड़ा करके व्यर्थ ही कृष्ण के लिए, उसके परिवार के लिए और उसके अधीनस्थ सेवकों के लिए व्यवधान खड़ा कर दिया। यही कृष्ण सुबह भी होते। वे सुभाष का परामर्श मानकर धैर्यपूर्वक अतिथिगृह में ठहरते, स्नान इत्यादि करते और फिर प्रात: कृष्ण से भेंट करते। क्यों उन्होंने इतनी व्यग्रता दिखाई? अब उनके कारण सभी को कष्ट उठाना पड़ रहा है। केवल कृष्ण को छोड़कर जो भी उनको देख रहा है, उसका सारा व्यक्तित्व जैसे सुदामा से चीख-चीख कर कह रहा है कि अरे ओ अवांछनीय जीव! तुमने यहाँ पधारने से पहले अपनी दशा दर्पण में तो देख ली होती और फिर भी यदि आए बिना रहा नहीं जा रहा था तो समय का तो विचार किया होता।

''क्यों?'' कृष्ण के स्वर में प्रश्न कम और आग्रह अधिक था।

''स्नान करने से पहले मैं कुछ नहीं खाता।'' सुदामा ने अपना तर्क दिया।

''मेरे पास आ गए न! हो गया स्नान। अब स्नान के कर्मकांड को क्या ढोना?'' कृष्ण मुसकराए।

''तुम्हारे अनुसार क्या नियमित रूप से स्नान नहीं करना चाहिए?'' सुदामा को स्नान के प्रति कृष्ण का दृष्टिकोण उचित नहीं लगा।

''मेरा आशय स्नान की महिमा को कम करना नहीं है। आपत् धर्म में नियमों का पालन अनिवार्य नहीं रह जाता। वैसे एक लेखक के रूप में तुम्हारा बल शब्दों की आत्मा को पकड़ने में होना चाहिए, वाक्य का मर्म जानने में होना चाहिए।'' कृष्ण ने अपने कंधे से सुदामा के धीरे से टक्कर लगाई, ''कल प्रात: तो स्नान किया ही होगा?''

''आज तीन दिन हो गए स्नान किए। घर से ही करके चला था।''

''तो इसका अर्थ है कि तीन दिन से तुमने भोजन भी नहीं किया?''

''इच्छा नहीं हुई।'' सुदामा ने देखा कि कृष्ण ने किस प्रकार उसके उदर की वर्तमान स्थिति को जान लिया।

''किसकी इच्छा नहीं हुई—भोजन की अथवा स्नान की?'' कृष्ण ने घेरा।

''दोनों की ही।'' सुदामा ने धीरे से कहा।

''तुम्हारे अनुसार तो नियमित स्नान होना चाहिए, फिर...? जब सारे रास्ते नियम भंग करते आए हो तो मेरे पास पहुँचकर ही नियमों को क्यों पाल रहे हो?''

सुदामा स्पष्ट देख रहे थे कि यह वही-का-वही कृष्ण है। सबकुछ बदल गया, पर उनके सामने अभी भी वही कृष्ण है, जो उनके गुरुकुल में आया था। वही कृष्ण जो बातों को इतना सरल बनाकर प्रस्तुत करेगा कि सामनेवाला बिना सोचे-समझे उनके तत्काल उत्तर देता चलेगा। सुननेवाले को यह लगता है कि कृष्ण ने जो पूछा है वह इतना सरल है कि उसके विषय में मस्तिष्क से क्या पूछना; किंतु उत्तर देने के बाद वह अनुभव करता है कि वह कृष्ण के पाश में फँस चुका है। ठीक ही तो कह रहा है कृष्ण। यात्रा में उसके नियम कहाँ गए थे? अब जब मारे भूख के उसके प्राण निकलने को हैं, और अपनी पत्नी को दिए वचन के अनुसार वे केवल कृष्ण के हाथ से ही भोजन ग्रहण कर रहे हैं तो अब यह व्यर्थ का कर्मकांड क्यों पाल रहे हैं?

''हाँ, तुम उचित कह रहे हो।'' सुदामा सकुचाए।

''यह हुई न बात।'' कृष्ण ने सुदामा की पीठ पर एक धौल जमाते हुए कहा, ''पर एक बात बताओ सुदामा, कि नियमानुसार तो तुम्हें भूख लगी ही होगी; फिर शरीर को इतना क्यों सताया? यह शरीर तुम्हारा ही तो है। यदि दूसरे का भी हो तो भी शरीर को सताना हिंसा है। तुम्हें चाहिए था कि तुम धैर्यपूर्वक यात्रा करते आते। स्थान-स्थान पर रुकते। विभिन्न भोजनालयों में स्वादिष्ट भोजन करते और बिना अपने शरीर को सताए यात्रा करते।''

सुदामा के मन में आया कि वे कृष्ण से कहें कि क्या उनकी दशा देखकर उन्हें उनकी आर्थिक स्थिति का बोध नहीं हुआ? क्या उन्हें व्यक्ति को देखकर उसका आर्थिक मूल्यांकन करना नहीं आता? क्या वह केवल शब्दों की आत्मा और वाक्यों का मर्म ही जानते हैं? मनुष्य की आत्मा नहीं देख पाते? उन्हें लगा कि कृष्ण को वह लघुकथा सुना देनी चाहिए, जिसमें सदा ऐश्वर्य में रहनेवाला एक राजकुमार अकालग्रस्त क्षेत्र में जाकर कंकालवत् मानव देहों को देखकर अपने मंत्रियों से कहता है कि इनकी देह ऐसी क्यों है? तो मंत्री कहता है कि कुमार इनको खाने को रोटी नहीं मिलती। तो कुमार कहता है कि तो ये रोटी के आश्रित न रहें। इनको दूध, दही, घी, मांस एवं विभिन्न प्रकार के शक्तिदायी आसवों का सेवन करना चाहिए।... सुदामा को लगा कि वे कृष्ण के समान कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हैं। ज्ञान के पंडित वे कहे जाते हैं, किंतु कृष्ण तो जैसे उनका सारा ज्ञान एक ही वार में काट डालते हैं। हो सकता है कि यह बात भी कृष्ण उन्हें सताने के लिए कहना चाहते हों।

''मन में भाव ही नहीं उठा कि यात्रा को सुखद बनाऊँ। सोचा, इस यात्रा को तीर्थ-यात्रा ही होने दूँ। फिर मेरी पत्नी ने यह आदेश देकर भेजा था कि केवल श्रीकृष्ण से पहले कुछ नहीं। अब पत्नी की बात तो माननी ही पड़ती है।'' सुदामा ने बलात् मुसकराकर अपने स्वर को सहज बनाने का असफल प्रयास किया।

''तुम्हारा विवाह हो गया! बधाई हो मित्र! तुम्हारे संकोची स्वभाव को देखते हुए तो मुझे लगता था कि तुम जीवन में विवाह की कल्पना भी नहीं कर सकते।'' कृष्ण मुसकराए।

''ऐसा तुमसे किसने कहा?''

''तुमने ही। स्मरण करो, तुम कहा करते थे कि मैं तो आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा। मेरा विवाह तो विद्या से हो गया है। क्या मेरी भाभी का नाम विद्या है?'' कृष्ण ने झूमते स्वर में पूछा।

''मैं समझ गया कि इतने वर्षों से तुम्हें सताने को कोई नहीं मिला। आज तुम इतने वर्षों की क्षतिपूर्ति कर रहे हो। करो, जी भरकर करो।''

''अपने विवाह की कथा तो सुनाओ। सुदामा का विवाह जगत् की असाधारण घटना है।'' कृष्ण की मुसकराहट थम नहीं रही थी।

''तुम इतना मुसकराते क्यों हो?'' सुदामा भी मुसकरा दिए।

''मुसकराना मानसिक और शारीरिक दोनों स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।'' कृष्ण हँसे।

''तुम्हारे विवाह के संबंध में तो मैंने सुना था कि तुम्हें अपनी इच्छित पत्नी को पाने के लिए भयंकर युद्ध करना पड़ा।''

''हाँ, रुक्मिणी के संदर्भ में। अन्य पटरानियों को प्राप्त करने के लिए मुझे योद्धा का वेश धारण नहीं करना पड़ा।'' कृष्ण सहज होकर बोले।

''तुम्हारी अनेक रानियाँ हैं?'' सुदामा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा और फिर अपने स्वर को सहज करते तथा कुछ स्मरण करते हुआ बोले, ''हाँ, अभी तुमने चारुदेष्ण को कहा भी था कि अपनी अन्य माताओं को भी सूचना देना। चारुदेष्ण रुक्मिणी से है?''

''रुक्मिणी से मेरे दस पुत्र और एक पुत्री है तथा शेष पटरानियों से...''

''...ठहरो, कृष्ण! मैं तो किसी भी क्षेत्र में तुम्हारे समकक्ष नहीं हो सकता। मैं अवस्था में तुमसे बड़ा हूँ और मेरी संतान अभी बालक की कोटि में हैं। न केवल बालक हैं वरन्...'' सुदामा रुक गए। वे कहने जा रहे थे कि उनके बालक तो ऐसे कृशकाय हैं कि यदि चारुदेष्ण चाहे तो उन तीनों को अपनी हथेली पर बैठाकर इस महल की परिक्रमा कर आए। पर वे यह सोचकर रुक गए कि यह कहकर वे यह कहना चाहेंगे कि कृष्ण की संतान श्रेष्ठ है और सुदामा की निकृष्ट।

''वरन्''

''वरन्...'' सुदामा रुके और सोचने लगे कि यह कृष्ण भी उस बात पर अवश्य रुकेगा, जहाँ से व्यक्ति बचना चाहेगा, ''अब वरन् के आगे जोड़ने के लिए कुछ सूझ नहीं रहा।''

''अच्छा, अपने विवाह का प्रसंग सुनाओ।'' कृष्ण ने बात का सूत्र बदला।

''तुमने अपने विवाह का सुना दिया क्या?'' सुदामा ने टोका।

''तुमने सुन तो लिया न! तुम्हें तो यह भी ज्ञात है कि मुझे रुक्मिणी को प्राप्त करने के लिए युद्ध करना पड़ा और इधर मुझे यह भी ज्ञात नहीं कि तुम्हारा विवाह हो गया।'' सहसा कृष्ण ने चौंककर सुदामा को देखा, ''तुम अभी अपनी संतान के विषय में बता रहे थे। बताओ।''

''बड़ी पुत्री है और फिर जुड़वाँ पुत्र-पुत्री हैं—तीन बच्चे हैं।'' सुदामा सोच रहे थे कि कृष्ण को जो जानना है, वह यह जानकर ही रहेगा।

''हूँ...'' कुछ सोचते हुए कृष्ण ने सिर हिलाया और बोले, ''अब विवाह की कथा सुनाओ।''

तभी रुक्मिणी सेविकाओं तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ कलश में जल लेकर आई।

''आओ रुक्मिणी!'' कृष्ण उत्साह में भरकर उठे, ''देखो, मुझसे पे्रम करनेवाले मुझे कभी भूलते नहीं। सुदामा का प्रेम देखो। अनेक वर्षों बाद भी यह मुझसे मिलने आया है। इसके आने पर मुझे लग रहा है कि जैसे मैं फिर से बीस वर्ष पूर्व का युवा कृष्ण हो गया हूँ। ऐसा लग रहा है जैसे हम गुरु संदीपनि के आश्रम में बैठे हों।''

''प्रणाम!'' रुक्मिणी ने हाथ जोड़कर सुदामा का स्वागत किया।

सुदामा को समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या आशीर्वाद दे। तभी उसे ध्यान आया कि वह तो अभी तक बैठा ही

हुआ है, जबकि शेष लोग खड़े हैं। सुदामा त्वरित गति से उठ खड़े हुए।

''हमारा सौभाग्य कि जिनके शुभागमन से हमारे समाधिस्थ स्वामी की चंचलता लौटी।'' रुक्मिणी की वाणी की मधुरता अपूर्व थी।

''प्रभु आपको सदा प्रसन्न रखें।'' आशीर्वाद के रूप में सुदामा का काँपता हाथ आधा ही उठा।

''यह आपके लिए कहा जा रहा है। आप सुन रहे हैं न, प्रभु?'' सत्यभामा ने कृष्ण को सुनाया।

''सुदामा, यह सत्यभामा है। मेरे श्वसुर सत्राजित् की पुत्री।'' कृष्ण हँसे।

''यह परिचय देने की कौन सी शैली है कि मेरे श्वसुर की पुत्री!'' सत्यभामा की भौंहें तिरछी हो गईं।

''शैली को छोड़ो, यह बताओ कि इसमें असत्य क्या है?'' कृष्ण ने जैसे सत्यभामा को चिढ़ाया।

''आपकी इस क्रीड़ा में जल शीतल हो जाएगा।'' रुक्मिणी बोली, ''अब शेष चर्चा सुदामाजी के चरण पखारने के पश्चात्।''

रुक्मिणी का संकेत पाते ही परिचारिकाएँ एक विशाल परात और कलश लेकर सुदामा की ओर बढ़ीं। सुदामा अति संकुचित भाव से एक पग पीछे हट गए। वे सोच रहे थे कि यहाँ आकर वे भी किस संकट में फँस गए। वे तो इस राज समाज के द्वार पर भी बैठने योग्य नहीं हैं और सुदामा न केवल उनके मध्य बैठा है, वरन् सम्मानित भी हो रहा है। कृष्ण के सेवक और सेविकाएँ भी उसके यहाँ के धनियों की स्त्रियों से अधिक सुंदर और वैभवशालिनी हैं। सुदामा तो इनकी शोभा को धूमिल करने आ गए हैं।

''भाभी, आप पात्र यहीं रखवा दीजिए। मैं स्वयं धो लूँगा।'' सुदामा के माथे पर पसीने आ गए।

''यहाँ बैठो।'' कृष्ण ने सुदामा को आगे बढ़कर जैसे उठा ही लिया और उस बैठक में एक अलग तथा ऊँचे स्थान पर बैठा दिया। वह सिंहासन संभवत: कृष्ण के बैठने के लिए ही रहा होगा।

संकेत पाते ही आसन के नीचे पैर रखने की चौकी पर परिचारिका ने परात रख दी। कृष्ण, सुदामा के पैरों के पास भूमि पर बैठ गए। उन्होंने उनके पैर थाम लिये।

''कृष्ण! यह क्या कर रहे हो? यह तुम्हें शोभा नहीं देता।'' सुदामा को पलक झपकते ही सब समझ आ गया। उन्होंने रामदास से सुना था कि युधिष्ठिर के राजसूय -यज्ञ में कृष्ण ने आगंतुक ऋषि-मुनियों और ब्राह्मणों के चरण पखारे थे। परंतु वे तो उस कोटि के नहीं हैं। उन्होंने अपने पैर खींचने चाहे, पर वे तो जैसे कृष्ण के गुरुत्वाकर्षण में खिंच चुके थे।

''मुझे यही शोभा देता है।'' कृष्ण ने असीम प्ेरम में भरकर सुदामा की ओर देखा और फिर अपने हाथों के स्पर्श से सुदामा के पैर सहलाने लगे। सुदामा के पैरों में बिवाई पड़ गई थीं, अनेक स्थानों से रक्त बहकर काला पड़ चुका था, स्थान-स्थान पर छाले पड़े थे। कृष्ण ने अनुभव किया कि कोई उनके निकट आया है। कृष्ण ने दृष्टि उठाकर देखा। परिचारिका जल डालने के लिए कलश को ऊपर उठा रही थी। कृष्ण ने संकेत से उसे मना किया और उनकी दृष्टि रुक्मिणी पर जा टिकी। रुक्मिणी ने आगे बढ़कर परिचारिका से कलश थाम लिया। वह कलश से सुदामा के चरण पखारने ही वाली थीं कि उनकी दृष्टि सुदामा के पैरों पर गिरी जलधाराओं पर जा टिकीं। वे विस्मय से भर गईर् कि अभी उन्होंने जल तो छोड़ा ही नहीं, फिर यह जल कहाँ से आया? वे यह सोच ही रही थीं कि जल की अनेक बूँदें सुदामा के चरणों पर उनके सामने टपकीं। उनके हाथ जैसे जड़ हो गए। वे अंतरतम तक काँप उठीं। जल बिंदु सुदामा के पैरों पर गिरते जा रहे थे। कृष्ण की हथेलियों में सुदामा के पैर थे और उनका सिर उन पर एक प्रकार से झुका हुआ था।

''प्रभु!'' रुक्मिणी की आत्मा जैसे विरहिणी नायिका के समान दमित स्वर में चीत्कार उठी।

रुक्मिणी की पुकार सुनकर कृष्ण ने धीरे से अपना मुख उसकी ओर किया। रुक्मिणी ने अपने अधरों को अपने दाँतों के नीचे कसकर भींच लिया। उसे लगा कि यदि उसने एक क्षण का भी विलंब किया तो कहीं उसकी चीख ही न निकल जाए। कृष्ण की आँखें क्षण भर में ही इतनी लाल हो गईं, मानो वे सारी रात से रो ही रहे हों। उनकी आँखों से झर-झर अश्रु बह रहे थे। उसने कभी कृष्ण को कण मात्र भी दु:खी नहीं देखा था। दु:ख की छाया भी कृष्ण से सहस्रों कोस दूर चलती थी—कृष्ण के नयनों में अश्रु की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। उसने कृष्ण का अपूर्व साहस देखा था। उसका भाई रुक्मी, जिसके कोप से देवता भी काँपते थे, वह जब कृष्ण के वध की प्रतिज्ञा करके चला था तो कृष्ण ने कैसी अद्‍भुत वीरता से अनेक घावों को सहकर न केवल उसका सामना किया अपितु उसे मरणासन्न कर दिया। यदि उस समय बीच में आकर रुक्मिणी ने उसके प्राणों के लिए याचना न की होती तो कृष्ण ने उसका वध ही कर दिया होता। ऐसे महावीर कृष्ण की आँखों में अश्रु भरे हैं! जिसे मृत्यु का भी भय नहीं है-ऐसे कृष्ण की आँखों में अश्रु भरे हैं! जिसे किसी से मोह नहीं है, ऐसे कृष्ण के नयन अश्रुपूरित हैं। कृष्ण का मुख पुन: सुदामा के पैरों पर झुक गया और वे अश्रु से सुदामा के चरण पखारते रहे। रुक्मिणी अपने स्वप्न से बाहर आई। उसके विलंब के कारण ही प्रभु का अश्रुपात हो रहा है। यदि वह जल गिराए तो प्रभु का ध्यान बँटे। रुक्मिणी ने जल की धार छोड़ दी। कृष्ण सुदामा के चरण पखारने में आत्मलीन हो गए।... जल की धार थम गई। सत्यभामा ने आगे बढ़ पैर पोंछने के लिए वस्त्र बढ़ाया। कृष्ण सत्यभामा को देखकर मुसकराए और अपने पीतांबर से सुदामा के पैर पोंछने लगे। सुदामा ने फलों के रस से भरे पात्रों की ओर देखा और फिर रुक्मिणी की ओर। उपस्थित सभी पारिवारिक सदस्यों और अन्य सेवक-सेविकाओं ने देखा कि भगवान् के नेत्र सजल हैं और वे भावपूर्ण होने के कारण बोल नहीं पा रहे हैं। परिवेश में महामौन छा गया। ऐसा कोई नहीं था, जिसकी आँखों में आँसू न हों।

❑

पक्षियों का कलरव सुन सुमति की नींद भंग हुई। उसने देखा कि उसकी आँखें भीगी हुई थीं। कपोल भीगे हुए थे। उसने आस-पास देखा। वह सुदामा के ज्ञान-कुटीर के बाहर उनकी ढीली खाट पर पड़ी थी और कुछ कौए उस कुटीर पर अपना राग अलाप रहे थे।

''ओह!'' पौं फटते दृश्य को नमस्कार कर वह बोली, ''निश्‍चित ही यह स्वप्न था। पर कैसा स्वप्न! जो यथार्थ से भी अधिक सजीव था, प्राणवान् था। उसने जीवन भर स्वप्न देखने के अतिरिक्त और किया ही क्या है। स्वप्न से वास्तविकता में आने पर ही उसे यह पता चलता था कि अब से पहले देखा या अनुभव किया गया दृश्य स्वप्न ही था। पर अब उसे लग रहा था कि उसका सो जाना तो स्वप्न था, परंतु उसने जो देखा उसे उसकी आत्मा स्वप्न स्वीकार नहीं करना चाह रही थी। कैसे करती? ऐसा स्वप्न भी यदि आए तो मनुष्य उसे स्वप्न भी माने तो किस मुँह से? क्या सचमुच भगवान् ने सुदामा के पग अपने नैनों के जल से धोए? क्या भगवान् ने उनको आगे बढ़ अपनी भुजाएँ फैलाकर हृदय से लगा लिया? क्या भगवान् ने मुझ अपात्र की भी लाज रखी? हे आदिदेव सूर्य! यह सत्य हो प्रभु! यह सत्य हो! आपके प्रति प्रेमपूर्ण होकर गए मेरे स्वामी आपके द्वारा तिरस्कार को प्राप्त न हों। यदि ऐसा हुआ प्रभु, तो पे्रम का सूत्र ही टूट जाएगा।'' सुमति की आँखें भगवान् उदित नारायण को अर्घ्य अर्पित करने के लिए बह उठीं।

❑

छह

रुक्मिणी ने विभिन्न फलों के रसों से पूरित पात्रों को सुदामा के सम्मुख प्रस्तुत किया। सुदामा ने देखा कि विभिन्न रंगों का रस पात्रों में था।

''यह सब तुम्हारे लिए है सुदामा!'' कृष्ण ने उठते हुए कहा। सेवक तुरंत उनके निकट एक चौकी ले आए। कृष्ण उस पर विराजे और उन्होंने रुक्मिणी के द्वारा पकड़े थाल में से एक पात्र उठाया और उसे सुदामा के मुख के पास ले जाकर बोले, ''अपने हाथ से पिलाऊँ या स्वयं ही पी लोगे?''

सुदामा कृष्ण के पे्रम के सागर में डूब चुके थे। उनकी वाणी उनका साथ नहीं दे रही थी। बुद्धि को तो जैसे काठ मार गया था। उन्होंने अपनी डबडबाई आँखों से अस्पष्ट दिखते उस पात्र को थाम लिया और उसे पी गए।

''यह बात हुई न! अब यह दूसरे गेरुए रंगवाला।''

सुदामा मना करते रहे, किंतु कृष्ण कहाँ माननेवाले थे।

वे फलों के रस को अपने शरीर में उतरता अनुभव कर रहे थे। वह किस-किस मार्ग से उनके उदर तक की यात्रा कर रहा है और उनका उदर तुरंत उसको ऊर्जा में परिवर्तित कर विद्युत् के समान उनके अंगों को पोषित कर रहा है।

''सुदामाजी का सामान कहाँ रखवाना है?'' सत्यभामा ने पूछा।

''यह भी कोई पूछने की बात है?'' कृष्ण बोले, ''मेरे कक्ष में।''

''कृष्ण, मैं अतिथि-गृह में ठहर जाऊँगा।'' सुदामा का स्वर हड़बड़ाया हुआ था।

''तो मार्ग में किसी अतिथि-गृह का आश्रय न लेकर अविराम चलते क्यों आए? तुम मेरे साथ मेरे कक्ष में ठहरोगे। मेरे कक्ष में तुम्हें कुछ असुविधा है क्या?'' कृष्ण के स्वर में सोया बाल-कृष्ण पूरी तरह उठ चुका था।

''यहाँ?'' सुदामा को कुछ उत्तर सूझ नहीं रहा था।

''हाँ, यहाँ।''

''मुझे लगता है कि मैं यहाँ संकोच में तुमसे उन्मुक्त होकर वार्त्तालाप नहीं कर पाऊँगा। मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि मैंने असमय आकर सबके विश्राम को बाधित किया। तुम्हारा इतना विशाल परिवार है, उसके दायित्व हैं। मैं अतिथि-गृह में रहूँगा तो तुम अपने राजकाज के समय में से कुछ समय निकालकर मुझसे चर्चा करने आ जाना।''

''ओह, अब समझा तुम्हारा संकोच। तो चलो, सबसे पहले तुम्हारा संकोच मिटाया जाए।'' कृष्ण ने एक सेवक की ओर देखा। वह आज्ञा पाने के उद्देश्य से कृष्ण के निकट आया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कृष्ण बोले, ''सुनो, सुभाष से कह दो कि मैं अनिश्चित काल के लिए सुदामा के साथ हूँ। एक प्रकार से मैं अवकाश पर हूँ, पूर्ण अवकाश।'' कृष्ण सुदामा की ओर मुड़े, ''मैं कब से विश्राम में जाने की सोच रहा था, परंतु कोई कारण हो तो जाऊँ। ये सब मुझे घेरे रहते हैं। जो भी काम हो, मुझसे परामर्श लेंगे। यह नहीं कि निर्णय लेने में आत्मनिर्भर हों। अब तुम्हारे आने से मेरे पास एक महान् अवसर है—इन सभी को आत्मनिर्भर होने का प्रशिक्षण देने का और स्वयं भी विश्राम करने का।''

''मैं तीसरे दिन विदा हो जाऊँगा। तुम मेरे कारण अपने कार्य क्यों रोकते हो?'' सुदामा को लगा कि वे कृष्ण के लिए कितनी बड़ी बाधा के रूप में उपस्थित हो गए हैं। उनको सुभाष ने बताया था कि कृष्ण कितना व्यस्त हैं।

उसने यह भी बताया था कि वह किसी अज्ञात अनिवार्य कार्य के कारण पूर्व निर्धारित कार्यक्रम को छोड़कर लंबी यात्रा करके द्वारका आए हैं।

''अर्थात् तुम स्वयं को मेरे द्वारा सताए जाने की सभी बातों का प्रतिशोध जल्दी लौटकर लोगे। तुम नहीं चाहते कि राजकाज की मारा-मारी में फँसा तुम्हारा मित्र कुछ अधिक दिन विश्राम पा ले। जहाँ तक बात रही कार्यों की तो कार्य कभी रुका नहीं करते। मैंने कर्मवीरों की सेना तैयार की है। यदि एक कर्मवीर किसी कारण से विश्राम में चला जाता है तो दूसरे पुरुषार्थी के पास वह कार्य स्वत: हस्तांतरित हो जाता है।'' कृष्ण ने सेवक को विदा किया।

सुदामा कृष्ण के निश्छल मुख को निहारते रहे। कैसे सरल रूप से वह उनको छल रहा है। सुदामा को यह अपराध-बोध न हो कि उन्होंने असमय आकर अतिव्यस्त कृष्ण का समय नष्ट किया है, इसके लिए बात को इतने सुंदर रूप से कह रहे हैं कि सुदामा को लगे कि जैसे उन्होंने द्वारका आकर कृष्ण पर उपकार किया हो।

''मैंने पता करवा लिया है, सुदामाजी मुक्तहस्त आए हैं।'' सत्यभामा ने कृष्ण के निकट आकर कहा।

''एक बात बताओ, सुदामा! तुम इतने वर्षों बाद आए, मित्र के लिए कुछ लेकर तो आते। गुरुकुल में तो जब भी तुम वन में जाते थे, तब मेरे लिए कुछ-न-कुछ वन से लेकर आते थे। कभी बेर, कभी कंद-मूल, कभी रसभरी, कभी अमरक, कभी आँवला, कभी आम, कभी केला—और आज आए हो हाथ हिलाते। कुछ तो...'' कृष्ण किसी शोधकर्ता के समान सुदामा के कंधे पर लटकी पोटली की ओर देखने लगे, ''यह क्या है?''

सुदामा का ध्यान अपनी पोटली पर गया। वे पछताने लगे। टुकड़े-टुकड़े यह मोटा कच्चा चावल—क्या वे इसे बाहर ही फेंककर नहीं आ सकते थे? उस कुम्हार को ही सारा दे डालते या मार्ग में पक्षियों को चुगा आते। अब कृष्ण उसे देखे बिना नहीं रहेगा। सबके सामने जब यह इस पोटली को खोलेगा तो पोटली के साथ उसकी दरिद्रता की गाँठ भी खुल जाएगी। इससे पहले कि वे कुछ कहते, कृष्ण ने उनके कंधे से पोटली निकालकर खोल दी। सबसे निम्न श्रेणी का चावल सबके सामने था।

''एक युग हो गया ऐसा चावल खाए।'' कृष्ण ने एक मुट्ठी चावल उठाया, उसे सूँघा । उनके मुख का भाव बता रहा था कि जैसे उन्होंने किसी सुगन्धित पुष्प को सूँघा हो। उन्होंने उस मुट्ठी का मुख खोला और थोड़ा-सा चावल अपनी बाईं हथेली पर डाला और उसे अपने मुख के सुपुर्द कर दिया। उस चावल को चबाते हुए बोले, ''कठोर साधना करनेवाले परिव्राजक इस प्रकार का दैवी अन्न खाते हैं।''

''क्या आप जेठजी का और हमारा भाग भी स्वयं खा जाएँगे?'' रुक्मिणी बोली।

''ओह!'' कृष्ण ने अपनी मुट्ठी पोटली पर खोल दी और बोले, ''दाऊ को ज्ञात हुआ कि मैंने अकेले ही सब चटकर डाला है तो वे तो उत्पात मचा देंगे। एक काम करो, अन्नकूट तैयार करो। उसमें ये चावल मिला देना। पूरा परिवार इस प्रसाद को पाए। अब हम मित्रों को एकांत में छोड़ दो। हम नियत समय पर अन्नक्षेत्र में मिलेंगे।''

यह कृष्ण भी कुछ सोचता ही नहीं कि कोई उसके विषय में क्या सोचता होगा या सोचेगा। उसके उस निकृष्ट कोटि के चावलों को खाने की क्या आवश्यकता थी? कितना सहज होता कि यदि वह उन चावलों को देखकर कहता कि इनको पक्षियों के लिए डाल दो। अब सुदामा के इन चावलों का उसके महल में कोई उपयोग नहीं। परंतु यह तो उससे भी सौ हाथ आगे बढ़कर अपने परिवार के सभी सदस्यों को इन चावलों का 'रसपान' कराएगा। सुदामा देख रहे थे कि कृष्ण प्रत्येक परिस्थिति में कितना सहज रह लेता है। परिस्थितियाँ उससे उसका स्वरूप नहीं छीन पातीं। वह जैसे काल के ऊपर शासन करता है। कृष्ण ने सेवक को कुछ कहा और वह भी सिर झुकाकर आज्ञा-पालन हेतु चला गया।

''आओ सुदामा!'' कृष्ण ने सुदामा को बाँह पकड़कर उठाया और अपने साथ लेकर गलियारे में बढ़ गए, ''एक दिन हम तुम्हारी कुटिया में घुस आए थे, आज तुम हमारी कुटिया में आए हो। तुमने मुझे उऋण होने का अवसर दे दिया।''

''वह कुटिया मेरी नहीं थी। वह आश्रम की संपत्ति थी।'' सुदामा ने स्पष्ट किया।

''और तुम्हारा वह प्रेम? वह भी आश्रम की संपत्ति था क्या?'' कृष्ण ने रुककर सुदामा की ओर देखा, ''तुम तो किसी से बात ही न करते थे। हमारा सौभाग्य कि तुमने हमें अपनी मैत्री के योग्य समझा।''

''हम कोई और बात करें।'' सुदामा मुसकराए।

''पहले कुटिया में तो चरण धरो, विप्रदेव!'' कृष्ण ने सुदामा को एक कक्ष में धकियाते हुए कहा।

उस विशाल कक्ष को देखकर सुदामा की आँखें विस्मय से फटी-की-फटी रह गईं। जैसे पुस्तकों में वर्णित इंद्र का सारा ऐश्वर्य वहाँ पुंजीभूत हो गया हो। कक्ष में विशाल पलंग था और अनेक सुंदर आसन। विभिन्न कलात्मक वस्तुएँ। वहाँ जो भी था, भव्य था और सर्वोत्कृष्ट था। संपूर्ण कक्ष में एक अपूर्व सुगंध थी। पचास हाथ ऊँची सुंदर और गोल कलात्मक छत देखकर तो सुदामा का सिर ही चकराने लगा।

''तुम स्नान इत्यादि से निवृत्त होकर विश्राम करो, तब तक मैं दाऊ से मिल आऊँ। सेवक आता ही होगा। वह जो कहे, उसे स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत करना।'' कृष्ण बोले।

''मैं भी चलता हूँ तुम्हारे साथ।'' सुदामा जैसे इस वैभव से बचने का अवसर पा गए थे।

''सुदामा, तुम दाऊ को जानते तो हो। वे मुझ पर कुपित हो जाएँगे कि मैंने न सुदामा का सेवा-सत्कार किया और न ही उनको विश्राम करने दिया और आते ही दौड़ाना आरंभ कर दिया। फिर वे प्रसाद पाने अन्नक्षेत्र में आएँगे ही। वहाँ मैं तुम्हारा परिचय परिवार के सभी सदस्यों से भी कराऊँगा। अभी तुम कुछ देर विश्राम कर लो।'' कृष्ण का स्वर कह रहा था कि सुदामा कुछ तो समझो।

सुदामा के विवेक ने कहा कि कुछ तो समझाकर सुदामा। हो सकता है, कृष्ण को कुछ गोपनीय राजनीतिक चर्चा करनी हो। अपनी अनुपस्थिति में दाऊ को काम समझाना हो या फिर वह बात, जो कृष्ण प्रत्यक्ष रूप से नहीं कहना चाह रहा, उसे समझो। नहा-धोकर तिलक इत्यादि लगाकर, गरिमामयी रूप धारण करो। इस समय तुम द्वारकाधीश श्रीकृष्ण के अतिथि हो। सुंदर यही होगा कि तुम इस समय कृष्ण की इच्छानुसार चलो। अपने हठ को यहाँ से विदा करो।

''जैसा तुम उचित समझो।'' सुदामा के स्वर में जैसे अपनी भूल का प्रायश्चित्त था।

कृष्ण चले गए।

सुदामा अभी कक्ष के अवलोकन में ही खोए हुए थे। सेवक ने आकर सुदामा को प्रणाम किया और उनको कक्ष के साथ से जाते गलियारे से एक अन्य स्थान पर ले गया। वहाँ के सुंदर गवाक्षों से सूर्य की लालिमा के दर्शन हो रहे थे। द्वारका में मंदिरों में बजते घंटे-घड़ियालों और शंखों की मंगल ध्वनि यह घोषणा कर रही थी कि ब्राह्म मुहूर्त बीत चुका है और दिवस की यात्रा आरंभ हो गई है।

''ब्राह्मण देव! यह स्नानागार है। आप स्नान इत्यादि से निवृत्त होकर इन वस्त्रों को धारण कर पधारें। मैं यहीं आपके स्वागत की प्रतीक्षा में हूँ। अपने वस्त्र आप वहीं छोड़ दीजिएगा। वे धो दिए जाएँगे।'' उसने एक विशाल थाल चौकी पर रख दिया।

उसमें अनेक सुंदर धोतियों, उत्तरीयों और अँगरखों की भरमार थी।

''मैं ये सब धारण कैसे करूँगा?'' सुदामा ने हँसने का प्रयत्न किया।
''जो वस्त्र आपको रुचिकर हो, आप वही धारण करें।'' सेवक सुदामा की हँसी से अनछुआ रहा और आदरपूर्वक सिर झुकाकर बोला, ''मैं बाहर आपकी प्रतीक्षा में हूँ।''

सुदामा यह समझ नहीं पा रहे थे कि उनके कौन से पुण्यों का उदय हुआ, जो उनको सदेह स्वर्ग की प्राप्ति हो गई। उनको तो कोई स्वप्न में भी ऐसे वैभव-संपन्न स्थान में प्रवेश न करने दे। यह कृष्ण का अपरिमित प्ेरम ही है, अन्यथा इस स्वार्थ भरे संसार में सब उसका ही सत्कार कर रहे हैं, जिससे उनको कुछ लाभ होने की संभावना होती है। संसारियों के आपसी मेल-मिलाप का आधार लोभ, भय अथवा सामाजिक औपचारिकता ही अधिक हैं। सत्य कहता है कृष्ण, सांसारिक जन अधिकतर संबंध विवश होकर निभाते हैं, इसलिए उनके संबंध उनके लिए बंधन हो जाते हैं। प्ेरम में जो निभे, वह है संबंध। शेष तो बंधन हैं।

सुदामा जब स्नान इत्यादि के उपरांत नूतन वस्त्र धारण कर जब मानवाकार दर्पण के समक्ष खड़े हुए तो वे दर्पण में स्थित व्यक्ति को देखकर ऐसे डरे जैसे वह उनका मायावी प्ेरत हो। वे एक ओजस्वी मठाधीश या किसी प्रतिष्ठित गुरुकुल के कुलपति लग रहे थे। आज उनको पहली बार लगा कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना कितना सुखद है। यह कृष्ण परम ऐश्वर्य में रहता है, किंतु इसे वह ऐश्वर्य छू क्यों नहीं पाता?
वे कक्ष में आ गए। सेवक ने चौकी पर ढकी रखी थाली उघाड़ी। उसमें विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ और जलपान की सुंदर सामग्रियाँ थीं।
''यह सब...'' सुदामा ने सेवक की ओर देखा।
''महाराज की इच्छा है कि आप अल्पाहार लेकर उनके आने तक विश्राम कर लें। उसके बाद वे आपको लेकर कहीं जाएँगे। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं विदा लूँ?''
सुदामा ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।
''यदि आपको किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो तो लकड़ी की इस गदा से एक बार इस धातु के पूर्ण चंद्रमा पर प्रहार कीजिएगा। इसकी अनुरणन ध्वनि के शांत होने से पहले सेवक आपके सामने उपस्थित होगा।''

सेवक के जाने पर वे आश्वस्त हुए। उसकी उपस्थिति में वे कुछ खा ही नहीं सकते थे। अब वे धैर्यपूर्व जलपान करेंगे। यदि इस समय यहाँ कृष्ण होता तो भी वे सहज होकर जलपान नहीं कर पाते।
जलपान की सुगंध से कक्ष पूर्णत: सुवासित हो उठा था। वह सुवास सुदामा की नासिका से होकर उनके मस्तिष्क में गई और रसना सक्रिय हो उठी। वह भोजन ग्रहण करने के लिए कभी सुदामा के अधरों को चाटती तो कभी उनके तालु को छूती। सुदामा जलपान से सुसज्जित थाल के निकट आए। उन खाद्य पदार्थों की सुगंध, प्रस्तुति और मौलिक आकृतियाँ यह प्रमाणित कर रही थीं कि वे व्यंजन असाधारण रूप से स्वादिष्ट होंगे। सुदामा ने पीले रंग का एक व्यंजन उठाया। वे उसे मुँह तक ही लेकर गए थे कि रुक गए। उन्होंने अनुभव किया कि कोई उनको पुकार रहा है।
'कौन है?' सुदामा बुदबुदाए।
'और कौन होगा? वही हूँ तुम्हारे मन का अज्ञात स्वर।'
'कहो।'
'कल भी तुम फलों का रसपान कर गए और आज जलपान पर झुके हो।'
'तो?' सुदामा की भौंहें तन गईं, 'अपने मित्र के आतिथ्य को ग्रहण कर रहा हूँ।'

'अच्छा, यह बताओ कि कल फलों का रस पीने से पहले तुम ठिठक क्यों गए थे?' स्वर ने दूसरे प्रश्न के रूप में अपना पाँसा फेंका, 'वह तो कृष्ण ने इतनी त्वरा से तुम्हारे श्रीमुख पर रस भरा पात्र लगा दिया कि तुम्हें इतना समय ही नहीं मिला कि तुम मुझे सुन पाते। मैं तुम्हारी वह स्थिति समझ सकता हूँ।'

सुदामा सिर झुकाकर चुप बैठ गए। उन्होंने वह व्यंजन थाली में यथास्थान रख दिया।

'कोई बात नहीं। तुम इस समय स्वयं पर इतने लज्जित हो कि कुछ कहने की स्थिति में नहीं हो। मैं ही बता देता हूँ।' स्वर मुसकराया, 'उस समय भी तुम यही सोच रहे थे कि तुम तो स्वादिष्ट और पौष्टिक रस पी रहे हो और उधर तुम्हारी पत्नी व बच्चे पेट बाँधकर सो रहे होंगे। इधर सुबह होते ही तुम्हारे लिए अनेक व्यंजनों से सजा थाल आ पहुँचा। सुंदर वस्त्र मिले, सुगंधित जलकुंड में स्नान किया और नए रूप-रंग के साथ श्रीमान सुदामाजी महाराज बनकर बाहर आए।...क्या अब तुम्हें अपनी उस पत्नी का ध्यान नहीं आ रहा, जिसके बहुत आग्रह करने पर तुम श्रीकृष्ण से भेंट करने आए और इतने वैभव को भोगने को तत्पर हो? बताओ, क्या तुम्हें अपने परिवार का ध्यान नहीं आ रहा? तुम इस वैभव में आते ही इतने निमग्न हो गए कि उनकी सुध ही न रही।'

'यह तुम भी जानते हो कि ऐसी बात नहीं है। स्वयं सुमति ने कहा था कि केवल कृष्ण का दिया खाना। वही कर रहा हूँ। उसकी इच्छा-पूर्ति कर रहा हूँ।' सहसा सुदामा का स्वर आवेशमय हो उठा, 'तुम चाहते क्या हो, अपनी बात कहो? क्या मैं शेष तीन दिन भोजन न करूँ? या कृष्ण से कहूँ कि वह अपने परिवार के अभाव में यह सुख नहीं भोग सकता, इसलिए वह तुरंत एक शीघ्रगामी रथ भेजे और उसके परिवार को भी यहाँ बुलवा ले। मैं पहले ही कृष्ण के लिए बहुत असुविधा खड़ी कर चुका हूँ, अब और नहीं। यह भी स्मरण रखो कि मैं संवेदनशील हूँ तो इसका यह अर्थ नहीं कि तुम जब देखो तब मुझे सताने चले आओगे। अब तुम जाओ और मुझे जलपान करने दो।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।' स्वर अपना-सा मुँह लेकर चला गया।

सुदामा ने छककर जलपान किया। जलपान करते ही उनको कोमल शैय्या ने पुकारा। सुदामा ने अपनी देह उस पलंग पर गिरा दी। वे भय से चीखनेवाले थे; किंतु उन्होंने स्वयं को साधा। शैय्या का बिछौना इतना कोमल था कि सुदामा को लगा कि वे पाताल में धँसते जा रहे हैं। या जैसे किसी ने उनको अपनी विशाल अंजुलि में समेट लिया हो, या फिर जैसे वे किसी कमल के पुष्प के मध्य भाग में जा गिरे हों और कमल की पँखुरियों ने उनको दुशाला-सा ओढ़ा दिया हो।

निद्रा तो जैसे सुदामा के चारों ओर घात लगाए बैठी थी। वह तो कृष्ण की उपस्थिति में आने का साहस नहीं कर पाई थी। निद्रा के सलोने स्वप्न रूपी योद्धाओं ने सुदामा को चारों ओर से घेर लिया। सुदामा ने देखा कि कृष्ण उनको विधिवत् रूप से विदा कर रहे हैं। उनके एवं उनके परिवार के लिए अलग रथ में वस्त्राभूषण हैं और वे उनके सैनिकों के संरक्षण में उस रथ पर आगे चल रहे हैं। वे भी किसी नगर सेठ के समान अपने कंधे पर रेशमी उत्तरीय डाले, अपने वक्ष को फुलाए बैठे हैं। उनका रथ जहाँ से भी निकलता है, उनके लिए मार्ग साफ होता जाता है। वे साधारण नहीं रहे थे। वे विशेष हो गए थे। कृष्ण ने उनसे असत्य नहीं कहा था कि तुम मेरे हुए सुदामा। कृष्ण ने जो कहा, वह किया। यह तो उनका ही दोष है कि वे आज तक कृष्ण के पास ही नहीं गए। उन्होंने ही कृष्ण से असंपर्क रखा। कृष्ण ने तो उनको कभी विस्मृत किया ही नहीं। अन्यथा इतने वर्षों के अंतराल के पश्चात् कोई अन्य होता तो सुदामा की वह दीन दशा देखकर कहता कि हाँ, कुछ स्मरण तो आ रहा है कि कोई सुदामा हुआ करता था। ऐसा है कि इन दिनों मैं अति व्यस्त हूँ। तुम फिर कभी आना। उसका वह 'फिर कभी आने' का अर्थ होता कि अब कभी न आना। वह सेवकों को यह निर्देश देता कि वे सुदामा को कुछ जलपान इत्यादि कराकर, बहुत हुआ तो

थोड़ी दान-दक्षिणा देकर विदा करें। परंतु कृष्ण ने उनको कण मात्र भी यह अनुभव नहीं होने दिया कि उनको उनकी उपस्थिति भाई नहीं। अपितु वे तो उनको देखकर ऐसे आह्लादित हुए जैसे किसी शिशु को बहुत समय से खोया अपना कोई खिलौना मिल गया हो। तभी इसके पे्रमी इसको पे्रम का सागर कहते हैं। वे सत्य कहते हैं। जो इसके पे्रम रूपी सागर की अथाह गहराइयों में गोता लगा लेता है, वास्तव में वही इसके पे्रम की महिमा को अनुभव कर सकता है। इसको ऊपर से देखकर समझा नहीं जा सकता। इसमें तो डूबा ही जा सकता है। अहंकार तो यहाँ दिखता ही नहीं। इतना असाधारण होते हुए भी कितना सरल और सहज है कृष्ण, बाहरी प्रतिक्रिया से अप्रभावित। उसे तनिक भी यह नहीं लगा कि वह एक महाशक्ति का महानायक है, सर्वेसर्वा है और अपने सब सेवकों व परिवारवालों के सम्मुख न केवल उसे अपने हृदय से लगाया वरन् अपने अश्रुओं से उसके पैर धोए। ऐसी उसने क्या करनी की थी, जो इस अपात्र पर कृष्ण रीझा? एक भी तो गुण उसमें ऐसा नहीं है कि वह कृष्ण के समकक्ष हो। है तो केवल चौंसठ दिनों का पुराना परिचय। वह भी एक सहपाठी के रूप में। यह अलग बात है कि उस काल में वे एक-दूसरे के बहुत आत्मीय हो गए थे। किंतु वह काल तो होता ही ऐसा है। उसके बाद सब भुला दिया जाता है। फिर एक नया संसार होता है, उसके संबंध होते हैं। वे अनुभव कर रहे थे कि संसार में एकमात्र कृष्ण के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता, जो इस प्रकार अपने किसी दीन-हीन पूर्व परिचित को अपने गले से लगा ले। उन्हें लगा कि उनकी पत्नी ने उचित ही कहा था कि कृष्ण मनुष्य नहीं हैं, भगवान् हैं।

उनके निकट रहनेवाले सेवक जब कृष्ण को भगवान् कह रहे थे तो उस समय उन्हें लगा था कि वे चाटुकार हैं। किंतु उसने तब उनके झुकने में भक्ति का तत्त्व नहीं देखा था। वे चाकर अवश्य हैं, किंतु भक्त हैं और भगवान् की चाकरी अपने प्राणों से कर रहे हैं। कृष्ण को उन्हें शब्द नहीं कहने पड़ते, वे केवल उनकी ओर देखते भर हैं और उनके भक्त उनका मंतव्य जान लेते हैं।

सुदामा ने देखा कि उनका रथ मायापुरी की सीमा में पहुँच चुका है। वे कुछ और तनकर बैठ गए हैं। मार्ग में पैदल चलते लोग उनकी एक छवि देखने के लिए उनके रथ की ओर देखते हुए थम जाते हैं और उनका रथ उनको पीछे छोड़ता हुआ तेजी से आगे बढ़ता जाता है। उनका रथ उनके गाँव में प्रवेश करता है। उनको देखने के लिए मेला लग जाता है। वे एक दर्शनीय पुरुष हो गए हैं। उनकी उपेक्षा करनेवाले पछता रहे हैं। वे उन सभी को पीछे छोड़कर गाँव के अंतिम छोर पर अपने परिवार की ओर बढ़ते हैं। सुमति उनके तीनों बच्चों के साथ उनके ज्ञान-कुटीर के बाहर खड़ी है। वे रथ से उतर कर उनकी ओर बढ़ते हैं। सुमति उनको पहचान नहीं पाती और बच्चे भी। फिर जैसे उनका सम्मोहन टूटता है और उनकी पत्नी एवं उनके बच्चे दौड़कर उनसे चिपट जाते हैं। वे आश्वस्त हैं कि अब उनके दु:ख भरे दिन बीत गए हैं। सुदामा मन में अपार तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं और उनकी आत्मा परमात्मा रूपी श्रीकृष्ण में विलीन होती जा रही है।

सुदामा का मन विभिन्न कल्पनाओं को साकार करके उन्हें स्वप्न में दिखाता जा रहा था।

❑

रुक्मिणी अपनी जेठानी रेवती तथा परिवार की अन्य स्त्रियों और छोटे बालकों के साथ अपनी देखरेख में अन्नकूट तैयार करवा रही थीं। कृष्ण राजसी भोजन के स्थान पर आश्रमों में नित बननेवाले सहज भंडारे का अपने परिवार में आयोजन करवाते हैं। परिवार और निकट के बंधु-बांधवों के घर से कुछ-न-कुछ आता है। सबकुछ एक पात्र में डालकर उसे पकाया जाता है। वह एक कढ़ी का रूप ले लेता है। उसके साथ फीके उबले चावल होते हैं। वह भात और वह कढ़ी का संगम सभी को किसी दिव्य लोक में ले जाता है। उसको पाते समय राजभोग भी

निस्सार जान पड़ता है।

कृष्ण ने देखा कि आज बलराम भंडारा तैयार करवा रहे हैं।

''तुम आ गए, श्याम! हम तो समझ बैठे थे कि अब तुम गए बीस वर्ष पीछे।'' बलराम हँसे, ''ऐसा कर, ये शाक-पात इस महापात्र में डालकर तू जा और सुदामा के साथ खेल-कूद।''

''दाऊ, मैं जानबूझकर उसे एकाकी छोड़ आया हूँ।'' कृष्ण ने शाक का थाल उठाया। उसे निहारा। नयन मूँदे। उनके अधर मुसकराए और उन्होंने अग्नि पर चढ़े महापात्र पर वह थाल उलट दिया।

''क्यों?''

''दाऊ, तीन दिन की अविराम पद-यात्रा कर सुदामा हमसे भेंट करने आया है। उसे विश्राम की आवश्यकता है। यदि मैं उसके साथ रहता तो वह मारे संकोच के न तो कुछ खा पाता और न ही सो पाता। इस समय का उपयोग वह विश्राम करने और अपने संकोच को तोड़ने में लगा लेगा।'' कृष्ण ने अनेक बड़ी मूलियाँ उठाईं और उनके बड़े-बड़े टुकड़े महापात्र में डाल दिए।

''मैंने सुना है कि उसकी बहुत ही दीन-दशा है।'' बलराम उस महापात्र में कड़छी घुमाते हुए बोले। उनका स्वर कोमल और सहानुभूतिपूर्ण था।

कृष्ण कुछ नहीं बोले। अनमने-से कड़छी घुमाते बलराम को देखते रहे। उनकी पत्नियाँ शेष कार्यों का निरीक्षण करते हुए उनकी ओर चित्त लगाए हुए थीं। छोटे बच्चे इस अन्नकूट के समारोह में आनंदित हो एक अलग चबूतरे पर खेल रहे थे। उन्हें और उनकी माताओं को संतोष था कि वे सभी एक-दूसरे की दृष्टि में हैं।

''तुझे यह हो क्या जाता है रे? मैंने जो पूछा वह तूने सुन लिया या पुन: बोलूँ?'' बलराम ऊँचे स्वर में बोले।

''दाऊ!'' कृष्ण शून्य में देखते रहे। उनका स्वर यह बता रहा था कि उन्होंने बलराम की बात पहली ही बार में भली प्रकार से सुन ली थी और उन्होंने उनके द्वारा ऊँचे स्वर में बोले जाने पर ध्यान भी नहीं दिया है। उनके स्वर में रहस्य था, ''दीन-हीन यहाँ कौन नहीं है?''

''मैं तो यह जानता हूँ कि तू निर्मोही दीन-हीन नहीं है।'' बलराम ने ठहाका लगाया।

''देखा जाए तो सुदामा केवल आर्थिक रूप से दीन-हीन है। परंतु सामान्य दृष्टि केवल बाहरी आवरण ही देखती है। यदि एक धनी ज्ञान से दीन-हीन है तो संसार को उसकी दीनता और हीनता कहीं दिखाई ही नहीं देती, अपितु संसार उसकी उस हीनता को गौरवान्वित करता है। कहता है कि देखो, उसे हस्ताक्षर तक करने नहीं आते और कितना धनवान् है। परंतु सुदामा जैसे को देखकर कोई यह नहीं कहता कि देखो, पंक में पंकज खिला है। पंकज के निकट भी इसलिए नहीं जाना चाहते, क्योंकि कमल के सौंदर्य और सुगंध के आकर्षण से कहीं अधिक वे कीचड़ में सन जाने से त्रस्त हैं। सुदामा आत्मा का धनी है, सरलता का प्रतिनिधि है और ज्ञान का भंडार है।''

''तो यह भंडार इतने समय तक कहाँ था? पहले तुम्हारे पास क्यों नहीं आया? तो इस भंडार के शुभागमन पर तुमने भंडारे का आयोजन किया है।'' बलराम बोले, ''व्यर्थ इतने दिन कष्ट सहता रहा। पहले आता।''

''समय से पहले कोई कैसे आ सकता है, दाऊ?'' कृष्ण ने बलराम के हाथों से कड़छी ले ली और उसे स्वयं घुमाने लगे।

''देखो श्याम, तुम्हारी इन बातों से मुझे बहुत व्याकुलता होती है। ये बातें समझ तो आतीं नहीं, ऊपर से एक प्रश्नचिह्न और छोड़ जाती हैं। तुम हमसे सीधी-सपाट बात किया करो।'' बलराम ने कड़छी ले ली, ''मुरली सुनानी है तो सुनाओ, इतना समय हो गया। कभी उस निरीह मुरलिया की भी सुध ले ली होती।

‘‘ऐ जामवंती! जा इसकी मुरली तो ला।’’ बलराम ने सप्रेम आदेश दिया।
‘‘मुरली तो आ जाएगी, पर गोपियाँ कहाँ से आएँगी?’’ सत्यभामा ने चिकोटी काटी।
‘‘बहुत बोलती हो। तुम गोपियाँ कम हो क्या?’’ बलराम ने डाँटा।
‘‘हम नहीं नाचेंगी।’’ सत्यभामा मान करती हुई बोली।
‘‘अपनी बात पर टिकी रहना।’’ बलराम ने आँखें दिखाईं।
‘‘आप देख लीजिएगा, हम नहीं नाचनेवाली। ये कड़छी ही नाचेगी।’’ सत्या के कहते ही सभी स्त्रियाँ हँस दीं।
‘‘अब तुम इसकी मुरली लाओगी या यहाँ केवल शास्त्रार्थ करती रहोगी!’’ बलराम हँसे और कृष्ण की ओर मुड़े, ‘‘मुझे सूचना मिली कि मेरे निर्मोही श्याम के मन में सुदामा की दीन-दशा देखकर इतना मोह उमड़ा कि उसके अश्रुओं से बरस पड़ा।’’
‘‘उसे मोह नहीं कहते, दाऊ! आपके सामने जो शब्द आता है, आप उसी का प्रयोग कर बैठते हैं।’’ कृष्ण के अधरों पर द्वितीया के चंद्रमा के समान मुसकान की रेखा खिंची।
‘‘तो क्या कहते हैं?’’
‘‘उसे करुणा कहते हैं।’’ कृष्ण बोले।
‘‘करुणा और मोह में अंतर ही क्या है?’’ बलराम ने अपने कंधे उचकाए।
‘‘अंतर तो आकाश और पाताल का है; परंतु मैं आपको बताने नहीं जा रहा।’’ कृष्ण भंडारे की रसोई से नीचे उतर आए।
‘‘क्यों नहीं बताने जा रहे? क्या तुम सुदामा के पास जा रहे हो?’’ बलराम ने कड़छी कृष्ण के सबसे छोटे पुत्र चारु को थमा दी। वह आनंदित हो उसे महापात्र में घुमाने लगा।
‘‘मैं अभी कहीं नहीं जा रहा। यहीं हूँ सबके निकट। सुदामा के कारण पूर्ण अवकाश पर हूँ, इसलिए सभी के साथ हूँ। अन्यथा राजकाज और अन्य गतिविधियाँ परिवार के साथ समय व्यतीत करने का अवकाश ही नहीं देतीं।’’
‘‘पर तुम मुझे करुणा और मोह का अंतर क्यों नहीं बता रहे?’’ बलराम के स्वर में जिज्ञासा कम थी, आदेश व हठ की ध्वनि अधिक।
‘‘इसलिए, क्योंकि आप पहले ही यह मानकर चल रहे हैं कि आप दोनों को एक ही मानते हैं। जब आपने किसी भी तत्त्व की निष्पत्ति पहले ही निकाल रखी है तो फिर मैं कुछ भी कह लूँ, आप उससे असहमत ही होंगे। फिर क्या लाभ अनावश्यक रूप से ऊर्जा व्यय करने का?’’ कृष्ण ने अपनी स्पष्टवादिता प्रकट की।
‘‘मैंने ऐसा कब कहा?’’
‘‘आप अपने प्रश्न की भाषा देखिए। आपने कहा कि करुणा और मोह में अंतर ही क्या है? अर्थात् आप पहले से ही यह धारणा कर चुके हैं कि दोनों एक ही तत्त्व हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो आपके प्रश्न की भाषा दूसरी होती। आप कहते कि मैं तो करुणा और मोह को आज तक एक ही समझता था। यदि इनमें कोई भेद है तो तुम मुझे बताओ।...’’ कृष्ण मुसकराए, ‘‘यह भाषा जिज्ञासु की होती है। जिज्ञासु के लिए ज्ञान के द्वार अस्तित्व स्वयं खोलता चलता है।’’
‘‘अब तुम्हारी तरह हमारी पकड़ शब्दों पर तो नहीं ही है। हम तो बस कार्य सिद्ध हो जाए, ऐसी भाषा बोलते हैं।’’ बलराम ने कृष्ण की बात को गंभीरता से नहीं लिया और कुछ खीजकर बोले, ‘‘तुम शब्दों पर इतना क्यों ठहर जाते हो?’’

''मैं नि:शब्द पर भी तो ठहर जाता हूँ, आपने उसे क्यों नहीं रेखांकित किया? इसीलिए कहता हूँ कि सत्य को खंडों में देखने से जो निर्मित होता है, वह अर्धसत्य होता है।'' कृष्ण ने अन्नक्षेत्र में आनंदित हो कार्य कर रही परिवार की स्त्रियों और बच्चों की ओर देखते हुए कहा और उनकी ओर ही देखते रहे। जैसे-जैसे उनकी दृष्टि घूमती गई, वे किसी बालक के समान आह्लादित होते गए। उन्होंने एक दीर्घ श्वास खींचा और एक चंचल बालक को अग्नि के निकट न जाने की चेतावनी देती रेवती से संबोधित हुए, ''भाभी, कढ़ी की सुगंध कह रही है कि वह पक गई है। अब भात पकने रख दीजिए और अपनी सभी देवरानियों से जितना अधिक काम ले सकें, उतना अच्छा है।''

''और तुम दोनों बैठे राजनीति करते रहो।'' रेवती ऊँचे स्वर में बोली।

''राजनीति नहीं, धर्म-चर्चा हो रही है, भाभी!'' कृष्ण हँसे।

''कार्य से बचने का अच्छा अवलंब है। करो धर्म-चर्चा। देखना, कीर्तन में हम सब तुमको ही नचाएँगी।'' रेवती ने अपनी सभी देवरानियों और बहुओं की ओर देखकर कहा।

''कृष्ण को ही नचाती रहोगी तो शेष जन नाचने के लिए कैसे उत्साहित होंगे। मैं बहुत नाच चुका, भाभी! तुम समतल प्रदेश से होकर बहती नदी से यह अपेक्षा मत करो कि अब वह अपने वे पर्वतीय खेल दिखाए, जिन्हें वह यात्रा में बहुत पीछे छोड़ आई है। अब तुम नाचो, अपनी देवरानियों को नचाओ, बहुओं को नचाओ और दाऊ को नचाओ।'' कृष्ण ताली दे-देकर एक-एक का नाम बताते जा रहे थे।

''मुझे क्यों नचाओ?'' बलराम ने वक्र दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा।

''क्षमा करना, भाभी!'' कृष्ण ने अपने कान पकड़े और अपने दाँतों के मध्य अपनी जिह्वा दबाते हुए बोले, ''दाऊ भैया को मत नचाना।''

''क्यों न नचाऊँ?''

''वे वैसे ही आपके संकेतों पर अहर्निश नाचते हैं।'' कृष्ण हँसे।

सभी खिलखिलाकर हँस दिए। बच्चे देखकर चकित हुए कि सब क्यों हँसे और सभी का हँसते देख वे भी हँस दिए।

''ठीक है, तुम अपनी धर्म-चर्चा ही करो। हमें जिसे नचाना होगा, उसे नचा लेंगी। हमसे न तुम बच सकते हो और न तुम्हारे भैया।'' रेवती ने कढ़ी का महापात्र अग्नि से उतारते सेवकों की ओर देखते हुए कहा।

''मेरा नाम बीच में क्यों ले रही हो? मैंने अपने को बचाने जैसी कोई बात कही क्या?'' बलराम ने सभी की ओर देखा, जैसे वे न्याय माँग रहे हों।

''मैंने भी आपसे कुछ कहा? हम देवर-भाभी की बात हो रही है। मैं श्याम को समझा रही हूँ।'' रेवती जैसे लड़ने के लिए उनके निकट आ गई।

''तब तो ठीक है। श्याम को समझाया ही जाना चाहिए। यह बहुत ही अबोध है। क्यों रे श्याम! तू समझता क्यों नहीं। जब देखो तब कुछ-न-कुछ ऐसा कह देगा कि उससे उत्पात खड़ा हो जाए। कभी तो गंभीर हुआ...''

''भाभी जा चुकी हैं।'' कृष्ण ने बलराम की बात काट दी।

''वैसे यह तुमने बहुत ही अच्छा कार्य आरंभ करवाया है।'' बलराम ने अन्य कार्यों का निरीक्षण करती रेवती की ओर देखकर कहा, ''कितना दिव्य हो जाता है, जब अन्नक्षेत्र में प्रसाद बनता है। ये सभी हमारे राजसमाज की स्त्रियाँ, जो स्वयं को श्रेष्ठ समझती हैं, आश्रमवासिनी ऋषि-पत्नियों और ऋषि-कन्याओं के समान वल्कल धारण कर प्रभु नाम की रसोई करती हैं तो इनको एक परिष्कृत स्वाद मिलता है।''

''सारा खेल भाव जगत् का है, दाऊ! भाव मनुष्य के कार्य करने की क्षमता में गुणात्मक परिवर्तन कर देता है। एक

धाय होती है, जो शिशु का लालन-पालन कार्य के समान करती है। वहीं दूसरी ओर माँ होती है, जो उसी शिशु का लालन-पालन अलौकिक सुख पाते हुए करती है। उस शिशु के लिए किया गया कार्य उसके लिए केवल कार्य नहीं होता। वह उसके लिए उत्सव हो जाता है। उसमें से वह आनंद का सृजन करती है।'' कृष्ण के स्वर में विद्युत् का संचार हो रहा था, ''कर्म को जब हम अपना आनंद बना लेते हैं तो वह रसपूर्ण हो जाता है। अधिक होता है और उसका स्तर भी उत्कृष्ट होता है।''

''धाय तो धाय रहेगी । वह माँ कैसे बन सकती है? अपनी संतान के लिए वह माँ हो सकती है परंतु जिस शिशु की पालना के लिए वह नियुक्त की गई है, उसकी तो वह धाय ही रहेगी।'' बलराम ने जैसे कृष्ण को समझाया।

''आप ठीक कह रहे हैं कि वह धाय धाय ही रहेगी; परंतु यदि वह अपने कार्य के साथ अपनी ममता को भी संयुक्त कर लेगी तो वह वही सुख पाएगी, जो अपनी संतान से पाती है। जब वह धाय होकर पराई संतान से पे्रम करेगी तो वह उसका तनिक भी अहित नहीं सोच पाएगी। तब वह उसे भूमि पर गिरा दूषित अन्न नहीं खिला पाएगी। वह उसे न अधिक तप्त दूध पिलाने की बात सोचेगी, न अधिक शीतल और न ही उसके भाग का दूध स्वयं पी जाने की कल्पना ही करेगी। वह उसकी रक्षा के प्रति अतिरिक्त रूप से सावधान रहेगी। उसे अपनी छाती से लगाकर रखेगी और प्रतिदान में वेतन से बहुत पहले आनंद भी पाएगी। यही आनंद आत्मा का भोजन है।'' कृष्ण ने आकाश की ओर देखा, ''माँ यदि धाय का अभिनय करे और धाय माँ का तो जीवन मोहग्रस्त नहीं होगा, प्रेमपूर्ण हो जाएगा।''

''पर ऐसा करता कौन है?'' बलराम के स्वर में निराशा थी।

''वह, जिसे आनंद चाहिए, जो अपनी आत्मा का विकास चाहता है।'' कृष्ण बोले।

''आत्मा का विकास तो कोई तब चाहे न, जब उनको आत्मा का कुछ ज्ञान भी हो। संसारी तो आत्मा जैसी बात को कपोल कल्पना मानते हैं और केवल देह को ही सत्य मानते हैं। उनकी दृष्टि में जो कुछ भी देह से संबंधित है, वही सत्य है।''

''तो उनका केवल दैहिक विकास ही होता है। उनके जीवन में आत्मा का विकास अछूता रह जाता है। आत्मा को जाननेवाला तो...''

''आत्मा की बात से पहले तुम मुझे अर्धसत्यवाली बात बताओ। वह बात रह गई तो फिर कुछ अधूरा रह जाएगा और आजकल तुम्हारी व्यस्तताएँ कुछ इतनी अधिक बढ़ गईं हैं कि तुम कब आते हो, कब जाते हो—इसका किसी को कुछ ज्ञान नहीं होता। अभी यहाँ हो और अगले पल कहाँ होओगे—मुझे तो लगता है कि यह तुमको स्वयं भी ज्ञात नहीं होता।''

''आपने उचित कहा दाऊ!''

''वह तो भला हो सुदामा का, जो उसके कारण तुमने अपनी सभी गतिविधियाँ स्थगित कर दीं।'' सहसा बलराम को कुछ स्मरण हो आया, ''यह तो बताओ कि तुम सुदामा की दीन-दशा देखकर क्यों रोए थे? मेरे पास ये ही शब्द हैं, इसलिए इन शब्दों को लेकर वितंडावाद खड़ा मत करना। तुम अच्छी तरह समझते हो कि सामनेवाला क्या कहना चाह रहा है।'' बलराम ने जैसे कृष्ण को डाँटा, ''मुझे उलझाया मत करो। अन्यथा उसमें उलझकर मुझसे बहुत कुछ विस्मृत हो जाता है।''

''पहले आप मेरे अश्रुओं के विषय में जानना चाहेंगे या अर्धसत्य के विषय में या शब्द-चयन और उसका प्रभाव विषय पर व्याख्यान चाहेंगे? जो आप कहें।'' कृष्ण मुसकराए।

''तुम फिर वही सब घालमेल करने लगे। मैं सभी विषयों पर तुम्हारे विचार जानना चाहूँगा। और इन तीनों विषयों

को स्मरण भी तुमको ही रखना है। मैं तो केवल तीन की संख्या स्मरण रखूँगा। पहली बात तुम अपने अश्रुओं की ही बताओ कि बड़े-से-बड़ा दु:ख भी तुम्हारे नेत्रों से अश्रु का एक कण भी नहीं गिरवा पाया और वहाँ झरने बह रहे थे।'' बलराम ने जैसे कृष्ण की दुर्बलता को पकड़ने की विजयी मुसकान के साथ कहा।

''लगभग बीस वर्षों पश्चात् सुदामा मुझसे मिलने आया है, केवल मिलने। वह आया भी किस स्थिति और भावदशा में है। उसके पास अपना कुछ भी नहीं है। वह निर्धनता की पराकाष्ठा पर है। और उस स्थिति में सहज होकर मुझ तक आया है। उसने जैसा है, जहाँ है—वैसा ही स्वयं को मेरे समक्ष लाकर खड़ा कर दिया। उसने अपने में कुछ भी कृत्रिम नहीं जोड़ा, कुछ भी आरोपित नहीं किया। अपने को छिपाने के लिए कुछ भी नहीं ओढ़ा। एक प्रकार से वह निर्वस्त्र मेरे सम्मुख उपस्थित हुआ है। वह देहातीत होकर यात्रा करता रहा। न उसे भूख ही घेर पाई और न प्यास ही सता पाई। वह एकनिष्ठ हो मेरी ओर बढ़ता ही रहा—अविराम। मार्ग ने उसके लिए अनेक प्रलोभन बिछाए होंगे। पर वह किसी बिछावन पर नहीं बैठा। वह तो केवल मुझको पाने की अभीप्सा में चलता रहा। उसने उस यात्रा में अपने नियम-तप-व्रत भी त्याग दिए। वह दीन-हीन होकर मेरी शरण में आया है। इसी को भक्त कहते हैं, दाऊ। यही प्रेम है, यही श्रद्धा है। वह अज्ञात की यात्रा पर निकला। उसके लिए मेरा मिलना या न मिलना, मेरा उसे पहचाना जाना या बिसराया जाना, हृदय से लगा लेना या तिरस्कृत कर लौटा देना—यह सब अज्ञात था। वह प्रत्येक स्थिति को स्वीकार कर चला था। परंतु मुझे प्रत्येक अज्ञात यात्रा ज्ञात होती है। ऐसा अपूर्व प्रेम पाकर तो मेरे आनंदाश्रु रुक नहीं सकते। आपको स्मरण ही होगा कि मैंने सुदामा से कहा था कि तुम्हें मैंने अपना कहा। तुम मेरे हुए।'' कृष्ण ने अपनी दृष्टि शून्य से हटाकर बलराम पर टिका दी, ''दाऊ, मैं सभी को निर्वस्त्र भेजता हूँ और जो भी मेरे सम्मुख निर्वस्त्र आता है, वह मुझमें ही समाता है। जिस पर मैं प्रसन्न होता हूँ, उसके वस्त्र तक हर लेता हूँ। जिसने स्वयं को ढक कर बचाना चाहा, उसने समझो कि मुझसे स्वयं को बचाया है। जिसने यह मान लिया कि उसके पास ढकने जैसा कुछ नहीं, छिपाने जैसा कुछ नहीं, किससे वह छिपाएगा? किससे वह स्वयं को बचाएगा? जो अपना सर्वस्व मुझे समर्पित कर देगा, वही मेरे राज्य में प्रवेश करेगा। उसी दशा में सुदामा मेरे पास आया है। उसकी सरलता और सहजता को देखकर पहली बार मेरी प्रसन्नता ने मेरे अधरों की अपेक्षा मेरे नेत्रों का अवलंब लिया।''

''शेष दो बातें फिर कभी।'' बलराम उठ गए।

कृष्ण ने देखा कि वे कंधे पर डाले अपने अँगोछे से अपने सजल नेत्रों को पोंछते जा रहे हैं।

❑

सात

कृष्ण ने सुदामा को ब्राह्म मुहूर्त में ही उठा दिया था। वे सुदामा को वहीं छोड़कर तैयार होने के लिए दूसरे प्रासाद में चले गए थे और सुदामा को भी यथाशीघ्र तैयार होने के लिए कह गए थे।

सुदामा की तो इच्छा यही थी कि वे एक माह कृष्ण के साथ रहें। किंतु कृष्ण की अति व्यस्त दिनचर्या और समस्त यदुवंश की उन पर निर्भरता को देखते हुए वे यह सोच-सोचकर मारे संकोच के गड़े जा रहे थे कि वे कृष्ण का अमूल्य समय व्यर्थ में नष्ट कर रहे हैं। उनको क्या अधिकार है कि वे राष्ट्र के महानायक के साथ अपने मनोरंजन के लिए समय व्यतीत कर रहे हैं। उनको कृष्ण के पास भेजने का उनकी पत्नी का एक ही उद्देश्य था कि वे श्रीकृष्ण से कुछ आर्थिक सहायता माँगें। किंतु सुदामा ने सुमति को कह दिया था कि उसका मान रखने के लिए कृष्ण से मिलने जा रहे हैं। उनसे माँगना न हो सकेगा। तब सुमति ने कहा था कि मत माँगना; किंतु यदि श्रीकृष्ण उनके परिवार के लिए कुछ भेंट दें तो उसको अस्वीकार भी न करना।... उनको चाहिए था कि वे पहले ही दिन श्रीकृष्ण से कुछ चर्चा करके विदा हो जाते। किंतु सुदामा को तो जैसे कृष्ण से मिलकर जीवन को देखने की एक नूतन दृष्टि मिल रही थी। उनको यह अनुभव हो रहा था कि उनके पास शास्त्रीय ज्ञान है और कृष्ण के पास शास्त्रातीत। जो कृष्ण कहते हैं, वह अनेक बार तो शास्त्रीय सीमा का अतिक्रमण कर जाते। वे समझ नहीं पा रहे थे कि शास्त्र सही है अथवा कृष्ण का अनेक अवसरों पर शास्त्रातीत हो जाना।

उन्होंने पलंग से उतरते हुए श्रद्धापूर्वक भूमि का स्पर्श कर उस हाथ को अपने मस्तक से लगाते हुए कहा, ''हम सभी को धारण करनेवाली धरती माँ! हे माँ शारदा! जो सत्य है, उसका मुझे वर दो, उसका मुझे साक्षात्कार कराओ।''

सुदामा नहीं चाहते थे कि जब कृष्ण तैयार होकर आएँ तो उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़े। इस लक्ष्य को ध्याम में रखते हुए वे पलक झपकते ही तैयार होकर आसन पर आ बैठे। कृष्ण की प्रतीक्षा में आत्मलीन हो उन्होंने आँखें मूँद ली थीं। उन्होंने पहले दिन ही सोच लिया था कि वे तीन दिन ही कृष्ण के साथ रहेंगे। तब तो उन्होंने ऐसा संकुचित होकर कहा था; किंतु बाद में उन्होंने जब यह अनुभव किया कि उनके जैसा अनुपयोगी और निष्क्रिय व्यक्ति कृष्ण जैसे सक्रिय राजपुरुष के तीन दिन लेकर सभी पर एक प्रकार से अत्याचार कर रहा है तो यह सोचते ही वे और भी अधिक संकोच से गड़ गए थे। औपचारिकतावश उन्होंने कृष्ण से कहा भी था कि वे अगले दिन ही जाना चाहते हैं। तो कृष्ण ने उनकी बाँह पकड़कर उनको अपनी आँखों में देखने के लिए विवश करते हुए कहा था कि वे अपने तीन दिन ठहरने के वचन पर तो अडिग रहें। जब तक आपद्धर्म न हो तब तक वचन-भंग उचित नहीं। वे तब यह भी पूछना चाहें आपद्धर्म में वचन भंग होना उचित है। कैसे? वे आज उससे इसका उत्तर भी चाहेंगे। इन बीते दो दिनों में कृष्ण से चर्चा कर उन्होंने यह जाना कि कृष्ण के पास प्रत्येक प्रश्न का न केवल उत्तर है, वरन् अनुभव भी है। वे तो जीवन भर पुस्तकों और आश्रमों के विद्वानों में डूबे रहे। वे किसी गड्ढे में भरे ज्ञान रूपी जल को ही महासागर मानते रहे और आज उनको परम पावन गंगोतरी के दर्शन हुए हैं, जहाँ से ज्ञान रूपी विशुद्ध जल सतत झर रहा है। नित नया ज्ञान आ रहा है। पहलेवाला जल कहाँ बह गया, उसका कोई लेखा-जोखा नहीं है।

''तुम तो इस वेश में ज्ञान के सूर्य लग रहे हो, सुदामा।'' कृष्ण का स्वर गूँजा।

सुदामा ने आँखें खोलीं। सामने कृष्ण मुसकरा रहे थे, उनके सहपाठी कृष्ण।

''ज्ञान के सूर्य तो तुम हो, कृष्ण!'' सुदामा मुसकराए।

''तुम्हारी बात ही रही। मैं ज्ञान का सूर्य और तुम महासूर्य।'' कृष्ण हँसे।

''नहीं।'' सुदामा का स्वर गंभीर हो गया, ''हम तो ज्ञानी होने का दंभ भरते हैं। हम तुम्हारे सामने रात्रि में चमकनेवाले कीट के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। तुम समग्र हो कृष्ण, और हम खंड के खंडों के भी कण हैं।''

''तुमसे अपना परिचय पाकर मुझे अपने स्वरूप का बोध हुआ। मुझे नहीं ज्ञात था कि मैं इतना विशेष हूँ। किंतु जब सुदामा जैसा ज्ञानी इस बात को प्रमाणित कर रहा है तो यह बात निश्चित रूप से मानने जैसी है।'' कृष्ण के नयन लीलामयी हो उठे, ''यदि तुम्हारा पे्रम-वक्तव्य पूरा हो गया हो तो हम प्रस्थान करें?''

''ओह!'' सुदामा उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने लिए आए कोमल पदत्राणों को पहना और कृष्ण के साथ हो लिये।

बाहर प्रांगण में अनेक रथ और अश्वारोही अंगरक्षक तैयार थे। सुदामा ने देखा कि कृष्ण के रथ पर उनका सारथि, मित्र, आत्मीय, विश्वसनीय और सुहृदय दारुक प्रसन्नचित्त उनकी प्रतीक्षा में खड़ा है। उसके साथ सुभाष भी है। वे रथ की ओर बढ़े। कृष्ण के आगमन पर सभी चौकन्ने हो गए।

दारुक और सुभाष कृष्ण के सम्मुख बिना किसी शाब्दिक अभिवादन के नतमस्तक हुए। कृष्ण ने मुसकराकर उनका अभिवादन स्वीकार किया। वे अपने रथ के अश्वों के पास गए।

''कैसे हो, सुग्रीव?'' पहले अश्व के पास जाकर उन्होंने उसके माथे को चूमा और उसे पुचकारते हुए पूछा।

''मेघपुष्प, तुम कल कुछ अधिक थक गए थे क्या?'' कृष्ण हँसे।

''शैव्य, तुम तो अर्जुन के समान बहुत ही कम बोलते हो।''

''और तुम बलाहक, तुम्हें मेरी तरह सभी को सताने में आनंद आता है, क्यों? कल रात्रि तुमने अपने मित्रों को सोने भी नहीं दिया।'' कृष्ण की बात सुनकर जैसे चौथा अश्व लज्जित हो गया, मानो कह रहा हो कि किसी बाहरी व्यक्ति के सामने तो उसकी लाज रख लो।

यह स्पष्ट दिख रहा था कि कृष्ण का पे्रम पाकर वे अश्व किसी अपूर्व शक्ति से भर गए थे।

''दारुक!'' कृष्ण बोले, ''हमारे साथ दो अश्वारोही और एक रथ ही रखो। दूसरे रथ पर तुम दोनों अपने सहयोगियों के साथ रहना।'' उन्होंने सुदामा को कंधे से पकड़कर अपने हृदय के निकट सटाते हुए कहा, ''आज मैं सुदामा का सारथि बनूँगा।'' उन्होंने सुभाष की ओर देखा, ''सात्यकि को सब समझा दिया न?''

''आप आश्वस्त रहें, प्रभु!'' सुभाष ने हाथ जोड़कर कहा।

''सुदामा, सत्य तो यह है कि मैं कुछ नहीं करता। सुभाष, दारुक, सात्यकि जैसे मेरे सहायक ही मेरा फैला हुआ रूप हैं। इनकी कृपा से मैं कुछ विश्राम पा लेता हूँ।''

''हमारे पास जो बल है, वह सब आपका दिया है। आप सारे कार्य स्वयं करते हैं और श्रेय को भक्तों के आनंद के लिए बाँटते चलते हैं।'' दारुक का स्वर भाव-विभोर था।

''तुम कुछ व्याकुल हो, सुभाष? लगता है, कुछ कहना चाह रहे हो; किंतु संकोचवश मौन हो। भय और संकोच का तो यहाँ प्रवेश-निषेध है।'' कृष्ण मुसकराए, ''कहो।''

''कल संगीतज्ञ पं. हनुमान प्रसादजी आए थे। आप थे नहीं, इसलिए हमने उनसे निवेदन किया कि वे आपकी अनुपस्थिति में कार्य देख रहे श्रीमान सात्यकिजी को अपना मंतव्य कह दें। परंतु वे आपके दर्शन के इच्छुक थे।''

कृष्ण की आँखों ने जैसे कुछ पूछा।

''हमने उनको अतिथि-गृह में यह कहकर ठहराया है कि हम उनका संदेश आप तक पहुँचा रहे हैं।'' सुभाष ने

कहा।
''सुदामा, यह संयोग है कि पं. हनुमान प्रसादजी स्वयं यहाँ पधारे हैं। वे सामवेद के ऋषि का रूप हैं।'' कृष्ण ने सुभाष की ओर देखा, ''पं. हनुमान प्रसादजी के श्रीचरणों में मेरा प्रणाम निवेदित कर उनको एक विशेष रथ से सागर-तट पर ले आओ। कहना कि यह हमारा सौभाग्य है कि हमारा सागर-तट का एकांताश्रम उनके शुभागमन से और ऊर्जावान् होगा। हम सभी वहीं जलपान करेंगे।''

सुभाष ने आज्ञा-पालनस्वरूप अपना सिर झुका दिया।

कृष्ण ने सुदामा को रथ पर चढ़ाया और फिर स्वयं चढ़कर सारथि के स्थान पर बैठ गए। सुदामा उठकर उनके निकट आ गए। कृष्ण ने रास को ऐसे थामा हुआ था जैसे वे पुष्प-गुच्छ लिये हों।

''चलो!'' कृष्ण धीरे से बोले।

रथ चल दिया। सुदामा भौंचक रह गए। उन्होंने अपने ग्राम में या उसके आस-पास घोड़ागाड़ी अथवा रथ देखे हैं। उनके सारथि तो अपने अश्वों को चलाने के लिए या तो कशा से पीटते हैं या फिर अपशब्दों से पुकारकर उनकी पूँछ खींचकर उनका अपमान करते हैं। तब जाकर कहीं उनका रथ चलता है। यात्रा में मिले उस राजपुरुष के सारथि ने भी जब रथ को चलाने के लिए अश्वों को पुकारा था तो उसे भी वे शब्द सुनकर लज्जा आ गई थी। जैसे ही उनका रथ चला, उनसे आगे पचास पग की दूरी पर वे दोनों अश्वारोही पहुँच गए। उनके पीछे आ रहे रथ पर दारुक अन्य सहयोगियों के साथ था।

''सुनो मित्रो! आज सुदामाजी को सागर-तट पर अपने एकांताश्रम का दर्शन कराना है।'' कृष्ण ने वह रास एक अतिसुंदर कलात्मक खूँटी से कोमलता से बाँध दी।

'आपद्धर्म में वचन-भंग होना उचित है। कैसे? मेरे इस प्रश्न का उत्तर अभी देना है। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि तुम्हारी बातों में डूबकर मैं वह सब भूल जाता हूँ, जो पूछना चाहता हूँ। यह प्रश्न तुम अभी अपनी गाँठ में बाँध लो। इसकी गाँठ तब खोलना, जब मैं अभी अपने मन में तीव्रता से उठता प्रश्न पूछ लूँ।' सुदामा के मन में आया कि वे अपने प्रश्नों की कभी न समाप्त होनेवाली सूची कृष्ण को थमा दें। पर वे जानते हैं कि ऐसा संभव नहीं। उनके पास केवल आज का ही दिन है।

'तो क्यों नहीं सदा के लिए द्वारका में बस जाते? तुम्हारे एक संकेत भर करने का विलंब है और कृष्ण तुम्हारे आवास व जीविका का सुंदर प्रबंध कर देगा। फिर प्रतिदिन कृष्ण से चर्चा करना।' सुदामा के मन से कोई स्वर उनको चिढ़ाने के लिए उठा।

सुदामा ने उस स्वर से मुँह फेर लिया और अपना मुख कृष्ण की ओर किया ही था कि वह बिना उनकी आज्ञा से उनके मन के स्वर की इच्छा से खुल गया।

''कृष्ण, क्या ऐसा संभव नहीं कि हम-तुम सदा साथ रहें?'' सुदामा अपना हाथ मलते रह गए—उफ, यह स्वर! यदि वे उसका अपमान न करते तो निश्चित ही वह उनको नीचा दिखाने के लिए उनकी जिह्वा पर न आ बैठता। इस समय कृष्ण उसे लोभी समझ रहा होगा। सोच रहा होगा कि दो दिन में ही इस निर्धन सुदामा को विलास का रस लग गया। अब उन्हें ही बात सँभालनी होगी।

''हाँ, इसमें तो असंभव कुछ भी नहीं है। यह तो द्वारका का सौभाग्य होगा कि तुम यहाँ सपरिवार रहो। मैं तो यह चाहता हूँ, परंतु तुम आज ही जाने की बात कह रहे हो। यहाँ सब प्रबंध हो जाएगा।''

इससे पहले कि सुदामा कुछ कहते, कृष्ण के शब्द सुदामा के कानों से होते हुए उनके मर्म तक जा पहुँचे।

सुदामा को इन दो दिनों में यह विश्वास हो गया था कि कृष्ण को मन की बातें पढ़ने की सिद्धि प्राप्त है। किसी एक-आध अवसर पर ऐसा हुआ होता तो वे इसे सांयोगिक घटना मान लेते, किंतु वे जो मन में सोच रहे होते हैं, उससे ही संबंधित अगला वाक्य कृष्ण बोल रहे होते हैं। यह संयोग नहीं है, यह तो अलौकिक विद्या है।

''मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं था, कृष्ण! '' सुदामा ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर कृष्ण का ध्यान उस अभिप्राय से हटाने का प्रयास किया, ''मैं यह जानना चाह रहा था कि गोप-गोपियाँ आज भी यह कहती हैं कि जो द्वारका में रहता है, वह कृष्ण कोई और है। आज भी हमारे साथ वही गोपाल गौओं को चराता, वंशी बजाता यमुना तट पर विचरता है। इसलिए उनको कन्हैया का अभाव नहीं सालता।'' सुदामा ने रुककर भक्तिभाव से कृष्ण की ओर देखा, ''यह क्या माया है, कृष्ण?''

''यही तुम्हारा तीव्र गति से उठता प्रश्न है?'' कृष्ण ने ठहाका लगाया।

''नहीं, यह वह प्रश्न नहीं है।'' सुदामा बोले।

''तो वह प्रश्न क्या है?''

''वह प्रश्न?'' सुदामा चकरा गए, ''अभी तो स्मरण था।'' उन्होंने अपना माथा ठोका, ''मेरे मस्तिष्क की सारी व्यवस्था तुम्हारे सामने आते ही बिखर जाती है और उसके खंड इतनी दूर जा-जाकर गिरते हैं कि खोजे नहीं मिलते।'' सुदामा ने मुसकराने का प्रयास करते हुए कहा, ''इस समय तुम मुझे अपनी प्यारी गोपियों का रहस्य बताओ कि तुम द्वारका में होते हुए भी उनके साथ कैसे हो?''

''सुदामा, न तो मुझे कोई मुझे प्रिय है और न अप्रिय। न मैं किसी से द्वेष करता हूँ और न ही पक्षपात। मैं सभी के हृदय में समान रूप से रहता हूँ; परंतु जो मुझे प्रेमपूर्वक स्मरण करते हैं, भजते हैं—मैं उनके हृदय में चिन्मय रूप में वास करता हूँ। उनकी प्रेम-समाधि मुझे उनके चित्त में प्रकट कर देती है। तुम जब भी प्रेमपूर्ण होकर मुझे पुकारोगे, मैं तुमसे संवाद करने उपस्थित हो जाऊँगा। स्थान और काल की दूरी का मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं है।...'' सहसा कृष्ण अपनी उस समाधिस्थ अवस्था से एकदम नीचे अपनी लीलामयी मुद्रा में आ गए, ''तुम ज्ञानमार्गी हो। यह कहोगे कि कृष्ण कैसे अहंकार की भाषा बोल रहा है। यहाँ 'मैं' का अभिप्राय उस सर्वशक्तिमान् परमपिता परमेश्वर से है। सभी प्रश्न उस परमात्मा में जाकर गिर जाते हैं। यदि तुम समाधि की अवस्था में पहुँच सको तो पाओगे कि तुम्हारे अंतहीन प्रश्नों की सूची वहाँ है ही नहीं।''

''ओह! कृष्ण ने यह भी पढ़ लिया।'' सुदामा बुदबुदाए।

'और यह भी सुन लिया, जो तुमने बुदबुदाया।' उनके मन का वह स्वर उन्हें जीभ चिढ़ाकर भाग गया।

''तुम उस दशा के बहुत निकट हो। तुम्हारी ऊर्जा शब्दों पर आकर अटक गई है। तुमने आज तक केवल शब्द ही जाना है। जिस दिन नि:शब्द को जानोगे तो पाओगे कि तुम भी किन शब्द रूपी कंकड़-पत्थरों से सिर मारते रहे। नि:शब्द हैं मणियाँ—स्फटिक मणियाँ। और फिर वह अवस्था भी है, जहाँ नि:शब्द भी नहीं है।'' कृष्ण की मोहिनी मुसकान फैल गई।

सुदामा के मन में आया कि वे अपना सिर पीट लें। वे अपने को महाज्ञानी समझते रहे और आज उनको पता लग रहा है कि वे कुछ भी नहीं जानते। कृष्ण जिन अवस्थाओं के विषय में बता रहे हैं, उस तत्त्व की चर्चा तो प्राय: महायोगियों के शास्त्रों में होती है। इसका अर्थ है कि कृष्ण इन अवस्थाओं से होकर आए हैं और वह इनमें रमण करते हैं!

''यह नि:शब्द क्या है?'' सुदामा का मुँह उनकी इच्छा से खुला।

सुदामा की बात सुनकर कृष्ण ने ठहाका लगाया और उनके ठहाके लगते ही गए। दौड़ते हुए रथ के अश्व भी जोर से हिनहिनाए।

''हँसो, तुम भी हँसो! बात ही हँसने की है।'' कृष्ण अश्वों से संबोधित हुए।

''यही था मेरा वह तीव्र गति से उठनेवाला प्रश्न, जो मुझसे विस्मृत हो गया था कि क्या ये पशु तुम्हारी भाषा समझते हैं?''

''रुको!'' कृष्ण के इतना कहते ही अश्व हिनहिनाए। उन्होंने अपने अगले दोनों पैर भूमि से ऊपर उठाकर तीव्र गति से जा रहे रथ को रोक दिया और शांत खड़े हो गए। आगे जा रहे अश्वारोही भी रुक गए और कृष्ण के रथ के आकस्मिक रूप से रुकने का कारण जानने के लिए उस ओर देखने लगे। श्रीकृष्ण को आश्वस्त हो सुदामा से बातचीत करते देख वे संतुष्ट हुए कि संकट की कोई बात नहीं है। पीछे आ रहा रथ भी संभवत: आगे चल रहे अश्वारोहियों को संतुष्ट देखकर अपनी निश्चित दूरी पर खड़ा रहा।

''सुनो सुग्रीव, शैव्य, मेघपुष्प और बलाहक! सुदामा ज्ञानमार्गी हैं। ये यह नहीं जानते कि तुम अश्व रूप होते हुए भी पशु नहीं हो, मेरे मित्र हो। इनकी बात को अन्यथा न लेना। मैं इनकी ओर से तुमसे क्षमा माँगता हूँ। यह इनकी सामान्य जिज्ञासा है। यदि तुम प्रसन्न हो तो हम आगे की यात्रा करें।''

कृष्ण के इतना कहते ही अश्व बिना कुछ शब्द किए चल दिए, जैसे कृष्ण ने उनसे क्षमा माँगकर उनको लज्जित कर दिया हो।

सुदामा कृष्ण की मधुरता और शिष्टाचार देखकर अभिभूत हो उठे। वे सोचने लगे कि कृष्ण ने उनसे नहीं कहा कि वे उनके प्रिय अश्वों...अर्थात् मित्रों को 'पशु' कहकर अपमानित न करें। क्या यह सब कृष्ण ने उन्हें टोकने के लिए कहा था या सचमुच उनके अश्व उनकी भाषा समझते हैं?

'सबकुछ अपनी आँखों से देख रहा है और कानों से सुन रहा है। फिर भी स्वीकार नहीं करना चाहता। धत् जड़बुद्धि!' उनके मन के आस-पास मंडराता वह स्वर जैसे उन पर अपने शब्द का ढेला मारकर भाग गया।

''तुम यही सोच रहे होगे कि मैं और मेरे मित्र क्यों हँसे!'' कृष्ण ने अपने स्वर को सुदामा के संतोष के लिए गंभीर करने का अभिनय किया, ''सुदामा, तुम नि:शब्द को भी शब्दों के माध्यम से जानना चाहते हो। क्या तुम्हें नहीं लगता कि तुमको भी इस बात पर हँसकर आनंदित होना चाहिए? कितनी विनोदपूर्ण बात है यह।''

''हम जैसे लोग विवश हैं, कृष्ण! हमारे पास यही शब्द रूपी हलदी की गाँठें हैं और हम इनके बल पर ही पंसारी बनने का भ्रम पाले हुए हैं। तुम्हारे लिए यह सरल है कि तुम हमारे तल पर आकर हमें समझाओ। हमारे लिए यह असंभव है कि हम तुम्हारे शिखर पर चढ़कर वह ग्रहण करें, जो तुम कह रहे हो।'' सुदामा का स्वर दीन-हीन था।

''इसे तुम इस प्रकार समझ सकते हो कि एक भक्त, जो साकार पर ध्यान लगा रहा है, वह शब्द है। फिर एक अवस्था ऐसी आती है कि उसका नियम, व्रत, तप, ज्ञान, विज्ञान इत्यादि उसका जो भी बाहरी जानना है, वह सब गिर जाता है। उसके कर्म के बंधन भी गिर जाते हैं। यदि कुछ कर्म शेष रह भी जाते हैं तो वे कर्म-फल के नियमों से पार होते हैं। फिर उसके कर्मों से न पाप सृजित होता है और न पुण्य। दूसरे शब्दों में कहें तो वे ऊसर-कर्म हो जाते हैं। वे कर्म केवल हैं। बस, इससे अधिक कुछ नहीं।''

''कृष्ण, मैं आज तक नहीं जान पाया कि ईश्वर ने मेरा मार्ग शब्दों के माध्यम से बनाया है या शब्द मेरी बाधा हैं। वैसे सिद्ध पुरुषों ने भी शब्द का आश्रय लिया है और साधकों ने भी, क्योंकि हमारे श़ास्त्रों में शब्द-ब्रह्म की भी मान्यता है।'' सुदामा का शास्त्रीय ज्ञान बोल उठा।

‘‘एक बात भली प्रकार से जान लो सुदामा कि शब्द केवल साधन मात्र है, साध्य नहीं। सत्य सदा अव्यक्त है, शब्दातीत है। शब्द केवल उस सत्ता के प्रति संकेत मात्र है। तुम्हें शब्दों का उपयोग भर करना है और फिर उनको गिराकर आगे की यात्रा करनी है। शब्द...’’

‘‘...शब्द को कोई कैसे गिरा सकता है?’’ सुदामा ने कृष्ण की बात पूरी नहीं होने दी और बीच में अपनी जिज्ञासा रख दी।

‘‘जैसे फल खाने के पश्चात् तुम उसके आवरण को गिरा देते हो। आवरण की केवल इतनी ही उपयोगिता होती है कि वह फल को संरक्षित रखता है। उसे इस योग्य बनने देता है कि स्वस्थ आहार बनने में बीज की सहायता करे। जब तुम फल को खा लेते हो तो छिलके को ढोते नहीं हो। उसी प्रकार जब तुम शब्दातीत की सुवास पा लेते हो तो शब्दों का भ्रम तुम्हें सम्मोहित नहीं कर पाता।’’

‘‘और शब्द-ब्रह्म कब बनता है?’’ सम्मोहित सुदामा का मुँह खुला।

‘‘जब वह ऋषि की वाणी का आश्रय पाता है। शब्द वही है। उसी शब्द का उपयोग सुषुप्त जन कर रहे हैं और उसी शब्द का उपयोग बुद्धपुरुष कर रहे हैं। जो शब्द बुद्धों के श्रीमुख से झरेगा, वह ब्रह्म होगा। उसमें उस बुद्ध की ऊर्जा संचरण कर रही होगी। वह मंत्र बन जाएगा। नि:शब्द को जिस दिन तुम अनुभव करोगे, तब अपने इस प्रश्न पर बहुत हँसोगे।’’ कृष्ण मंद-मंद मुसकराए।

‘‘तुम तो जानते हो कि नि:शब्द में प्रवेश कैसे हो। मुझे भी वह सूत्र दे दो।’’ सुदामा के स्वर में याचना थी, ‘‘इन शब्दों के भार से मेरी आत्मा दबी जा रही है। मेरी छाती और बुद्धि पर शब्दों की शुष्क शिलाएँ गिरी पड़ी हैं। मुझे ऐसा वरदान दो कि मेरी अनुभव रूपी गंगा इन शिलाओं को चूर्ण-चूर्ण नहीं भी कर दे तो कम-से-कम उनको घिसकर छोटे-छोटे सुंदर स्निग्ध पत्थरों में तो बदल दे।’’

‘‘तुम मुझसे...’’ कृष्ण एक क्षण के लिए रुके। उन्होंने सुदामा की ओर देखा और मुसकराए, ‘‘सुदामा, तुम जैसा होना चाहोगे, अस्तित्व तुम्हारे साथ वैसा ही सहयोग करेगा। तुम उससे जो माँगोगे, वह देगा। वह उस दिशा में तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करेगा।’’

‘‘मैं उस गुरु को कैसे खोजूँ, जो मुझे उस दिशा का दर्शन करा सके?’’ सुदामा ने जिज्ञासा की।

‘‘तुम केवल खोज भर हो जाओ। कोई तुमसे तुम्हारा नाम भी पूछे तो तुम्हारे मुख से निकले कि मैं खोज हूँ। शोधार्थी हो जाओ, खोजो और यह बात भी स्मरण रखो कि वह तुम्हारे खोजने से नहीं मिलेगा।’’ कृष्ण की रहस्यमयी वाणी गूँजी।

‘‘तो?’’ सुदामा की बुद्धि चक्कर खाकर ऐसे गिरी जैसे एक बार सुदामा चलती बैलगाड़ी की विपरीत दिशा में मुँह करके उतरने के कारण गिरे थे। वे बोले, ‘‘यह कैसा नियम है कि तुम खोजो और उस खोज का परिणाम यह रहेगा कि तुम खोज से कुछ नहीं पा पाओगे। तो फिर प्रश्न यह उठता है कि जब खोजने से हम उसे पा नहीं सकेंगे तो फिर उसे खोजा ही क्यों जाए?’’

‘‘खोजते-खोजते एक दिन ऐसा समय आएगा कि सद्गुरु तुम्हें खोज लेगा। इस अहंकार को कभी न पालना कि तुमने गुरु खोज लिया। गुरु ही तुमको खोजता हुआ आता है। अनेक अवसरों पर तो तुम पहचान ही नहीं पाते हो कि तुम जिससे ईर्ष्या कर रहे हो, जिसके निकट शास्त्रार्थ कर रहे हो, जिसकी बातों से असहमत हो रहे हो, उसे अस्तित्व ने तुम्हारी यात्रा के लिए भेजा है। सद्गुरु को पहचानने के लिए आँखें चाहिए।’’ कृष्ण ने सुदामा का कंधा थपथपाते हुए कहा, ‘‘प्रतिक्षण सजग रहना। वह कभी भी तुम्हारे पास आ जाएगा और तुम्हारी झोली भर जाएगा। हो

सकता है, तुम उसे पहचान ही न पाओ। वह तुम्हें अपना परिचय देगा। तब भी तुम उसे नहीं पहचानोगे तो वह तुमसे स्पष्ट कहेगा। वह तुमसे तुम्हारे ही शब्दों में कहेगा कि वह वही है, जो निःशब्द में रहता है। सुदामा, वह तुम्हारे पास आएगा।'' कृष्ण क्षण भर को आत्मलीन हुए और बोले, ''किंतु दुर्भाग्य, तुम उसके प्रति ईर्ष्या से भर जाओगे। तुम स्वयं को उससे श्रेष्ठ मानोगे। उसके सम्मुख निवेदन करने में तुम स्वयं को अपमानित अनुभव करोगे। उसकी स्तुति करने की कल्पना करके तो तुम्हारे प्राण निकलने को व्याकुल हो उठेंगे। तुम्हारा अहंकार तुम्हारे सिर पर शब्दों का ऐसा वितान बना देगा कि तुम न तो आकाश के दर्शन कर पाओगे और न सूर्य के।'' कृष्ण जैसे भविष्य के गर्भ में झाँक रहे थे, ''तुम्हारा यह ज्ञान ही तुम्हारी सबसे बड़ी बाधा बन जाएगा। तुम्हारा यह जानना, जो कि तुम्हारा अपना भी नहीं है। शास्त्रीय सिखावन है, यही तुम्हें झुकने से रोकेगा। तुम झुकना भूल जाओगे।''

''कृष्ण, तुम शाप तो न दो।'' सुदामा का मुख भय से पीला पड़ गया था।

''तुम चाहो तो शाप को वरदान में बदल सकते हो।''

''कैसे?''

''प्रतिक्षण सजग रहकर। तुम पंडित हो सुदामा, और वह शूद्रों का रूप धारण कर पंडितों के पास अमृत-कलश लेकर आता है। केवल भक्त ही उस अमृत का पान कर पाते हैं। भक्तों की दृष्टि में भेद नहीं होता। वे उसे प्रत्येक रूप में पहचान लेते हैं। फिर चाहे वह कितने ही रूप धरकर क्यों न आए। जब वह मनुष्य की देह धरकर आता है तो मूढ़ जन उस अजनमे, अविनाशी को तुच्छ जानकर उसका तिरस्कार करते हैं। वह दुःख में आकंठ डूबे संसारियों के लिए उनके जैसा रूप धर के आता है, उनके जैसी भाषा बोलता है; किंतु करुणा और उद्धारक रूप उस परमात्मा को संसारी साधारण मनुष्य ही मानते हैं। इसलिए न ज्ञानी बनने की यात्रा करो, न विद्वान् बनने की— भक्त बनो, सुदामा!'' कृष्ण ने संकेत दिया।

''उसे पहचाना कैसे जाए? तुम कह रहे हो कि वह रंग-रूप बदलकर आता है। ऐसे में कोई कैसे पहचाने?''

''प्यासे जल को सूँघ लेते हैं।''

''यह अन्याय है।'' सुदामा के स्वर में विरोध था।

''नहीं, यह अन्याय नहीं, वरन् परीक्षा है। तभी तो तुम्हें बार-बार चेता रहा हूँ कि उसके शब्दों को तौलना। वह तुम्हें स्पष्ट शब्दों में अपने आने की सूचना देगा। उसके पदचापों में भी तुम शब्दों के नूपुर बजते पाओगे। तुम अपने कानों पर हाथ मत रख लेना।'' कृष्ण के शब्द जैसे किसी शिल्पी के उपकरणों का काम कर सुदामा की बुद्धि को छील रहे थे।

''बहुरूपिए को पहचानना कठिन है, कृष्ण! तुम कह रहे हो कि वह वेश बदलकर आएगा। ऐसे में उसे कोई कैसे पहचाने?''

''मैंने साथ में यह भी कहा है कि वह तुमसे स्पष्ट शब्दों में कहेगा कि तुम दिव्य आत्मा हो। मुझमें समाकर यह जान लो कि तुम कौन हो। मैं तुम्हारे लिए ही यहाँ आया हूँ। फिर भी तुम उसके निमंत्रणों का तिरस्कार करोगे। ध्यान रखना सुदामा, कि जब कोई तुम्हारी आत्मा के स्वरूप को जानने की यात्रा पर तुम्हें ले जाने का निमंत्रण दे तो तुम उसे बिसरा मत देना। पता नहीं फिर किस जन्म में वैसा संयोग बैठे।'' कृष्ण ने अवाक् सुदामा की ओर देखा, ''कहाँ लीन हो गए?''

''मुझे लगता है कि जो मेरे उद्धार के लिए आएगा, यदि मैंने उसकी उपेक्षा की और उसके प्रेम-निमंत्रण को बिसरा दिया तो मैं तो अपने हाथों ही छला जाऊँगा।'' सुदामा के स्वर में भविष्य में होनेवाले अनिष्ट की आशंका

थी।
''जो तत्त्व को जानते हैं, वे छले नहीं जाते।'' कृष्ण मुसकराए।
''तत्त्व क्या है?''
''मिट्टी।''
''मिट्टी?'' सुदामा ने थूक सटका, ''मैं समझा नहीं।''
''कुम्हार केवल मिट्टी को जानता है। मिट्टी तत्त्व है। फिर तुम उसके पास चाहे घट ले जाओ, चाहे सकोरा, चाहे कूण्ड और चाहे फल या पशु-पक्षियों की रूपाकृतियाँ। वह देखते ही कह देगा कि सब मिट्टी है। वह तत्त्व को जानता है। वैसे ही जो सत्य को जानता है, सत्य किसी भी रूप में उसके पास आए, वह पहचान लेगा; क्योंकि वह तत्त्व को जाननेवाला है।'' सहसा कृष्ण धीरे से बोले, ''मैंने तो तुम्हारे प्रश्न की गाँठ बाँधी हुई है, तुम भी मेरी एक बात गाँठ बाँध लो। मुझे अनेक बार अपनी बातों की पुनरावृत्ति करनी पड़ती है; क्योंकि सुननेवाले चूकने में अति कुशल हैं। जब मैं कह रहा होता हूँ तो उनका मन कहीं और होता है और वे मन में चलनेवाले झंझावात का कोलाहल ही सुन रहे होते हैं।''
''तुम सत्य कह रहे हो, कृष्ण! मेरा अनंत विचारोंवाला मन इस प्रकार भाग रहा है, जैसे हिरणों के दल में कोई सिंह घुस आए तो वहाँ अराजकता फैल जाती है।'' सुदामा बोले, ''तुम अपनी बात को पुन: कहो। मैं उसे मन में सँजोकर रखूँगा।''
''जब भी कोई आकर यह कहे कि उसने वह जान लिया है, जिसे जानने के पश्चात् फिर कुछ जानना शेष नहीं रह जाता तो समझना कि वहाँ 'मैं' हूँ। 'मैं' उस घर में रहने आया हूँ। मेरा 'मैं' तो तुम समझ ही गए होगे।'' कृष्ण ने सुदामा को ऐसे देखा जैसे वे उसे वरदान दे चुके हों और पानेवाले को अपनी मुसकान के माध्यम से कह रहे हों कि इसके महत्त्व को समझना।
अश्वों ने अपनी गति धीमी कर ली थी। नारियल के वनों से पटा पड़ा था वह सागर-तट। नारियल वन से होता हुआ उनका रथ एक दुर्गम वन में प्रवेश कर गया। उस वन का एक-एक वृक्ष जैसे विभिन्न प्रकार की भयानक आकृतियों का निर्माण कर रहा था। उसमें एक विचित्र प्रकार की शांति थी। लगता था कि उस वन में कोई ऐसी शक्ति है, जो यह नहीं चाहती कि कोई उस वन में प्रवेश करे। सुदामा ने दृष्टि उठाकर ऊपर की ओर देखा तो लगा कि उनके ऊपर झुकी वृक्षों की शाखाएँ उनसे कह रही हैं कि जा बच गया। यदि श्रीकृष्ण तेरे साथ न होते तो हमने कब का तुझे खा लिया होता।
''वन की भयावह स्थिति पर विचार कर रहे हो क्या?''
सुदामा के मन में आया कि कहे कि 'क्या' लगाने की क्या आवश्यकता। जब तुम्हें ज्ञात ही है तो सीधे शब्दों में कहो। पर वे बोले नहीं। उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं...शब्द...शब्द...क्या 'शब्द' अब मेरी बाधा बन गए हैं? सहसा उन्हें लगा कि उनके मन में कृष्ण की आकृति प्रकट हुई। उन्होंने स्पष्ट रूप से उसको सुना। कृष्ण जैसे वन में किसी पर्वत के समान खड़े हैं और उससे कह रहे हैं कि सुदामा, तुम्हारी ऊर्जा शब्दों की खूँटी से ही बँधी पड़ी है। तुम्हारे पास शब्द-विलास के अतिरिक्त और है ही क्या! न कोई दिव्य अनुभव है और न आत्मबल। न तुम्हें आत्मा का पता, न परमात्मा का। एक शब्द सुन लिया—आत्मा। केवल शब्द। पर शब्द तो आत्मा नहीं है! जैसे कि लिखो आम या रंगों से आम का एक सुंदर चित्र बना दो। जो कि वास्तविक आम से कहीं अधिक स्वस्थ, आकर्षक और सुंदर दिखाई देगा। पर उस लिपिबद्ध शब्द में या चित्रण में न आम है, न सुगंध और न ही क्षुधा को शांत

करनेवाला मधुर रस। वहीं दूसरी ओर आम का वृक्ष है। वहाँ न शब्द है, न लिपि है, न रंग है। है तो केवल सुगंध और रस। तो सुदामा, रस को खोजो, क्योंकि मैं रस रूप हूँ।

सुदामा ने आँखें खोलीं। कृष्ण उनको वायु में लहराते किसी वस्त्र के समान दिखाई दिए।

''कृष्ण! यह वन तो नि:शब्द का प्रतिरूप लगता है। वन का अर्थ ही होता है, जिसमें अनेक जीव-जंतुओं का शब्द हो। किंतु यह तो अपवाद है।'' सुदामा ने सामान्य होने के लिए चर्चा को नूतन दिशा दी।

''इस स्थान पर अनेक विषाक्त सरीसृपों के होने का लोकापवाद प्रचलित है। कुछ लोगों ने इस स्थान का नामकरण प्रेत-वन के नाम से कर दिया। यही दुष्प्रचार उस क्षेत्र के लिए वरदान सिद्‍ध हुआ। अत: इस ओर कोई मुँह भी नहीं करता। केवल दुर्लभ औषधि के खोजी और साधकों को ही यह वन प्रवेश की अनुमति देता है।'' कृष्ण ने अंधकार से पूर्ण वन को निहारते हुए सुदामा से कहा।

''तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे यह वन कोई जीवित और बुद्‍धिमान व्यक्ति हो।''

''यह जीवित से कहीं अधिक है।'' कृष्ण ने अपना किरीट उतार दिया। उनके घुँघराले केश उनके कंधों पर फैल गए। ऐसा लग रहा था जैसे उस वन के भयानक कृष्ण सर्प इस कृष्ण के कुंतल बन गए हों और उनके फन वायु में लहरा रहे हों।

''ये वैसे ही जीवित हैं जैसे...''

''कहो, रुक क्यों गए शब्दों के साधक? 'जैसे' को पूरा तो करो।'' कृष्ण वन के वृक्षों को ऐसे देख रहे थे जैसे वे द्‍वारका के राजपथ से जा रहे हों और उनको चाहनेवाली प्रजा उनका अभिवादन करने के लिए मार्ग के दोनों ओर खड़ी हो।

''...जैसे का उदाहरण किसी का ह्रदय आहत कर देगा।''

''मैं तो अनाहत हूँ। शेष बचे मेरे अश्‍व रूपी मित्र, तो तुम उनकी चिंता मत करो। वे तुम्हें अपना मित्र मान चुके हैं।''

सुदामा यह स्पष्‍ट अनुभव कर रहे थे कि कृष्ण उनको वह दिखा रहे हैं, जो दुर्लभ है। वे यही कहना-पूछना चाह रहे थे कि क्या ये वन वैसे ही जीवित हैं जैसे उनके अश्‍व। और कृष्ण ने अश्‍वों का ही नाम लिया। क्या ऐसी भी कोई सत्ता है, कोई जगत् है जो इन आँखों से देखा नहीं जा सकता? क्या ऐसी कोई ऊर्जा है, जो सतत बह रही है और हम उसको अनुभव नहीं कर पा रहे? क्या ऐसी कोई स्थिति है, जहाँ सब थम जाता है? वे संसार को देखते हैं और अपने ज्ञान को देखते है तो लगता हैं कि ऐसा कुछ भी नहीं है। वे कृष्ण की ओर देखते हैं तो उन्हें स्पष्‍ट दिखता है कि वह तो जी ही कहीं और रहा है। वह है यहाँ का, भाषा भी यहीं की बोलता है; किंतु उनमें निहित अर्थ इस जगत् के नहीं हैं।

अश्‍वों ने रथ को एक ओर मोड़ दिया। गुफा के विशाल मुख के समान सामने भगवान् सूर्य सागर में से स्नान कर आते किसी संन्यासी के समान दिखाई दे रहे थे। उनकी किरणें उस स्थान पर किसी सोपान के समान दिखाई दे रही थीं । उनको देखकर सुदामा का मन हुआ कि उन पर चढ़कर वे दौड़ते हुए कुछ ही देर में भगवान् सूर्य के चरण-स्पर्श कर सकते हैं। वे सागर की अथाह जलराशि को देखकर मंत्रमुग्ध हो गए। उन्होंने सागर के विषय में सुना था, पढ़ा था और विचार किया था। वे विचारों में सागर की कल्पना नदी से दस गुना रूप में करते थे। पर आज जब सागर से उनका साक्षात्कार हुआ तो उनकी कल्पना लुप्त हो गई। जब तत्त्व प्रत्यक्ष हो तो कल्पना का क्या औचित्य? सत्य ही तो कह रहा था कृष्ण कि किसी भी तत्त्व का लिपिबद्‍ध या चित्रित होना वह नहीं है, जो वह है।

वह तो उसके विषय में एक सूचना मात्र है। सूचना अनुभव हो ही कैसे सकती है। उन्होंने 'सागर' शब्द पढ़ा था, सागर का चित्र भी देखा था; पर उन दोनों ही सूचनाओं से उनका हृदय आह्लादित नहीं हुआ था। इस समय वे सागर के सम्मुख हैं। न केवल सम्मुख हैं वरन् अभिभूत हैं। उनका हृदय सागर की विराट्ता को बारंबार नमन कर रहा है। उनका मन सागर की गोद में लोट-लोट जाने का कर रहा है। वे सागर के वक्ष पर पदाति चलना चाह रहे हैं। 'सागर' शब्द को पढ़कर या उसके चित्र को देखकर तो उनके मन में ये तरंगें नहीं उठी थीं। ओह! कृष्ण, तुम सागर के समान ज्ञान का अक्षत भंडार हो। तुम मुझे अपने सान्निध्य में वह दे रहे हो, जो मैं जन्मों-जन्मों की ज्ञान-साधना के पश्चात् भी प्राप्त नहीं कर सकता था। पर ऐसा क्यों होता है कि हम अपना विकास स्वयं नहीं कर पाते? यदि कृष्ण मुझे यह सब ज्ञान नहीं देता तो मैं इससे वंचित ही रहता। कृष्ण के बिना मैं इसे क्यों नहीं पा सकता? तभी सुदामा को लगा कि उनके अंतस में कृष्ण की वाणी गूँजी है—'बिन गुरु ज्ञान कहाँ से पाओगे, सुदामा? गुरु तो चाहिए ही न!'

''तुम्हारा गुरु कौन है?'' सुदामा के स्वर ने तत्काल कृष्ण की वाणी से पूछ लिया।

''आत्मा में सारा ज्ञान निहित है। यदि तुम अपनी आत्मा को जाग्रत् कर सको और उसे अपना गुरु बना सको तो फिर मानो तुमने कल्पतरु पा लिया।'' कृष्ण की वाणी सुदामा के मन में गूँज उठी, ''परंतु आत्मा का जागरण भी समाधि घटने पर होता है। समाधि में सब समाधान छिपे हैं।''

''और समाधि कैसे घटे?'' सुदामा ने पूछा।

''समाधि घटने का कोई स्थायी नियम नहीं है। वह कभी भी और कहीं भी घट सकती है। समाधि घटने का अर्थ है विराट के साथ एकरूप हो जाना, उसमें विलीन हो जाना, उसमें समा जाना।''

सुदामा यह अनुभव कर रहे थे कि इतना तो निश्चित है कि ये उत्तर उनके मन का कल्पित कृष्ण नहीं दे रहा है। तो क्या कृष्ण के पास ऐसी भी कोई शक्ति है जिसके माध्यम से वह बिना अपने अधरों को हिलाए किसी के भी मन में उठते प्रश्नों के बीच जाकर संवाद कर सके। अभी तक उन्होंने कृष्ण को जितना अनुभव किया, उसके अनुसार तो कृष्ण एक विराट पुरुष हैं जिनमें न जाने कितना कुछ समाया हुआ है।...सुदामा को अघोरी का कथन भी स्मरण हो आया । उसने बताया था कि वह जो जानता है, वह तो कृष्ण के चरणों के नखों की रज भी नहीं है। तो कृष्ण कितना विराट हैं! कृष्ण के विराट रूप के विषय में सोचते ही उनका सिर भन्नाने लगा। एक भंभीरी उनके मस्तिष्क में बजने लगी, जो संभवत: इस बात की चेतावनी दे रही थी कि यदि इस विषय पर और सोचा तो हो सकता है, तनाव के भार के अतिरेक के कारण उनके मस्तिष्क की कोशिकाओं में विस्फोट ही हो जाए।

रथ रुक गया। कृष्ण नीचे उतरे और फिर उन्होंने सुदामा को रथ से उतरने में सहयोग करने हेतु अपना हाथ बढ़ा दिया। सुदामा उतरने के प्रयास में लड़खड़ाए। उनको लगा कि वे इतने असंतुलित हो गए हैं कि अब गिरना निश्चित ही है। पर कृष्ण ने उनको आगे बढ़ इतनी कोमलता से थाम लिया कि सुदामा का गिरना उनका आनंद बन गया।

''ध्यान से गिरो, सुदामा!'' कृष्ण ने सुदामा को भूमि पर खड़ा करते हुए कहा।

''यदि ध्यान ही रहा तो मनुष्य गिरेगा ही क्यों?'' सुदामा को लगा कि उन्होंने बहुत समय बाद कुछ ऐसा कहा है, जो अकाट्य है। अब की बार कृष्ण उनकी इस बात को काट नहीं सकते।

''ये दोनों सर्वथा भिन्न बातें हैं—गिरना अलग है और ध्यान अलग है।'' कृष्ण बाईं ओर दिखाई दे रहे एक विशाल कुटीर की ओर बढ़ गए। कुटीर के चारों ओर एक घेरा बना हुआ था। प्रवेश-द्वार मोटे बाँस का बना था। बाहर बैठने के लिए बाँस की कलात्मक तिपाइयाँ और चौपाइया बनी हुई थीं। उन पर बाँस का ही बना छत्र था। ऐसा

लगता था जैसे किसी चित्रकार ने इस निर्जन और भयावह वन में एक मनमोहक चित्र बना दिया हो।
''भयानक वन के और सिंह के समान गर्जन करते सागर के मध्य ऐसा सुंदर स्थान भी हो सकता है, यह कल्पना से परे की बात है।'' सुदामा उस स्थान के सौंदर्य से प्रभावित होकर बोले।
''जो लोग मरुभूमि में यात्रा करते हैं, उनका कहना है कि जब कभी उनके सामने मरुद्यान प्रकट होता है तो वे यही सोचते रह जाते हैं कि सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में यह यहाँ है कैसे? वे उसका उत्स नहीं खोज पाते। वे उसका रहस्य नहीं जान पाते। वे तो बस विस्मय से भर जाते हैं इस अनहोनी को देखकर। जहाँ सूर्य का ताप सबकुछ भस्मीभूत करने को उद्यत है वहाँ सुगंधित सुकोमल सुंदर पुष्प हैं, रसीले शक्तिवर्धक मधुर फल हैं और क्लांति को हर लेनेवाला सुशीतल जलाशय है। कैसे है? यही विस्मय है, यही रहस्य है। पर वह है।'' कृष्ण एक बड़ी चौपाई पर विश्राम की मुद्रा में लेट गए।
सुदामा भी एक चौकी पर बैठ गए।
मौन घिर आया।
''वह ध्यान और गिरना सर्वथा भिन्न बातें कैसे हैं?'' सुदामा ने उस अल्पकालिक मौन को भंग किया।
कृष्ण कुछ नहीं बोले, सागर की ओर देखते रहे। सुदामा को लगा कि हो सकता है, अपनी आत्मलीनता के कारण कृष्ण ने उनका प्रश्न सुना ही न हो। उन्होंने कृष्ण की ओर देखा। कृष्ण की दृष्टि सागर पर टिकी थी, पर लग रहा था कि वे सागर से पार कहीं कुछ और देख रही हैं। सुदामा ने उनकी तल्लीनता को भंग करना उचित नहीं समझा।
''गिरना और ध्यान को इस प्रकार समझो।'' क्षणिक मौन के पश्चात् कृष्ण बोले।
सुदामा को समझ नहीं आया कि कृष्ण के कितने रूप हैं। ये उनके साथ हैं, वनों के साथ हैं, सागर के साथ हैं, अश्वों के साथ हैं या अपने साथ हैं।
''मैं सबके साथ हूँ, सुदामा! क्योंकि सब मुझमें हैं।'' सुदामा के मन में कृष्ण मुसकराते हुए प्रकट हुए।
सुदामा समझ नहीं पाए कि कृष्ण का काल्पनिक स्वर उनके मन में उठा था या उनके मन की बात जानकर कृष्ण ही प्रकट हो गए थे। सुदामा ने कृष्ण की ओर देखा। वह किसी समाधिस्थ योगी के समान अधलेटी मुद्रा में लीला कर रहे थे। वह उसके प्रश्नों के उत्तर अनेक कलाओं के माध्यम से दे रहे हैं। कभी प्रत्यक्ष बोलकर तो कभी उसके मन में प्रकट होकर। यह तो छलिया ही है। ऐसे छलता है कि मति मारी जाए। सुदामा को कृष्ण का वह वचन भी स्मरण हो आया, जिसमें उन्होंने कहा था कि जो मुझे पे्रमपूर्वक स्मरण करते हैं, भजते हैं, मैं उनके लिए हृदय में चिन्मय रूप में वास करता हूँ। उनकी पे्रम-समाधि मुझे उनके चित्त में प्रकट कर देती है। काल का अंतराल उसमें कोई बाधा नहीं डालता।
''यदि ध्यान से च्युत हुए तो यह नहीं जान पाओगे कि जो घटा वह सत्य था अथवा भ्रम।'' कृष्ण अपनी उसी आत्मलीन अवस्था से बोल रहे थे, ''ध्यान से चूकना अचेत अवस्था में भ्रमण करना है। यदि मैं तुमसे कहूँ कि सुदामा जब भी मरना, ध्यान से मरना तो तुम इससे क्या समझोगे?'' उन्होंने सुदामा की ओर देखा। सुदामा को कोई उत्तर न देता देख वे बोले, ''क्या तुम तब यह कहोगे कि यदि ध्यान ही रहा तो मनुष्य मरेगा क्यों?''
''नहीं।'' सुदामा बोल उठे।
''परंतु अभी तो तुमने कहा कि यदि ध्यान ही रहा तो मनुष्य गिरेगा क्यों? तुम्हारे इस समीकरण के अनुसार तो यदि ध्यान ही रहा तो मनुष्य मरेगा क्यों होना चाहिए।'' कृष्ण ने अर्धलेटी स्थिति में अपने बाएँ पैर को मोड़ा और उसके घुटने के पास अपना दायाँ पैर मोड़कर टिका दिया। इस समय वे परम विश्राम की-सी मुद्रा में आ गए थे।

''पर ऐसा है नहीं। मनुष्य लाख ध्यान में रहे, पर वह मरता है।'' सुदामा बोले, ''इसी प्रकार यह हुआ कि चाहे कितना भी ध्यान में रहो, फिर भी मनुष्य गिरता है। किंतु उसे ध्यान से गिरना चाहिए।...पर ध्यान से कैसे गिरे? ध्यान से कैसे मरे?'' सुदामा जैसे खीज उठे, ''तुम जाने क्या कह देते हो कि कुछ समझ नहीं आता। यह समझ नहीं आता कि सत्य है क्या? वह सत्य जो तुम समझ रहे हो, मैं क्यों नहीं समझ पा रहा हूँ?''

''अभी तुमको समझा देता हूँ।'' कृष्ण हँसे, ''मेरी बातों के उत्तर देते चलना।...यह बताओ कि जब मैं कुछ समझाता हूँ तो उसे समझने का कार्य कौन करता है?''

''बुद्धि।'' सुदामा ने आत्मविश्वास के साथ कहा।

''किसकी बुद्धि?''

''मेरी बुद्धि, सुदामा की बुद्धि!'' सुदामा के स्वर का आश्चर्य कह रहा था कि कृष्ण, तुम भी कैसे बचकाने प्रश्न पूछ रहे हो।

''और सुदामा की बुद्धि कितना जानती है?''

''जितना सुदामा जानता है।''

''तो यह तय हुआ कि तुम्हारा जानना तुम्हारी बुद्धि का जानना है अथवा तुम्हारी बुद्धि का जानना तुम्हारा जानना है।'' कृष्ण ने कनखियों से सुदामा की ओर देखा और मुसकराकर बोले, ''जो तुम्हारी बुद्धि नहीं जानती या जो तुम नहीं जानते, उसे तुम्हारी बुद्धि कैसे जानेगी? जिस भाषा से तुम्हारी बुद्धि का परिचय है, उसके शब्दों के आते ही वह तुम्हारे सामने उसके अर्थ उघाड़ती चलती है और जिस भाषा को तुम नहीं जानते, यदि उस भाषा का एक भी शब्द तुमसे कहा जाए तो तुम्हारी बुद्धि तुम्हें कुछ भी जानकारी नहीं दे पाएगी। तो तुम जितने हो, उससे बड़े कैसे हो सकते हो? जाननेवाले तो तुम ही हो न? अपने होने से अधिक तुम कैसे जान सकते हो? तुम्हारी उपलब्ध अधिकतम जानकारी से अधिक जो कुछ भी तुम्हें दिया जाएगा; तुम्हारी बुद्धि उसका वमन कर देगी। वह उसके भार तले दबने लगेगी। एक बालक एक मल्ल के समान भार कैसे उठा सकता है? खूँटे से बँधा पशु एक परिधि में ही चर सकता है। उसमें और राजहंसों के विचरने में आकाश-पाताल का भेद है।''

'देख ले सुदामा! कृष्ण तुझे खूँटे से बँधा पशु कह गया और स्वयं को राजहंस। तुझ पंडित को बद्धपशु कह रहा है और अपने अश्वों को पशु भी नहीं कहने देता।' सुदामा के अहंकार की बांबी से एक सर्प फुफकारता हुआ निकला।

'कृष्ण यह सब मुझे समझाने के लिए उदाहरण-स्वरूप कर रहा है। और यदि वह मुझे खूँटे से बँधा पशु कह रहा है और स्वयं को राजहंस तो इसमें वह असत्य तो कुछ भी नहीं कह रहा। आज मैं स्वयं यह अनुभव कर रहा हूँ कि मैं निपट ज्ञान से भरे एक खूँटे से ही तो बँधा हुआ हूँ और यह कृष्ण राजहंसों के समान सभी दिव्य लोकों में विहरता है।'' सुदामा ने देखा कि वह सर्प चीत्कारता हुआ भागकर उसी बांबी में ऐसे घुस गया जैसे सुदामा ने उसे कुछ शब्द न कहकर लाठी से खूब पीट दिया हो और वह लहूलुहान हो अपने प्राण बचाकर भागा हो।

''अपने वामन रूप को विराट कैसे बनाया जाए?'' सुदामा ने जिज्ञासा की।

''अपने 'स्व' का विस्तार करके।''

'' 'स्व' का विस्तार कैसे हो?''

''ध्यान से।''

''ध्यान कैसे हो?''

''ध्यानी के संग से।''

''ध्यानी कहाँ मिलेगा?''

''ध्यान की खोज से।'' कृष्ण मुसकराए।

''तुम इतना उलझाते क्यों हो?'' सुदामा की बुद्धि खीज उठी।

''तुम इतना उलझते क्यों हो?'' कृष्ण हँसे। उन्होंने सुदामा की ओर देखा।

सुदामा का मुख स्पष्ट रूप से कह रहा था कि कृष्ण, तुमसे तो बात करना ही अपनी बुद्धि का सर्वनाश करना है।

''अच्छा, रुष्ट मत होओ और एक बात बताओ कि तुमने अपने ज्ञान का विस्तार कैसे किया? तुमने छोड़ो, तुम्हारे पिता ने अपने ज्ञान का विस्तार कैसे किया?'' सुदामा की ओर से उत्तर न मिलने पर कृष्ण समझ गए कि वह अभी भी रूठे हुए हैं। वे स्वयं ही उस बात का उत्तर देते हुए बोले, ''वे ज्ञान पाने के लिए ज्ञानियों की खोज में भटकते रहे। तुम्हें भी इस यात्रा में साथ-साथ भटकाते रहे। परिणाम क्या हुआ? तुम गुरु संदीपनि के द्वारा स्वीकृत हुए और तुमने ज्ञान पाया। ज्ञानियों को खोजा, ज्ञान पाया। ध्यानियों को खोजो, ध्यान पाओगे। ध्यान के पश्चात् जो ज्ञान पाओगे, वह तुम्हारा अनुभवजन्य ज्ञान होगा। शब्द वही होंगे, पर उनकी आत्मा भिन्न होगी, उनका संगीत भिन्न होगा। वाद्य-यंत्र वही होता है, किंतु उसको छूनेवाले हाथ यदि अपरिचित हों तो उसमें से केवल असंगत ध्वनियाँ ही निकलेंगी और यदि उसे कोई सिद्ध छुएगा तो उन ध्वनियों में एक संगति होगी, उसमें से जो झरेगा वह संगीत कहा जाएगा। इसलिए सुदामा, अपने जीवन में ध्यान का संगीत पैदा करो। अपनी बात की पुनरावृत्ति करता हूँ कि ध्यानियों का संग करो।''

तभी कृष्ण कुछ देखते हुए उठ गए। सुदामा की भी जिज्ञासा ने उनको उठा दिया। वे जानना चाह रहे थे कि कृष्ण क्या देखकर उठे हैं। उन्होंने देखा कि सागर में एक विशाल नौका प्रकट हुई और उसमें से एक छोटी नौका उतरी। वह नौका उनकी दिशा में बढ़ने लगी। कुछ ही देर में वह नौका उनके निकट से होती हुई सागर के भीतर तक जाते हुए काठ के एक कृत्रिम घाट पर जाकर रुक गई।

''आओ, सागर के हृदय में समा जाएँ।'' कृष्ण ने सुदामा का हाथ थामा और किसी बालक के समान उन्हें खींचते हुए दौड़ने लगे। नाव में दो बलिष्ठ सशस्त्र नाविक थे। उन्होंने श्रद्धापूर्वक कृष्ण को नमस्कार किया। कृष्ण ने सुदामा का हाथ पकड़कर उनको नौका में उतारा। नौका चल दी। सुदामा ने अनेक नौकाएँ देखी थीं। सब साधारण और एक जैसी। कृष्ण के साथ रहकर सुदामा जो कुछ भी देख रहे हैं, वह अनूठा है। सहसा उनके मन को एक कृष्ण के द्वारा दिए एक सूत्र का उत्तर सिरा मिला, जिसमें वे बैठे हैं। उसका नाम भी नौका है और उन्होंने अपने आस-पास की जिन नदियों में चलते देखा है, वे भी नौका होती हैं। दोनों के लिए एक ही शब्द है—नौका। परंतु दोनों की आत्मा कितनी भिन्न है। यह नौका अपने होने में एक गरिमा, वैभव और तिरा ले जाने का आश्वासन लिये है। शब्द एक ही है, परंतु दोनों का गुणात्मक भेद अपार है।

सागर की उत्ताल तरंगों को चीरती वह नौका सागर के वक्ष पर चढ़ती जा रही थी। सुदामा ने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि वे कभी सागर पर भी चलेंगे। यह सब तो उनको बिन माँगे, बिन सोचे मिल रहा है। परमात्मा उन पर बड़ा कृपालु है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि वह उनको देख रहा है, उनको थामे हुए है। सुदामा ने एक विहंगम दृष्टि अपने विगत जीवन की यात्रा पर डाली। उन्होंने अनुभव किया कि प्रत्येक क्षण परमात्मा उनके साथ रहा है। यह बात अलग है कि उन्होंने कभी उसकी उपस्थिति को अनुभव करने का प्रयास नहीं किया।

उनकी नौका एक विशाल जलपोत के निकट रुकी। जलपोत से लकड़ी का एक सोपान उनकी नौका से आकर सट गया और वे उस पर चढ़ते चले गए।

जलपोत पर आकर सुदामा को लगा कि वे जो देख रहे हैं वह सृजन-शक्ति का चमत्कार ही है। जलपोत पर भूमि के समान आश्रम स्थापित था। ऐसा लगता था मानो यह जलयान न होकर कोई तैरता हुआ द्वीप हो और उस पर अनेक कुटीर बने हुए थे तथा फूलों की क्यारियों से वे कुटीर घिरे हुए थे। सबकुछ था वहाँ—हरियाली, कुटीर, हिरण, मोर, बिल्ली, कुत्ते, गिलहरी और वल्कल वस्त्रों को धारण किए तथा अपने-अपने कार्य में लीन ब्रह्मचारी एवं आचार्य।

सुदामा ने कृष्ण की ओर देखा। कृष्ण ने सुदामा को कुशा की बनी एक छतरी के नीचे लगी चौकियों पर बैठने के लिए कहा। उन्होंने ब्रह्मचारियों को कुछ कहा और चले गए।

सुदामा देखते रहे कि कृष्ण ऊँचे स्थान पर बनी एक विशाल कुटिया के बाहर बैठे एक संन्यासी के पास जाकर रुक गए।

''योगेश्वर श्रीकृष्ण अभी आते हैं। तब तक आप फलाहार ग्रहण करें।'' ब्रह्मचारियों ने अनेक प्रकार के फल सुदामा के सम्मुख रख दिए। फल अपने रसीले, मधुर और पौष्टिक होने की कथा स्वयं कह रहे थे। सुदामा ने पेट और मन भरकर फलाहार किया। उन्होंने इस बात की चिंता नहीं की कि उनको ताकते ये ब्रह्मचारी उनके विषय में क्या सोच रहे होंगे।

''क्या आप मुझे यह बताएँगे कि श्रीकृष्ण योगियों के ईश्वर किस प्रकार हैं?'' सुदामा ने बिना किसी चेतावनी के आक्रमण कर दिया।

अनपेक्षित प्रश्न को सुनकर सुदामा के आस-पास खड़े पाँचों ब्रह्मचारी एक-दूसरे का मुख देखने लगे। संभवत: उनको यह अपेक्षा नहीं थी कि कृष्ण के साथ इस गोपनीय यात्रा में उनके साथ आनेवाला व्यक्ति श्रीकृष्ण के महत्त्व से अनभिज्ञ होगा।

''मैं आप सभी से ही पूछ रहा हूँ।'' सुदामा ने जैसे उनको उत्तर देने के लिए बाध्य किया।

''सुदामाजी, पृथ्वी पर ऐसा कोई पक्षी नहीं हुआ जिसने आकाश का छोर छूने का प्रयास किया हो।'' प्रमुख दिख रहे ब्रह्मचारी ने नतमस्तक हो कहा, ''पक्षी इसी में संतुष्ट होते हैं कि आकाश उनको अपने वक्ष पर विचरने की अनुमति दे रहा है।''

सुदामा अपने ज्ञान के बल पर इन सरल ब्रह्मचारियों पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाह रहे थे। परंतु उनके उत्तर के एक ही बाण से उनका ज्ञान रूपी पक्षी बिंध गया और मुँह के बल उस जलयान पर आ गिरा।

''सुदामा!'' कृष्ण ने स्तब्ध हुए सुदामा को पुकारा।

सुदामा ने देखा कि कृष्ण उनके सामने प्रसन्नमुख मुद्रा सहित खड़े हैं।

''जाओ और उन महात्मा से जाकर जो माँगना हो, माँग लो।''

सुदामा ने देखा कि कृष्ण ने उसी महात्मा की ओर संकेत किया, जिससे अभी वह मिलकर आए हैं। इतना तो वे समझ ही चुके थे कि वे कोई असाधारण महात्मा हैं।

''मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ सुदामा, कि तुम उनसे जो माँगोगे, वह मिलेगा। जाओ और समय नष्ट मत करो।''

कृष्ण की वाणी में छिपे आदेश अथवा धक्के की उपेक्षा वे नहीं कर पाए। उनकी स्थिति तो ऐसी हो गई थी कि जैसे कृष्ण ने उनको किसी वरदान रूपी सरोवर में धक्का दे दिया हो। अब उस जल में उनको हाथ-पैर मारने ही होंगे।

सुदामा किसी सम्मोहन में बँधे उन महात्मा के सम्मुख पहुँचे। वे ऐसे थे जैसे कि कोई विशाल वट वृक्ष। उनके सिर से घुटनों तक आते लंबे केश, वक्षस्थल पर लहराती लंबी दाढ़ी, मुख का काला रंग—इन सभी बिंबों को देखकर कोई भी भय से अपनी आँखें भींच सकता है और उनके इसी रूप से बरसते अमृत का जो स्वाद अनुभव कर ले, उसकी भी परमानंद में आँखें मुँद जाएँ। उन पर लहराते श्वेत वस्त्र ऐसे लग रहे थे जैसे हिमालय पर उड़ते श्वेत मेघ।

''माँगो, क्या माँगते हो?''

सुदामा ने अनुभव की उन शब्दों में बहती विद्युत् धारा। वह साधारण वक्तव्य नहीं था, वह तो जैसे आकाशवाणी थी। उन्होंने भी कहा था कुम्हार को कि माँगो, क्या माँगते हो; किंतु कितना थोथा और निष्प्राण था उनका वह कहना।

''मैं कृष्ण की थाह पाना चाहता हूँ।'' सुदामा ने न कुछ सोचा और न समझा। वे तो बस कृष्ण को नापना चाह रहे थे।

महात्मा मुसकराते हुए सुदामा की ओर देखते रहे। सुदामा भी प्रसन्न हुए कि ऐसा प्रश्न पूछा कि महात्मा चारों दिशाओं चित।

'मूर्ख! वरदान को प्रश्न में खो रहा है। यहाँ भी ज्ञान-विलास में उलझ गया। धन नहीं माँग सकता था। माँग लेता इतना कि फिर दरिद्रता का मुख देखना ही न पड़ता।' सुदामा के मन में कोई स्वर चीखता हुआ उनको कोंच गया।

'ओह, यह मैंने क्या किया? मैं सुनहरे अवसरों से सदा चूक क्यों जाता हूँ?' सुदामा ने मन-ही-मन स्वयं को धिक्कारा।

'अब पुन: जीवन में ऐसा अवसर नहीं आएगा।' सुदामा को कोंचनेवाला स्वर प्रकट हुआ, 'बहुत हुआ तो यह महात्मा दर्शन बघारते हुए यह कह देगा कि कृष्ण अथाह है। बस हो गई बात समाप्त। जो वर तुमको धनवान् बना सकता था, उससे तुम और दरिद्र होकर लौटोगे। सत्य है कि दरिद्र होना तो कोई तुमसे सीखे। तुम एक काम करो कि एक विश्वविद्यालय की स्थापना करो और उसका मूल स्वर रखो—दरिद्र होना सीखें।'

''क्या आप यह वर नहीं दे सकते? यह आपके सामर्थ्य से बाहर है क्या?'' महात्मा को मौन देख सुदामा ने जैसे उनकी असमर्थता पर व्यंग्य किया।

''दे तो सकता हूँ, पर तुम्हारी पात्रता से अनंत गुना देना हो जाएगा वह। यह पाते ही तुम मिट जाओगे। फिर तुम नहीं रहोगे। तुम खो जाओगे अनंत में, समा जाओगे विराट में और फिर वही विराट हो जाओगे। ठीक वैसे जैसे बूँद सागर की थाह लेने चले और स्वयं को सागर में गिरा दे। एक बार वह सागर में गिरी तो फिर बूँद उस सागर में कहाँ खो जाएगी, यह उसको पता ही नहीं चलेगा। यदि तुम स्वयं को मिटा देने को तत्पर हो तो कहो। मैं तुम्हें कृष्ण की थाह दे दूँगा।''

महात्मा की बात सुनकर सुदामा डर गए। उनको रामदास की गति पता है और वह भी सुनाई दे रहा है, जो अघोरी ने कहा था कि उसने कुछ ऐसा देख लिया है, जो उसे नहीं देखना चाहिए था।

''नहीं, मैं अपने को बिना मिटाए कृष्ण की थाह चाहता हूँ।'' सुदामा धीरे से बोले।

''तो फिर अन्य वर माँग लो।'' महात्मा मुसकराए।

'रत्नाकर के वक्ष पर डोल रहा है। माँग ले मूर्ख रत्नों का अंबार!' सुदामा के मन में कोंचनेवाला स्वर प्रकट हो गया।

''तो फिर मुझे यह वर दीजिए कि कृष्ण का पे्रम, उनकी कृपा-दृष्टि मुझ पर सदा बनी रहे। कृष्ण मुझे कभी न

बिसराएँ।'' सुदामा ने जैसे अपने मन में उठते वासनाओं के प्रेतों के स्वरों के प्रति स्वयं को बहरा कर लिया।

''तथास्तु!'' महात्मा ने आशीर्वाद के रूप में सुदामा के सिर पर अपना हाथ रख दिया।

❑

आठ

बाल्य-काल में बलराम कृष्ण को बहुत सताते थे। उस सताने की पृष्ठभूमि में ईर्ष्या या द्वेष का तत्त्व नहीं था। वह तो बाल-सुलभ मनोविज्ञान का एक भाग था। बलराम ने सदा कृष्ण के प्रति बड़े भाई के रूप में अभिभावक की भूमिका निभाई। वे कृष्ण को देखे बिना व्याकुल हो जाते थे, कृष्ण की सुरक्षा के लिए सदा चिंतित रहते थे। जैसे-जैसे कृष्ण बड़े होते गए, वैसे-वैसे उनको एक बात समझ आने लगी कि कृष्ण उनसे बहुत अधिक बुद्धिमान और प्रतिभा-संपन्न हैं। नैसर्गिक रूप से उन्हें वह प्राप्त है, जिसे पाने के लिए मनुष्य के अनंत जन्म व्यय हो जाते हैं और तब जाकर उसकी आत्मा का कण मात्र विकास होता है। पर उसका कृष्ण तो जैसे विकसित आत्मा के साथ अवतरित हुआ था। शीघ्र ही बलराम को यह बात समझ आ गई कि उनमें शारीरिक शक्ति तो अपार है, परंतु किसी गंभीर स्थिति को लेकर निर्णय लेने का आत्मविश्वास उनमें नहीं है। इसके लिए वे प्राय: कृष्ण पर ही निर्भर रहने लगे थे। कभी अपने मन की करते और कृष्ण उनका विरोध नहीं करते तो वे मान लेते थे कि वे सही हैं। यदि कोई कार्य उनको प्रिय होता और कृष्ण उससे असहमत होते थे तो वे उससे तर्क-वितर्क करते थे और फिर बहुत जल्द ही वाद-विवाद में कृष्ण के सामने उनके पैर उखड़ जाते थे। फिर वे विवश हो कृष्ण की बात मान लेते थे। बाद में उन्होंने कृष्ण से तर्क-वितर्क करना भी एक प्रकार से छोड़ ही दिया। उनको अपने विवाह का वह प्रसंग जब भी स्मरण आता है तो वे अपने कान्हा की चंचलता पर मुसकराए बिना और बुद्धि का लोहा माने बिना नहीं रहते। उन्हें स्मरण है वह दिन। इस छलिया ने चुपके से आकर उनकी आँखों को अपनी अँगुलियों से ढक दिया था।

'बताओ, मैं कौन हूँ?' कृष्ण ने अपने स्वर को भयानक बनाते हुए पूछा था।

'आँखों से हाथ हटाओ तो बताऊँ। यह क्या बात हुई कि आँखों पर हाथ रख दो और फिर पूछो कि कौन है?' बलराम बोले, 'तुम जो भी हो, सामने आओ और यदि मैं तुम्हें जानता होऊँगा तो बता दूँगा कि तुम कौन हो और यदि नहीं जानता होऊँगा तो तुमसे तुम्हारा परिचय जानकर तुम्हें बता दूँगा कि तुम कौन हो?'

'हम तुम्हारे होनेवाले श्वसुर हैं।' कृष्ण ने अपनी हँसी रोकते हुए कहा।

'तो अपने श्वसुर को हम पटकनी देते हैं।' बलराम ने स्फूर्ति से पलटकर कृष्ण को पटका और उनकी छाती पर चढ़ बैठे। उसने मुष्टी-प्रहार के लिए हाथ उठाया।

'क्या करते हो, दाऊ! मैं हूँ तुम्हारा श्याम।' कृष्ण ने बलराम का प्रहार के लिए उठा हाथ रोकते हुए कहा।

'मैं जानता हूँ कि मेरा होनेवाला श्वसुर मेरे श्याम का वेश धारण कर आया है और अब उसकी भाषा भी बोल रहा है। अब तो मुझे अपने श्वसुर की सेवा-शुश्रूषा करनी ही पड़ेगी।' बलराम ने दो-तीन मुक्के कृष्ण के जमाए।

'देख लो, यदि और मारा तो जीवन भर ब्रह्मचारी का जीवन बिताना पड़ेगा। रेवती भाभी नहीं मिलेंगी।' कृष्ण ने जैसे बलराम को चेतावनी दी।

रेवती का नाम सुनते ही बलराम लज्जा से आरक्त हुआ अपना मुख छिपाने के लिए कृष्ण की छाती से उठकर झाँकी से बाहर की ओर देखते हुए बोले, 'जो मुँह में आए, सब बोलता रहता है।'

'मुँह में नहीं, जो हृदय में आए, वही बोलता हूँ।' कृष्ण उछलकर बलराम के सम्मुख आ गए। बलराम ने दूसरी दिशा में अपना मुख मोड़ लिया।

'पता नहीं तू किस रेवती की बात कर रहा है?' बलराम हकलाए।

‘उसकी, जिसके प्रति आप उसके सौंदर्य और बलवती होने की कीर्ति सुनकर अनुरक्त हो गए हैं—राजा रैवत की पुत्री।’

‘तुमसे यह सब किसने कहा?’ बलराम का मुख बता रहा था कि उनकी गोपनीयता पकड़ी गई है।

‘यह व्यर्थ का प्रश्न है।’ कृष्ण ने टोका।

‘तो सार्थक प्रश्न क्या है?’

‘यही कि यह बात सत्य है या असत्य?’

‘मैंने...मेरी रुचि...तुम ये निराधार बातें कहाँ से ले आते हो?’ बलराम को समझ नहीं आ रहा था कि वे कृष्ण को क्या उत्तर दें।

‘ठीक है, मैं जा रहा हूँ आपके कभी न होनेवाले श्वसुर राजा रैवत के पास और उनको कह दूँगा कि मेरे अग्रज बलराम के भरोसे न रहें। वे अपनी रेवती का विवाह कहीं और कर दें; क्योंकि रेवती के साथ उनका संयोग होना निराधार बात है। मैं जा रहा हूँ। तब तक आप द्वारका का निर्माण कार्य देखें। आप जानते हैं कि मैं न तो परिहास में ऐसी बात करता हूँ और न ही किसी प्रकार का संकोच करता हूँ। बाद में मुझसे मत कहना कि यह क्या कर आए, श्याम!’

बलराम ने देखा कि कृष्ण तेजी से मुड़े और द्वार की ओर बढ़ गए।

‘श्यामसुंदर रुको।’ बलराम का स्वर व्याकुल था। वे जानते हैं कृष्ण को। इसके लिए कुछ भी असहज नहीं है। कोई अन्य हो तो वे यह मान भी ले कि यों ही कह गया। पर यह कृष्ण तो...

‘हम आपके वे श्वसुर हैं, जिनको आपने पीटा था, अत: हमें श्यामसुंदरजी कहें।’ कृष्ण ने अपनी हँसी रोकी।

‘रुक जाओ, हमारे श्यामसुंदरजी!’ बलराम ने पुकारा।

‘अब ठीक है।’ कृष्ण बलराम की ओर बढ़े, ‘अब बताइए, यह सत्य है या लोकापवाद?’

‘तुम जब किसी बात को कहते हो तो उसमें बताने जैसा कुछ नहीं होता, केवल स्वीकार करना होता है।’

‘तो आप स्वीकार करते हैं?’ कृष्ण ने अपनी तर्जनी बलराम की ओर करके पूछा।

‘मेरा मन व्याकुल हो रहा है, श्याम।’ बलराम गंभीर हो गए।

‘यह सोचकर कि कहीं रेवती को कोई और हर कर न ले जाए।’

‘नहीं, यह सोचकर कि कहीं मेरे जीवन में कोई ऐसी स्त्री न आ जाए, जो हम भाइयों के पे्रम में बाधा उत्पन्न करे। हममें वैर और द्वेष पैदा कर दे। मैं यही सब सोचकर रह जाता हूँ।’

‘तो मैं जाकर पूछ आता हूँ कि हे रैवत-पुत्री रेवती! तुम मुझे बताओ कि यदि बलराम तुमसे विवाह करें तो क्या तुम मुझसे ईर्ष्या कर हम भाइयों में वैर तो नहीं ठनवा दोगी; क्योंकि दाऊ अपने श्याम से बहुत पे्रम करते हैं। आपको यह न लगे कि आपका पति परिवार के अन्य सदस्यों को प्रेम क्यों बाँट रहा है। उसका प्रेम तो आपकी बपौती है।’

‘तुमसे कोई कैसे बात करे श्याम!’ बलराम खीजे, ‘किसी भी बात को गंभीरता से नहीं लेते हो।’

‘गंभीरता हताश लोगों के लिए घाव है और शुष्क लोगों के लिए आभूषण। परंतु मैं तो सदा उत्सव में रहता हूँ। उत्सव में कैसी गंभीरता!’ कृष्ण के मुख पर प्रसन्नता नाच रही थी।

‘मेरी समस्या का हल क्या हो सकता है?’ बलराम का स्वर चिंतित था।

‘हलधर की समस्या का हल खोजो दिशाओ!’ कृष्ण ने आकाश की ओर अपने हाथ उठा दिए।

‘देख श्याम, मुझे तो नारियों की समझ है ही नहीं। तू तो रहा ही सदा गोपियों के साथ है। तूने उनको अपने संकेतों

पर नचाया है। मुझसे तो कोई स्त्री मार्ग भी पूछ ले तो मेरे हाथ-पैर फूल जाते हैं। योद्धा चाहे पचास आ जाएँ, सभी को धूल में मिला दूँ।'

'शांति...शांति...शांति।' कृष्ण ने गंभीर होने का अभिनय किया, 'आप क्या चाहते हैं? अपने मन को मेरे सामने स्पष्ट करें।'

'मैं चाहता हूँ कि तुम किसी प्रकार एक बार रेवती से मिलने का योग बनाओ। तुम्हारी पारखी दृष्टि से कुछ भी छिपा नहीं रह सकता। तुम यदि अनुमति दोगे तो ही मैं इस विषय में सोचूँगा।'

'अर्थात् यदि कल को रेवती के कारण कुछ कलह हुआ तो आप मुझ पर सारा दायित्व डालने के लिए स्वतंत्र होंगे कि मेरे हस्ताक्षर के बाद ही आपने रेवती से विवाह किया।' कृष्ण ने तिरछी भौहें करके बलराम की ओर देखा, 'विवाह आप करें और शिव के समान विषपान मैं करूँ।'

'यही तो मैं चाहता हूँ कि यदि भविष्य में कोई पारिवारिक कलह हो तो संकट में तुम पड़ो। मैं बौद्धिक व्यायाम नहीं कर सकता। यदि कुछ अनुचित हुआ तो मैं कहूँगा कि श्याम से बात करो। मैंने तो उसकी अनुमति से विवाह किया था। आप जानें और श्याम जाने।' बलराम मुसकराए।

'तो सब मुझ पर छोड़ते हैं?' कृष्ण ने जैसे सावधान किया।

'अब तक सब तुझ पर ही तो छोड़ा है। तेरी ही तो सारी बातें मानता आया हूँ। कभी अपने मन की करनी भी चाही तो तूने उसे धर्मसम्मत न कहकर करने नहीं दिया। अब जो तू उचित समझे, कर।' बलराम ने कृष्ण को जैसे डाँटा।

बलराम तो समझे थे कि कृष्ण माता-पिता से इस बात की चर्चा करेगा और उनके पिता राजा रैवत तक अपना संदेश भिजवाएँगे। पर कृष्ण तो माता-पिता को सूचना मात्र देकर तुरंत राजा रैवत से मिलने चल दिया और जब लौटे तो उनके हाथ में मिष्टान्न की टोकरी थी। वह सभी का मुँह मीठा कर रहे थे। अनेक यादव महानुभाव जब बलराम को बधाई देने आए तो उन्हें ज्ञात हुआ कि कृष्ण रेवती से उनके विवाह की बात पक्की भी कर आए हैं।

''तू यह कैसी लीला करता है, श्याम?'' बलराम समझ नहीं पा रहे थे कि वे लज्जाए हुए थे अथवा घबराए हुए।

''आप निश्चिंत रहें, दाऊ! इस धरा धाम में रेवती आपके लिए ही अवतरित हुई हैं।'' यह कहते ही कृष्ण ने एक पूरा मोदक बलराम के मुँह में डाल दिया। बलराम हुँ...हुँ करते रहे और कृष्ण ने मिष्टान्न का टोकरा उनको थमाते हुए कहा, ''जाइए, मैया और बाबा से आशीर्वाद लीजिए।''

वे कृष्ण के आत्मविश्वास से चकित थे। माँ-बाबा भी कृष्ण के परामर्श का अनुकरण करते थे। लगता था कि कृष्ण के होते किसी को अपनी बुद्धि का भरोसा ही नहीं रह गया था। वह कुलवृद्ध हो गए थे और कुलवृद्ध जैसे अपने दायित्वों से मुक्त होकर पुन: बालरूप हो गए थे।

बहुत समय से कृष्ण ने बलराम को स्वतंत्र छोड़ दिया था। उनको ज्ञात होता था कि उनके किस कार्य का अनुमोदन कृष्ण नहीं करेंगे, इसलिए वे उन कार्यों को कृष्ण से छिपाकर करने लगे थे। अनेक बार उन्हें यह पता भी लग गया कि कृष्ण को उनके छिपा कर किए गए कार्यों की सूचना मिल गई है। वे कृष्ण से उसके संबंध में लंबा उपदेश सुनने और उन कार्यों को त्याग देने के लिए तैयार भी रहे। परंतु मिलने पर कृष्ण ने उनसे उस संबंध में कोई चर्चा नहीं की।...और आज कृष्ण ने स्पष्ट कह दिया कि उसने उनके निर्णयों में हस्तक्षेप करना बंद कर दिया है। क्या कृष्ण को उन्होंने अपने व्यवहार से निराश किया है? बलराम का मन व्याकुल हो गया। उनके लिए कृष्ण के द्वारा उनकी उपेक्षा असहनीय पीड़ा की जननी थी। उनको यह सह्य नहीं था कि कृष्ण उनको निर्णय की स्वतंत्रता देने के आवरण में उनसे अपना मुख मोड़ लें। वे बहुत समय से यह अनुभव कर रहे हैं कि चाहे कृष्ण ने उनके

सम्मान में किसी प्रकार का कोई प्रमाद नहीं किया है, परंतु उनका व्यवहार उनके प्रति उदासीन हो गया है। उन्हें तो अपना वही श्यामसुंदर चाहिए था, जो उनकी असंगत बात पर उनसे भिड़ जाता था और जब तक उनकी परिस्थितियों से सही संगत नहीं बिठा देता था तब तक धैर्य से नहीं बैठता था। वे यह समझ रहे थे कि कृष्ण उनसे रुष्ट हैं। वे चाहते थे कि वह पहले कि भाँति उनसे तर्क-वितर्क करें, पे्रम में कठोर होकर उनको अनुशासित करें। उन्होंने सेवा में सन्नद्ध अधिकारी को बुलाया।

''कृष्ण की क्या सूचना है?'' बलराम ने व्याकुल होकर पूछा।

''सूचना है कि दोपहर से वे अपने मित्र सुदामाजी के साथ अपनी बैठक में हैं। किसी को प्रवेश की अनुमति नहीं है।'' अधिकारी ने प्रसन्न स्वर में कहा।

''मैंने अतिरिक्त रूप से कुछ जोड़ने के लिए तो नहीं कहा। तुम मुझे अपने अंतिम वाक्य से सूचना दे रहे हो या चेतावनी?'' बलराम की त्यौरियाँ चढ़ गईं।

''मैं क्षमा चाहता हूँ।'' अधिकारी सहम गया और उसने अपना सिर झुका दिया।

''कृष्ण को संदेश भिजवाओ कि मैंने उनको तत्काल बुलाया है।'' बलराम अधिकारी की क्षमा-याचना से संतुष्ट थे। उनके स्वर में अधिकारी के प्रति रुष्ट होने का भाव तिरोहित हो चुका था।

अधिकारी प्रणाम कर आज्ञा-पालन के लिए मुड़ा।

तभी सुदामा को ध्यान आया कि कृष्ण आ तो जाएँगे, परंतु सुदामा को इस प्रकार छोड़कर आना और सुदामा को भी लगेगा कि वह उनके कार्यों में बाधा-स्वरूप उपस्थित हो गए हैं। पहले ही वह हमें असमय आकर मिलने के अपराध-बोध से पीड़ित हैं। नहीं, वे सुदामा जैसे कोमल मित्र के साथ ऐसी हिंसा नहीं करेंगे। वे अपनी व्याकुलता और अधीरता का दंड सुदामा को क्यों दें?

''ठहरो!'' बलराम ने चौखट तक पहुँच गए अधिकारी को पुकारा।

अधिकारी बलराम की ओर मुड़ गया।

''कृष्ण को संदेश भिजवाओ कि वे सुदामाजी को अपने साथ अवश्य लाएँ।'' बलराम के स्वर में प्रसन्नता के छींटे थे।

''जी, मैं तुरंत संदेश भिजवाता हूँ।'' बलराम को प्रसन्न होता देख अधिकारी को संतोष हुआ। वह तेजी से द्‍वार की ओर बढ़ा। वह चौखट पार करने ही वाला था कि बलराम ने पुन: उसे पुकारा। वह बलराम के पास जाकर खड़ा हो गया। बलराम ने उससे कुछ कहा नहीं। वे कुछ सोचते हुए इधर-उधर टहलते रहे और अधिकारी उनके आदेश की प्रतीक्षा में हाथ जोड़े खड़ा रहा।

''सारथि से कहो, रथ ले आए। मैं स्वयं ही कृष्ण के पास जाऊँगा।'' बलराम ने कुछ पल विचार करने के उपरांत अपना निष्कर्ष सुनाया।

❑

कृष्ण ने देखा कि वार्त्तालाप करते-करते क्लांत सुदामा गहरी निद्रा में प्रवेश कर गए हैं।

वे उनकी ओर इस प्रकार देख रहे थे जैसे यशोदा माता उनको देखा करती थीं।

''कृष्ण, जब तुम्हारे मन में प्रेम जागता है तो तुम सबकुछ भूल जाते हो।''

कृष्ण ने मुड़कर देखा। बलराम रुष्ट मुख-मुद्रा में खड़े थे।

''दाऊ, मैं तो सदा पे्रमपूर्ण हूँ। मुझमें स्थित प्रेम तो कभी सोता ही नहीं।'कृष्ण ने मुसकराकर धीरे से कहा।

''तीन दिन से तुम अपने सभी कार्य स्थगित किए जा रहे हो और इधर दिन-प्रतिदिन यदुवंशियों में आपसी कलह बढ़ती जा रही है।'' बलराम का स्वर कुछ ऊँचा हुआ।

''दाऊ!'' कृष्ण ने सुदामा की ओर देखते हुए धीमे स्वर में सप्रेम पुकारा। उनके पुकारे जाने में बलराम के लिए यह चेतावनी थी कि उनको यह ध्यान रखना है कि सुदामा सोए हुए हैं। वे अपनी शैय्या से उठे और बलराम को अपनी भुजाओं में भर कर प्रेमपूर्वक एक ओर ले गए और बोले, ''यहाँ बैठिए और फिर धैर्यपूर्वक अपनी बात कहिए।''

''जब परिस्थितियाँ अधीर करनेवाली हों तो धैर्यपूर्वक बात कैसे की जाए?'' बलराम भड़के।

कृष्ण ने सुदामा की ओर देखा। वे आश्वस्त हुए कि सुदामा की प्रगाढ़ निद्रा पर बलराम के उच्च स्वर के नगाड़े बाधा नहीं डाल पा रहे हैं।

कृष्ण मुसकराते हुए बलराम की ओर देखते रहे।

''अब क्या हो गया तुमको?'' बलराम का धैर्य जैसे चुकता जा रहा था, ''तुम तो मेरी बात का ऐसे आस्वादन कर रहे हो जैसे मैंने किसी शृंगारिक काव्य की कोई पंक्ति कही हो।'' बलराम चौकी पर बैठ गए।

''दाऊ!'' कृष्ण बलराम के चरणों में बैठ गए, ''आपने अभी कहा कि जब परिस्थितियाँ अधीर करनेवाली हों तो धैर्यपूर्वक बात कैसे की जाए?''

''कहा और अपनी बात की पुनरावृत्ति करता हूँ, कुछ असंगत नहीं कहा।'' बलराम ने अपनी हथेली पर मुक्का मारा।

''तो मुझे यह बताइए कि धैर्य होता किसलिए है? अधीर परिस्थिति में साधने के लिए ही तो। जब शांत परिवेश है तब कोई क्यों अधीर होगा? जितनी विकट परिस्थिति हो, उतने ही धैर्यपूर्ण होकर चर्चा करनी चाहिए।'' कृष्ण की वाणी में माधुर्य था, ''आपको, हलधर बलराम को परिस्थिति व्याकुल कर जाए और आप अधीर होकर बात करें, यह तो हो ही नहीं सकता। यह सब आप मुझे परम विश्राम में देखकर ईर्ष्या के वशीभूत हो कह रहे हैं। इस समय मैं तो किसी से मिल नहीं रहा तो आगंतुक आपको ही अपना सबकुछ सुना रहे होंगे। ऐसे में आपका रुष्ट होना तो स्वाभाविक ही है। कार्य का इतना अधिक भार मैंने आप पर डाल दिया है। यदि आप कहें तो मैं सुदामा से क्षमा माँगकर इन्हें विदा कर दूँ।''

''नहीं...नहीं...मेरा यह आशय नहीं था।'' बलराम का स्वर कोमल हो गया। उन्होंने भी सुदामा की ओर देखा और अपनी त्रुटि का प्रायश्चित्त करते हुए बोले, ''सुदामा तो हम दोनों के आत्मीय हैं और तुम ही उन्हें घेरे बैठे हो। यह भी नहीं हुआ कि सुदामा को एक दिन मेरे प्रासाद में अतिथि के रूप में भेज देते। हम भी उनसे कुछ ज्ञान पा लेते।''

''ज्ञान पाने की दक्षिणा-स्वरूप आप सुदामा को सोमरस प्रस्तुत करते तो सुदामा का सारा ज्ञान धरा-का-धरा रह जाता । वह आपको ही अपना गुरु धारण कर लेते।'' कृष्ण धीरे से हँसे।

''वैसे मैं ज्ञानियों की संगत से दूर ही रहता हूँ। वे बुद्धि का ऐसा व्यायाम करवाते हैं कि शरीर ऐसे थक जाता है, जैसा कि पूरे दिन गदा का अभ्यास करने पर भी न थकता हो। मुझे तो मल्ल प्रिय है।'' बलराम बोले।

''तो सुदामा को गदा ही सिखा दीजिए।'' कृष्ण के नयनों में बाल-सुलभ ज्योति प्रकट हुई।

''जितना भार सुदामा का है, उससे कहीं अधिक तो हमारी गदाओं का होता है। तुम कैसे मित्र हो सुदामा के सुदामा गदा सीखकर क्या अपने ज्ञानी प्रतिद्वंद्वियों को गदा से पीटेंगे?'' बलराम हँसे, ''कल्पना करता हूँ कि सुदामा के लिए जो गदा बनाई जाएगी, वह धातु की न होकर वस्त्रों की होगी।''

''वस्त्रों की नहीं, कपास की।'' कृष्ण ने अपनी उठती हँसी को रोकने का प्रयास किया।

''कितना मनोरंजक लगेंगे सुदामा कपास की गदा पकड़े।'' बलराम भी अपनी हँसी को रोकते-रोकते भी बहुत हँस दिए।

''दाऊ, आप किसी अधीर कर देनेवाली परिस्थिति की चर्चा कर रहे थे?'' कृष्ण ने अबोध भाव से बलराम की ओर देखा।

बलराम को ध्यान आया कि वे तो गहन-गंभीर चर्चा करने आए थे। वे हँसने कैसे लग गए। जब वे आए तो विषय के तनाव से भरे हुए थे और इस मनभावन मनमोहन ने उनको अपने पाश में बाँधकर कब हँसाना आरंभ कर दिया, इसका उनको पता ही नहीं चला । उन्होंने पुन: स्वयं को तनावग्रस्त कर लिया।

''हमारे लिए संकट खड़ा होने जा रहा है।'' बलराम का स्वर चिंतित था।

''हम दोनों के लिए?'' कृष्ण ने चिंतित होने का अभिनय किया।

''हम अर्थात् सभी यादवों के लिए।'' बलराम के माथे पर चिंता की रेखाएँ उभरीं।

''दाऊ!'' कृष्ण बलराम के घुटने पर मुक्का मारते हुए रंगमंच के अभिनेता के समान बोले, ''इस समय यादव सेना सागर, पर्वत और प्रभंजन का भी मार्ग रोकने में समर्थ है। हमने एक-एक राक्षस को खोज-खोजकर मार डाला है। और आप कह रहे हैं कि...''

''...वह बात नहीं है। मैं किसी सैनिक आक्रमण के संकट की बात नहीं कर रहा।'' बलराम ने कृष्ण की बात काटते हुए कहा, ''इस समय कौरवों और पांडवों के मध्य परस्पर बढ़ते तनाव को देखते हुए और उनकी ओर से विभिन्न राजाओं को अपने-अपने पक्ष में करने की तैयारी को देखते हुए लग रहा है कि युद्ध अवश्य होगा।'' बलराम ने कृष्ण की ओर देखा। उनकी गंभीर मुद्रा को देखकर वे बोले, ''देखा, हो गए न तुम भी चिंतित।''

''मैं तो आपको लेकर चिंतित हूँ, दाऊ कि आप किसी अन्य के युद्ध के लिए क्यों चिंतित हैं? जिसका युद्ध होगा, वह लड़ेगा। इससे यादवों पर संकट कहाँ से आ गया?'' कृष्ण ने अपने स्वर में उपेक्षा का भाव प्रकट किया।

''कृष्ण, जिनका युद्ध होगा वे हमारे संबंधी हैं।'' बलराम ने अपनी बात को रेखांकित किया।

''तो क्या हुआ? वे हमसे नहीं लड़ रहे।'' कृष्ण ने सहज स्वर में कहा।

''पर हम इस युद्ध से स्वयं को अलग भी तो नहीं रख पाएँगे। मैंने सुना है कि मेरा शिष्य दुर्योधन यह अपेक्षा कर रहा है कि यदि युद्ध हुआ तो मैं उसके पक्ष से युद्ध करूँगा।'' बलराम के स्वर में असहाय और द्वंद्वग्रस्त होने का कष्ट था।

''यह निर्णय तो आपका है। क्या उसने आपके पास इस प्रकार का संदेश भेजा है?'' कृष्ण ने पूछा।

''नहीं।''

''तो फिर चिंता किस बात की है?''

''विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात तो हो ही जाता है कि आगे क्या होगा। वह अपने पक्ष में अनेक राजाओं को करने का अभियान चला चुका है।'' बलराम ने बताया।

''तो आपने क्या सोचा है?'' कृष्ण ने पूछा।

''वही पूछने तो तेरे पास आया हूँ कि क्या सोचूँ?'' बलराम झल्लाए।

''मुझसे 'क्या' पूछकर आप 'क्या' सोचेंगे?'' कृष्ण ने सिर को चकरानेवाला एक घुमावदार प्रश्न बलराम से कर डाला।

''वह सब मुझे नहीं पता। मुझे तो तुम इतना बताओ कि तुम किसके पक्ष में हो?'' बलराम ने जैसे कृष्ण का निर्णय जानना चाहा।

''यदि आपको किसी का पक्ष लेना हो तो आप किसका पक्ष लेंगे?'' कृष्ण ने अपनी दृष्टि बलराम पर टिका दी।

''मैं अपना निर्णय तुम्हारा मत जानने के बाद लूँगा।'' बलराम ने अपना निर्णय सुनाया और कृष्ण को एक प्रकार से आदेश देते हुए कहा, ''अब तुम मुझे अपना पक्ष बताओ। युद्ध की ऐसी विकट प्रस्तावना तैयार हो रही है। हमें भी इस ग्रंथ का एक पृष्ठ बनना ही पड़ेगा। ऐसे में तुम किसका पक्ष लोगे?''

''दाऊ, यदि आप प्रश्न की भाषा थोड़ी बदल लें तो मुझे सुविधा होगी।'' कृष्ण ने प्ेरम-भाव के साथ बलराम के पैर दबाने आरंभ कर दिए।

''तुम्हें भाषा से क्या असुविधा? मेरे कहने का अर्थ तुम समझ ही रहे हो। तुम्हें कुछ न कहा जाए तो भी तुम सब समझ लेते हो। फिर इस सीधी-सपाट भाषा को क्यों नहीं समझ पा रहे?'' बलराम ने वक्र दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा और चेतावनी देते हुए बोले, ''देखो, मेरे साथ क्रीड़ा करने की आवश्यकता नहीं है।''

''बालपन में आपने मुझे बहुत खिजाया है, दाऊ! तब मैंने आपको एक बार भी यह नहीं कहा कि आप मेरे साथ क्रीड़ा न करें। अब यदि मैं आपके साथ क्रीड़ा नहीं करूँगा तो किसके साथ करूँगा?'' कृष्ण मुसकराए।

''अच्छा, कर क्रीड़ा। मैं भी देखूँ कि तू उत्तर देने से कैसे बचता है।'' बलराम के स्वर में जैसे चुनौती थी।

''बच कौन रहा है और यहाँ बचना चाहता ही कौन है? मैं तो सार्थक उत्तर देना चाहता हूँ। इस प्रश्न को दूसरे कोण से पूछा जा सकता है।'' कृष्ण ने बलराम की ओर देखा।

''मैं सुन रहा हूँ, तुम कहते रहो।'' बलराम जैसे रुष्ट होने की तैयारी कर रहे थे।

''मैं आपसे यह नहीं पूछता कि आप किसके पक्ष में हैं। आप यह बताइए कि आपको किसका पक्ष न्यायसंगत लगता है? या यदि आपको किसी का पक्ष लेना पड़े तो आप अत्याचारी का पक्ष लेंगे या सदाचारी का?'' कृष्ण ने बलराम को घेरना आरंभ किया।

''यह प्रश्न कहाँ से आ गया?'' बलराम ने विरोध किया।

''दाऊ, जब हम जल में कंकड़ डालते हैं तो उसके केंद्र से एक लहर उठती है। फिर वह लहर अनेक लहरों को जन्म देती है। यह प्रश्न भी आपके फेंके कंकड़ से उत्पन्न एक लहर ही है।''

''मैं सदाचारी का ही पक्ष लूँगा।'' बलराम ने धीरे से कहा। वे समझ रहे थे कि कृष्ण उन्हें घेर चुका है।

''आप पहले प्रश्न से बचकर निकल आए। पांडवों और कौरवों में से किसका पक्ष न्यायसंगत है?''

''हमें न्याय-अन्याय से क्या लेना? वे हमारे अपने हैं। हमें तो समानता का व्यवहार करना है और यह भी देखना है कि हम धर्म-संकट से बचे रहें।'' बलराम का स्वर स्पष्टत: यह कह रहा था कि वे इस प्रश्न का उत्तर देने से बचना चाह रहे हैं।

''आप यह कैसी बात कह रहे हैं, दाऊ!'' कृष्ण के स्वर में तेज था, ''यदि हमें न्याय-अन्याय से लेना-देना नहीं था तो हमने अपने मामा कंस को दंडित क्यों किया? जरासंध, कालयवन, शिशुपाल, रुक्मी इत्यादि अत्याचारियों का वध क्यों किया? मैं देख रहा हूँ कि कल तक जब हम संघर्षरत थे तो धर्म और न्याय की स्थापना के लिए राक्षसों को खोज-खोजकर मारते थे। हमने लगभग सभी प्रमुख अत्याचारियों को मार दिया तो आज यादव वीर उद्‌ण्ड और अनुशासनहीन होते जा रहे हैं। अपनी शक्ति के मद में वे शिशुपाल, जरासंध और कंस बनते जा रहे हैं। बकासुर के समान अब उनके अधार्मिक कृत्य नियमित होते जा रहे हैं। शक्ति का मद उनका पतन कर रहा है। यदि साम्राज्य

शक्तिशाली हो तो उसका लाभ आत्मा के विकास में लगाकर एक ऐसी विकसित प्रजाति तैयार की जा सकती है, जिसके गर्भ से जन्म लेनेवाली संतानें नाम मात्र के प्रयास से बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएँ और वही शक्तिशाली समाज यदि उस शक्ति का दुरुपयोग करेगा तो वह विकृत संतानों को जन्म देगा और विकृत पीढ़ी को तैयार करेगा। इस समय यादव साम्राज्य को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की कोई चिंता नहीं। द्वारका में अन्न, वस्त्र और आवास का कोई अभाव नहीं है। सबके पास समय है। पर उस समय का उपयोग जीवन-ऊर्जा को ऊर्ध्वगति देने के स्थान पर उसको अधोगति में सहज रूप से बहने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया है।'' सहसा कृष्ण के तेजस्वी स्वर का ताप प्रकट हुआ, ''और आप कह रहे हैं कि हमें न्याय-अन्याय से क्या लेना? वे हमारे अपने हैं! मैं सत्य कहता हूँ दाऊ, कि यदि हमारा वंश राक्षसों के पद-चिह्नों पर और आगे तक गया तो मैं उनको न्याय की प्रतिष्ठा में, धर्म के यज्ञ में आहुति के समान छोड़ दूँगा।''

बलराम कुछ नहीं बोले, चुप रहे।

''मैं जानता हूँ कि यह आप असावधानीवश कह गए हैं। आप न्याय-अन्याय की उपेक्षा कर ही नहीं सकते। पर असावधानी में भी यदि सावधानी का बोध रखा जाए तो असावधानी हो ही न। साथ-ही-साथ आप यह भी स्मरण रखें दाऊ, कि आप ऐसी कोई भी टिप्पणी सार्वजनिक रूप से न दें, जो स्वार्थी और दुष्ट लोगों के लिए उदाहरण के रूप में प्रयुक्त होकर उनका सहयोग करें। जनमानस आपका उदाहरण देकर यह न कहे कि जब बलराम जैसे नीति-कुशल और धार्मिक महापुरुष को न्याय-अन्याय से कुछ लेना-देना नहीं है तो हमें ही सत्य को ढोने की क्या आवश्यकता है।''

''यदि देखा जाए तो पांडवों ने भी दुर्योधन को आहत किया है।'' बलराम को जैसे कुछ नहीं सूझा तो उनके मुँह से निकल गया। वे समझ रहे थे कि उनको यह नहीं कहना चाहिए था। अभी कृष्ण ने उनको समझाया है कि कोई भी टिप्पणी देने से पूर्व वे उसका मूल्यांकन कर लें।

''आहत! पांडवों ने दुर्योधन को आहत किया? पांडवों ने! ओह दाऊ, यह आप कह रहे हैं—पांडवों ने! अब यदि मैं कुछ कह दूँगा तो आप आहत हो जाएँगे।'' कृष्ण जैसे अपने आवेश को पी रहे थे, ''वे पांडव जिनकी आत्मा सदा धर्म में वास करती है, उन्होंने दुर्योधन को आहत किया? वे पांडव जिनको द्वैतवन में सताने, अपमानित करने, अपना वैभव प्रदर्शित करने तथा उनके कष्टों को देखकर आनंदित होने के लिए वह दुरात्मा दुर्योधन अपने राजसी वैभव के साथ गया और गंधर्वों के राजा चित्रसेन द्वारा बंदी बना लिया गया। वे उसे दंडित करनेवाले थे, परंतु धर्मात्मा युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ने उस अधर्मी दुर्योधन के प्राणों की रक्षा की। जिन पांडवों की हत्या के लिए दुर्योधन सदा प्रयत्नशील रहा, उन पांडवों ने कभी उसका अहित नहीं सोचा। पांडवों की ओर से एक भी कुचक्र नहीं रचा गया और दुर्योधन की ओर से सदा षड्यंत्रों की पटकथाएँ लिखी जाती रहीं और आप कह रहे हैं कि पांडवों ने दुर्योधन को आहत किया? ओह, दाऊ!'' कृष्ण झटके के साथ उठ खडे हुए और बलराम के समक्ष आवेश में टहलने लगे। सहसा वे रुक गए । उनके स्वर की ध्वनि जैसे बलराम को लज्जित करना चाह रही थी, ''भीमसेन को विष देना और फिर उसके हाथ-पैर बाँधकर गंगा में निश्चित हत्या के लिए डुबो देना, वारणावत के लाक्षागृह में हमारी बुआ सहित पाँचों भाइयों की हत्या का आयोजन, द्यूतक्रीड़ा द्वारा छले जाना—मैं कहाँ-कहाँ तक दुर्योधन के पाप गिनाऊँ? और आपने उसके सत्कार एवं उसकी चाटुकारिता से प्रसन्न होकर उसे अपने पट्ट शिष्य का सम्मान दे डाला। ऐसे अवगुणी, दुष्ट और अधम शिष्य के गुरु होने का आप क्या यश पाएँगे, दाऊ?''

''पांडवों ने नहीं, द्रौपदी ने दुर्योधन को आहत किया है।'' बलराम ने जैसे अपनी बात सँभाली और दुर्योधन का

समर्थन किया।
''इसीलिए...इसीलिए...इसीलिए कहता हूँ दाऊ, कि पापी का अन्न नहीं खाना चाहिए। इसीलिए बार-बार चेताता हूँ कि पापी का अन्न नहीं खाना चाहिए।'' कृष्ण के स्वर में बलराम के चिंतन को लेकर पीड़ा प्रकट हुई, ''अन्न हमारी प्राण-ऊर्जा बनता है। उसका पाप अथवा पुण्य हमारी जिह्वा से बोलता है और बुद्धि उस पाप अथवा पुण्य के अन्न से उत्पन्न हुई नकारात्मक और सकारात्मक ऊर्जा से हमारे मस्तिष्क को वशीभूत कर परिचालित करती है। पर आप इस विज्ञान को समझें तब न।'' कृष्ण बलराम को जैसे धिक्कार रहे थे, ''दुर्योधन की मदिरा में पाप मिला है, दाऊ! पाप! उसमें जो लालिमा है, वह धर्मात्माओं के रक्त की है। वह आपको चषक-पात्रों में ऋषियों का रक्त पिलाता है।''
''उस राजा दुर्योधन को द्रौपदी ने 'धृतराष्ट्र पुत्र' कहा। कितने लज्जा की बात है किसी की नैसर्गिक रिक्तता के लिए उसका परिहास करना! वह भी तब, जब कि वह अभावग्रस्त पात्र कहनेवाली स्त्री का श्वसुर हो। वह अपने देवर को अंधे बाप की संतान कहकर उसे भी अंधा कह रही है।'' बलराम के कहने में यह ध्वनि थी कि कृष्ण जिनका पक्ष ले रहा है, वे भी कुछ कम नहीं हैं, ''पूरा कौरव-समाज इस बात से आहत है।''
''द्रौपदी ने?'' कृष्ण पीड़ा में हँसे, ''आपको यह हो क्या गया है, दाऊ? द्रौपदी एक सुसंस्कृत विदुषी है। वह किसी का अपमान करने का विचार भी नहीं कर सकती। दुर्योधन ने इतने अत्याचार किए। द्रौपदी का जो अपमान किया, वह तो अक्षम्य है। आपने कभी उन कृत्यों की भर्त्सना नहीं की। कृष्णा का चीर-हरण करने में कौरव-समाज आहत क्यों नहीं हुआ?''
''तो क्या मैंने उन कुत्सित कार्यों की प्रशंसा की?'' बलराम को जैसे अपना पक्ष रखने का अवसर मिला।
''नहीं, आपने उनकी प्रशंसा नहीं की; परंतु आप मौन रहे। आप चाहते तो दुर्योधन को उसके इन कृत्यों के लिए धिक्कार सकते थे, उसे दंडित कर सकते थे; पर आपने वह सब नहीं किया। आप मौन रहे।'' कृष्ण का स्वर बलराम को भी दोषी सिद्ध कर रहा था, ''दुर्योधन ने आपको अपना गुरु धारण किया और आपकी सेवा में सारा कुरु साम्राज्य बिछा दिया। आप उसके सत्कार के कारण उसके प्रति उदार रहे। उसने आपका सत्कार शिष्यत्व भाव से नहीं किया है, वरन् वह एक प्रकार से आपको वश में रखने के लिए, अपने पक्ष में रखने के लिए सत्कार के रूप में उत्कोच देता रहा और आपको यह सब दिखाई नहीं दिया या आपने उसको देखने की आवश्यकता नहीं समझी। उसकी चांडाल चौकड़ी यह भली प्रकार जानती है कि मैं उनके अधर्म और अत्याचार को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिए मैं उनके कुकृत्यों के पक्ष में मौन रहना तो दूर उनका विरोध ही करूँगा; इसलिए उन्होंने आपको घेरा। मेरे विरुद्ध आपको अपने पक्ष में करने का यह एक सुनियोजित षड्यंत्र रहा उनका और मैं देख रहा हूँ कि वे आपको मुझसे दूर करने के अभियान में सफल हो रहे हैं।'' कृष्ण के स्वर का तेज शांत हुआ। उनका स्वर जैसे उदासीन हो गया था, ''मैंने भी आपकी स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं दी। मैं चाहता था कि आप स्वयं देखें कि कोई अपने उपयोग में लेने के लिए आपको छल रहा है। इसीलिए मैं कुत्सित भाव रखनेवालों का भोग स्वीकार नहीं करता। फिर चाहे वे मेरे सत्कार हेतु छप्पन भोग लगाएँ। पवित्र और भक्तिपूर्ण भाव से अर्पित सूखी रोटी मुझे अमृतमयी लगती है।''
''तुम बात की दिशा मत बदलो। मुझे यह बताओ कि द्रौपदी का यह कथन क्या उचित है?'' बलराम ने अपने स्वर में आवेश का समावेश किया।
''कब कहा द्रौपदी ने ऐसा?'' कृष्ण के नयनों में आवेश की लाली आश्चर्य लिए हुए थी।

''राजसूय यज्ञ के पश्चात् जब दुर्योधन मय दानव निर्मित युधिष्ठिर का महल देखते हुए जल में थल का भ्रम, थल में जल का और भीत में द्वार का और द्वार में भीत का भ्रम पाकर गिरता-पड़ता रहा था। उस समय द्रौपदी ने अपनी सखियों के साथ हँसते हुए दुर्योधन को अपमानित करने के उद्देश्य से ये कथन कहे थे।''

कृष्ण मुसकराते हुए दयनीय भाव से बलराम की ओर देखते रहे।

''ऐसे क्या देख रहे हो?'' बलराम कुछ झेंपे।

''यही देख रहा हूँ कि यदि एक मेघ का छोटा सा टुकड़ा या घनीभूत कुहरा तेजस्वी सूर्य के आगे आ जाए तो वह उसका सारा तेज ही जैसे हर लेता है। आप इतने बुद्धिमान और धार्मिक व्यक्ति हैं, किंतु उस नराधम दुर्योधन के अन्न का प्रत्यक्ष प्रभाव आपमें देख रहा हूँ। उसी विषाक्त अन्न के दंश को मिटाने के लिए मैं अन्नक्षेत्र में भंडारे का आयोजन करता हूँ। स्वयं उस भोजन में अपने को रस-रूप में पका देता हूँ कि मेरी ऊर्जा भंडारे के प्रसाद के रूप में जाकर मेरे बंधु-बांधवों में प्राणवान् रक्त का निर्माण करे, जिससे वह संजीवन रक्त, दूषित रक्त को पवित्र और रोगाणु-मुक्त कर दे।'' कृष्ण के स्वर में जैसे शंखध्वनि हुई, ''दुर्योधन मिथ्याभाषी है, दाऊ! उसने आप जैसे लोगों से सहानुभूति पाने के लिए तथा द्रौपदी के चीर-हरण को उचित ठहराने के लिए यह दुष्प्रचार किया है। अपने पापकर्मों को ढकने के लिए वह सदा द्रौपदी पर एक वक्तव्य को आरोपित कर अपने पाप-बुद्धि भाइयों और लोभी मित्रों के आवेश को सदा सक्रिय रखना चाहता था। पुत्र-मोह में तथा नेत्रों से अंधे धृतराष्ट्र और स्वेच्छा से नयन ढक लेनेवाली अपनी माता गांधारी को यह बताकर वह उनको यह अनुभूति कराकर पीड़ित करना चाहता था कि देखो, तुम अंधों के कारण एक स्त्री भी मुझ नेत्रोंवाले को अंधा कहकर अपमानित कर रही है। वह बार-बार उनकी दु:खद नाड़ी को इसलिए दबाता रहा कि वे उसके पाप कर्मों के समक्ष बाधा-स्वरूप यदि आना भी चाहें तो उनको यह अपमानित टिप्पणी रोक ले।...और हुआ भी यही। इस समय आप भी उस मिथ्या वक्तव्य के विषाणुओं से ग्रस्त हो गए हैं। आप मुझे यह बताइए कि जिस समय दुर्योधन स्फटिक महल में भीतों से टक्करें मार रहा था उस समय क्या द्रौपदी वहाँ थी?''

''होगी ही, तभी तो यह बात उठी।'' बलराम ने अपने कंधे उचकाते हुए कहा।

''भ्रमित वक्तव्य मत दीजिए, प्रामाणिक तथ्य कहिए। आपके पास इस बात का आधार क्या है कि यह टिप्पणी द्रौपदी ने की थी?'' कृष्ण का स्वर कठोर हो चला था।

''दुर्योधन स्वयं आधार है। वही प्रमाण है।''

''मिथ्या प्रमाण है वह। द्वेषपूर्ण आधार है वह।'' कृष्ण की मुट्ठियाँ भिंच गईं। वे बोले, ''मैं आपको सारी बात बताता हूँ, सारा प्रसंग दोहराता हूँ। उस समय वहाँ अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और अनेक दास-दासियाँ थीं। यह बात भीमसेन ने कही थी, जिसे सुनकर दासियाँ हँसी थीं। बाद में हस्तिनापुर आकर दुर्योधन ने अपने पिता को अपने भावी षड्यंत्रों में उनकी मौन सहमति को दृढ़ करने तथा उनके मन में पांडवों और विशेष रूप से द्रौपदी के प्रति विष भरने के उद्देश्य से यह मिथ्या वचन कहा। वह पांडवों के वैभव को देखकर ईर्ष्या से भस्म हो चुका था। वह पांडवों की प्रगति को देखकर इतना उद्वेलित हुआ कि आत्महत्या करने जा रहा था; किंतु शकुनि के मार्गदर्शन के अंतर्गत उसने इस मिथ्या भाषण के पाँसे को अपने पिता के वक्ष की चौसर पर फेंका और विजयी हुआ।'' कृष्ण ने एक दीर्घ श्वास लिया और धीरे से बोले, ''दाऊ, यदि आपकी यही नीति रही तो आप अपने श्याम को स्वयं से बहुत दूर पाएँगे। हो सकता है, आपका श्याम लज्जित हो आपको अपना मुख ही न दिखाए।''

कृष्ण का यह वचन सुनकर बलराम का समूचा व्यक्तित्व काँप उठा। कितना पे्रम करता है कृष्ण उनसे। यह

नहीं कह रहा कि उनके द्‍वारा पाप का समर्थन करने के कारण वह उनका मुख नहीं देखेगा। कह रहा है कि वह उनको कभी भी अपना मुख न दिखा कर ऐसा दंड देगा कि वे न तो शेष जीवन में स्वयं को कभी क्षमा ही कर पाएँगे, अपितु जीवित रहते हुए भी पक्षाघात से पीड़ित किसी रोगी के समान निष्प्राण जीवन जीएँगे। बलराम की वह कँपकँपी उनके हृदय को भयंकर रूप से कँपाने लगी थी। उनको शीघ्र ही कुछ निर्णय लेना होगा। कहीं ऐसा न हो कि कृष्ण आवेश में कोई प्रतिज्ञा कर बैठे और फिर वे जीवन भर कभी पूर्ण न हो सकनेवाला प्रायश्चित्त करते रहें। इस कृष्ण का कुछ विश्वास नहीं। एक बार जो कह दिया, फिर उसे उलटना असंभव है। वह स्वयं ही अपनी मौज में उसे उलट दे तो बात अलग है।...तो वे क्या करें? क्या अपने उस शिष्य दुर्योधन का पक्ष न लें, जो सदा उनके चरणों में बैठा रहा? उन्होंने सदा दुर्योधन को विनम्रता की प्रतिमूर्ति के रूप में ही देखा है। उनके आने पर वह पूरे कुरु साम्राज्य को सिर पर उठा लेता था। उनके सत्कार में तनिक भी प्रमाद न हो, इसके लिए वह स्वयं उनकी सेवा में उपस्थित रहता था। स्थिति यह हो जाती थी कि बलराम को कहना पड़ता था कि उनके आगे से सभी खाद्य और पेय पदार्थ हटा दिए जाएँ। उनका पेट इतना भर चुका है कि वे अब किसी भी भोज्य पदार्थ को देख भी नहीं सकते। इतना सत्कार तो अर्जुन भी कृष्ण का नहीं करता होगा। इतना क्या, वे तो उसे बातों में ही घेर लेते हैं। उसकी आड़ में वे यह प्रकट करते हैं कि वे कृष्ण के आकर्षण में बँधे होने के कारण उनका यथोचित सत्कार करना ही भूल गए हैं और यह भाव का भूखा-प्यासा उनका श्यामसुंदर ठगा जाता है।

उनको दुर्योधन का सारा व्यवहार कूटनीति का एक अंग लगा। राज्य पाने के लिए राजा य़ुद्‍ध तो करते ही हैं। ऐसे में दुर्योधन ने यदि छल रूपी बल का आश्रय लिया तो क्या अनुचित किया? पर कृष्ण ने जाने कहाँ से दुर्योधन में अधर्म खोज लिया है।

बलराम ने अनुभव किया कि उनके मन में कृष्ण प्रकट रूप से हँस रहा है। उसके हँसते हुए मुख से अग्नि बरस रही है और सिंह के समान विकराल व तीक्ष्ण दाँत दिखाई दे रहे हैं। लगा, कृष्ण की ओजस्वी वाणी की अनुगूँज उनको अपने रोएँ-रोएँ में सुनाई दे रही थी—इसीलिए मैं पापियों का अन्न नहीं खाता। पाप का अन्न विवेक के लिए दीमक का काम करता है। जिस भाव का भोजन पाओगे, उसी भाव की ऊर्जा को पोषित करोगे। भाव की ऊर्जा ही सत, रज और तम गुणों को पोषण देती है।

''यदि दुर्योधन या उसका कोई दूत आए तो मैं क्या कहूँ?'' बलराम ने बुझे स्वर में पूछा।

''यह आपको सोचना है दाऊ, '' कृष्ण ने तटस्थ स्वर में कहा।

''कैसे सोचूँ?''

''अपनी आत्मा को साक्षी बनाकर।'' कृष्ण मुसकराए।

''मेरी आत्मा तो तू ही है।'' बलराम के स्वर में स्नेह था।

''कभी-कभी आत्मा विस्मृत भी हो जाती है।'' कृष्ण ने सुदामा की ओर देखते हुए कहा। सुदामा गहरी निद्रा में थे।

बलराम समझ रहे थे कि कृष्ण क्या कहना चाह रहे हैं। यह जानते हुए कि कृष्ण ने दुर्योधन के अनेक निमंत्रणों के पश्चात् भी उसके अन्न का एक दाना तक स्वीकार नहीं किया, उन्होंने दुर्योधन के यहाँ जी भरकर राजभोगों का सुख उठाया। क्या उनको यह सब दिखाई नहीं दिया? वे अनुभव कर रहे थे कि उन्होंने इन सब बातों को जानकर अनदेखा कर दिया था। वे यह भी नहीं देख पाए कि यदि पांडवों में दोष होता तो कृष्ण एक क्षण भी उनके साथ नहीं रहते। कृष्ण सदा निर्दोष, निष्पाप, सरल और सहज जनों के साथ ही रहते हैं। कृष्ण का पांडवों के साथ होना ही यह प्रमाणित करता है कि वे निष्पाप हैं। उनको पांडवों के हृदय पर हुए कृष्ण के हस्ताक्षर भी दिखाई नहीं दिए।

कौरव उनके सामने सदा पांडवों का उपहास उड़ाते रहे। उन पांडवों का जिनका आवास वन नहीं वरन् कृष्ण का हृदय है। ओह! इसका अर्थ है कि वे अपने केशव का ही उपहास अपने समक्ष उड़वाते रहे। उनसे यह कैसा अपराध हो गया? वे यह सोचकर ही ग्लानि से भर गए कि वे यह सब क्या करते रहे। वे जानते थे कि कृष्ण को यह प्रिय नहीं है, फिर भी वे दुर्योधन से निकटता बढ़ाते गए। कृष्ण की दृष्टि से सोचें तो दुर्योधन उनसे निकटता बढ़ाता गया और आज उनको अपनी आत्मा के सम्मुख धर्म-संकट में लाकर छोड़ दिया। कितना दूरदर्शी है कृष्ण! क्या कृष्ण पहले से ही जानता था कि ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी? क्या उनको कृष्ण का प्रतिद्वंद्वी बनना होगा? नहीं, चाहे कुछ भी हो जाए, वे कृष्ण के सम्मुख एक विरोधी के रूप में कभी खड़े नहीं होंगे। परंतु कृष्ण ने तो सदा उनका पथ-प्रदर्शन किया है। इस बार वह क्यों चूक गए?

''यदि भविष्य में ऐसी विकट स्थिति आनी थी तो तुमने मुझे टोका क्यों नहीं?'' बलराम ने जैसे कृष्ण पर दोषारोपण किया।

''मैं तो होने में सहयोग करता हूँ। जो जैसा होना चाहेगा, मेरा सहयोग पाएगा। मैं पापी को उसके पाप में सहयोग करता हूँ। उसको पाप के शिखर तक पहुँचने देता हूँ। धर्मात्मा को मैं परमात्मा तक पहुँचने में सहयोग करता हूँ। मुझे जो जिस भाव से ध्याता है, मैं उसको उसी रूप में सहयोग करता हूँ।'' कृष्ण का स्वर सुदूर अंतरिक्ष से आता प्रतीत हो रहा था, ''मैं किसी की भी स्वतंत्रता में बाधक के रूप में नहीं आता। जीव जैसा होना चाहता है, उसको वैसा होने में मैं उसके सहयोगी की भूमिका निभाता हूँ।''

बलराम सोचने लगे कि इससे स्पष्ट और क्या कहेगा कृष्ण। उनके प्रति सम्मान से भरा होने के कारण प्रत्यक्ष रूप से उनका नाम लेकर नहीं कह रहा। उसने उनकी स्वतंत्रता में बाधक की भूमिका नहीं निभाई वरन् मौन रहकर, उनको न टोककर उनकी इच्छा में सहयोग ही किया। उनको दुर्योधन का साथ प्रिय लगने लगा था। इस समय वे उसे कह तो रहे हैं कि कृष्ण ने उनको टोका क्यों नहीं; पर वे यह भी जानते हैं कि यदि कृष्ण ने उनको रोका होता तो वे रुकने से तो रहते अपितु कृष्ण से तर्क-वितर्क अथवा कुतर्क करने लग जाते। सत्य कह रहा है कृष्ण। जो जैसा होना चाहता है, उसके होने में वह सहयोग ही करता है। यह तो निश्चित है कि वे कृष्ण के विरोध में खड़े नहीं होंगे और यह भी निश्चित है कि कृष्ण पांडवों को कभी नहीं त्यागेगा और दुर्योधन व उसके भाइयों को उनके पापों का दंड भी दिलवाएगा। इसका एक ही अर्थ है कि युद्ध होगा ही। तो यादव किसके पक्ष में जाएँगे? आज नहीं तो कल, कौरवों की ओर से उनके पास भी यह संदेश आ जाएगा कि वे भावी युद्ध में किसका साथ देंगे। उनको लगा कि दुर्योधन उनके सम्मुख खड़ा मुसकरा रहा है और उसका फैला हुआ हाथ जैसे कह रहा है कि गुरुदेव, सोच क्या रहे हैं? इसी दिन के लिए तो आपको अपने पाले में रखा हुआ था, अन्यथा दुर्योधन ने कब किसके आगे झुकना सीखा है। अब आप पीछे नहीं हट सकते। बलराम ने अनुभव किया कि वे पीछे नहीं हट सकते तो क्या हुआ, अब और आगे भी नहीं बढ़ेंगे। वे दुर्योधन को कह देंगे कि वह संबंधों की दृष्टि से कृष्ण के अधिक निकट हैं, इसलिए वह कृष्ण के सम्मुख ही यह राजनीतिक प्रस्ताव रखे। ऐसा न हो कि वे किसी बात को लेकर अपनी सहमति दे दें और कृष्ण उस बात से असहमत हो। तब उस बात का संभव होना तो होगा ही नहीं अपितु वे मिथ्यावादी और कहलाए जाएँगे। नहीं, वे इस संकट में स्वयं को नहीं डालेंगे। केवल कृष्ण ही इस राजनीतिक और धार्मिक संकट से खेलने का साहस रखता है।

''बलराम, तुम कब आए?'' सुदामा ने नींद से उठने के बाद बालक के समान अपनी आँखें मलते हुए और अँगड़ाई लेते हुए पुकारकर पूछा।

''जब तुम सो गए थे।'' कृष्ण ने हँसकर कहा और बलराम की ओर देखकर अपनी उसी बाल-सुलभ चपलता में बोले, ''आओ दाऊ, ब्राह्मण उठ गया है। इसे भूख लगी होगी। भोजन की व्यवस्था की जाए।''

''तुम्हें आज भी इतनी छोटी-छोटी बातें स्मरण हैं। मैं जब सोकर उठता था तो तुम यही कहा करते थे और मेरे लिए कुटिया में कुछ बचाकर रख भी लिया करते थे।'' सुदामा का स्वर उल्लसित था।

''हमें ज्ञात है कि तुम जब उठते हो तो अपनी सारी ऊर्जा स्वप्न में झोंक आते हो और फिर वही भूखे पेट। तुमसे कितनी बार कहा है कि ऐसे स्वप्न मत देखा करो, जिनमें अधिक ऊर्जा का व्यय हो।'' कृष्ण ने ठहाका लगाया, ''अच्छा, बताओ कि अभी कौन सा स्वप्न देख रहे थे?''

''बहुत ही असंभव। तुम उचित कह रहे हो उसे देखने में मेरी सारी ऊर्जा ही समाप्त हो गई।'' सुदामा ने भी ठहाका लगाया, ''तुम भी कैसी-कैसी मौलिक बातें कहते हो, कृष्ण! स्वप्न देखने में ऊर्जा का व्यय!''

''यह सत्य है, सुदामा!'' कृष्ण का स्वर बाल-सुलभ चपलता से तुरंत शून्यवत् हो उठा, ''स्वप्न यदि तनावपूर्ण है तो उसमें हमारे मन की असीम ऊर्जा का व्यय होता है। जैसे अधिक भार उठाने पर शरीर की ऊर्जा का व्यय उसी अनुपात में होता है और निर्भार विहार करने में ऊर्जा की वृद्धि होती है। मन को बैल के समान मानो। वह विचारों का भार ढोता है। जितने अधिक विचार उसकी गाड़ी में लादोगे, वह उतना ही कष्ट पाएगा। उसकी गाड़ी में यदि नाममात्र के विचारों की पोटली रखी होगी तो वह स्वयं भी प्रसन्न रहेगा और तुम्हें भी आनंदित रखेगा। एक अवस्था और है कि स्वप्न ही न आए या आए तो तुम्हें बोध हो कि जो चल रहा है, वह स्वप्न है। तो मन स्थिर होने लगता है।''

सुदामा का मुख खुला-का-खुला रह गया। वे सोचते ही रहे कि यह कृष्ण केवल दार्शनिक ही नहीं, अपितु महान् वैज्ञानिक भी है, प्राण-ऊर्जा का वैज्ञानिक।

''तो तुम्हारे लिए पकवान परोसते हैं।'' बलराम ने कृष्ण से प्रेरणा पाकर अपना मुख खोला। उन्होंने देखा कि कृष्ण तो इतनी गंभीर चर्चा से ऐसे निकलकर बाहर आ गए हैं, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो और वे अभी भी वहीं अटके पड़े हैं। उन्होंने सहज होने के लिए एक पग और आगे बढ़ाया, ''बताओ तो क्या स्वप्न देख रहे थे? यह तो नहीं देख रहे थे कि तुम अपने ग्रंथ लिख रहे हो और अप्सराएँ तुम पर चँवर डुला रही हैं?''

''नहीं, नहीं। मैं यह नहीं देख रहा था।'' सुदामा सकुचा गए।

''तुम्हारी नहीं-नहीं तो यह कह रही है कि तुम इससे भी आगे का कुछ देख रहे थे।'' बलराम ने ठहाका लगाया, ''तुम्हें वैसी अवस्था में देखकर ही हँसी आ जाती है।''

''कैसी अवस्था?'' सुदामा हँसते हुए बलराम का मुँह ताकते रहे।

''छोड़ो। यह बताओ कि स्वप्न क्या था?'' बलराम ने गंभीर होने का अभिनय किया। पर उनकी दमित हँसी उनकी आँखों से झाँक रही थी।

''मैंने देखा कि मेरी कुटिया एक सुंदर भवन में परिवर्तित हो गई है। मुझे किसी वस्तु का अभाव नहीं रह गया है और मैं शांत मन से ज्ञान-समाधि की ओर उन्मुख हो रहा हूँ।'' सहसा सुदामा स्वप्नलोक से यथार्थ में आ गए। उनके स्वर में उदासी घिर आई, ''पर दाऊ, मुझे यह समझ नहीं आया कि मेरी कुटिया विशाल भवन में कैसे परिवर्तित हो गई? मैंने चाकरी तो कहीं की नहीं! व्यापार मुझे आता नहीं! पद मेरे पास कोई है नहीं! पैतिक संपत्ति के रूप में पिता ग्रंथों की स्व-हस्तलिखित प्रतियों के साथ एक पर्ण कुटीर दे गए थे, वह उनकी स्मृति-स्वरूप आज भी है।'' सहसा सुदामा भावुक हो गए। उनके नयनों के कोरों से जल-बिंदु गिरने लगे।

''क्या हुआ, सुदामा?'' कृष्ण ने सुदामा के दोनों कंधों पर अपने हाथ रखे और फिर उसका हाथ अपने हाथों में लेकर बोले, ''कह डालो, जो सोच रहे हो।''

''मेरे माता-पिता समय से बहुत पहले स्वर्ग सिधार गए। यदि वे आज होते तो मैं अपने पिता की छाया में ज्ञान पा रहा होता और मेरे बच्चे अपने दादा-दादी से कथाएँ सुन रहे होते। मैं अपने पिता के लिखे विचार पढ़ता हूँ तो पाता हूँ कि वे महान् ज्ञानी थे। उनके ज्ञान का लाभ मैं कहाँ उठा पाया! उनका पूरा प्रेम मैं कहाँ पा पाया!''

''इस दृष्टि से तो मुझे तुमसे कहीं अधिक शोकग्रस्त होना चाहिए।'' कृष्ण का स्वर गहराई लिए था।

''क्यों?'' सुदामा ने अपने अश्रु पोंछे।

''क्योंकि मुझसे पहले मेरे सात भाई-बहनों को कंस ने असमय काल के मुख में भेज दिया। उनके शोक में तो मुझे विक्षिप्त हो जाना चाहिए था। तुम्हारे पास तो अपने माता-पिता की स्नेह-स्मृतियाँ शेष हैं।'' सुदामा ने पलंग पर रखे उपधानों पर अपनी कुहनी टिकाई और अधलेटे से होकर सुखद मुद्रा में आकर बोले, ''समय की धारा में सब बहा जा रहा है। किसका शोक मनाएँ और किसका हर्ष! इस सुख-दुःख के झूले पर बैठकर मनुष्य जीवन को जीना ही भूल जाता है। जीवन जीने का नाम है। इसे पूर्णता के साथ जीना है। जो भी जीवन को पूर्ण होकर जीएगा, उसे मृत्यु छू भी नहीं पाएगी।''

''क्या वह अमर हो जाएगा?'' सुदामा का मुख आश्चर्य से खुला।

''उस रूप में नहीं जिस रूप में तुम समझ रहे हो। देह तो सबकी मिटेगी, पर वह पूर्ण पुरुष मृत्यु आने पर अपनी देह वैसे ही सुविधा और हर्षपूर्वक छोड़ देगा जैसे सर्प अपनी केंचुली। हमारी सारी तैयारी ऐसी होनी चाहिए कि जब मृत्यु आए तो हम उससे कह सकें कि ठहरो, हम आते हैं। और वह हमारी दासी बने, हमें बिना छुए चले।''

जीवन को पूर्णता से भोगने का क्या अर्थ है, कृष्ण?'' सुदामा का स्वर यह कह रहा था कि वह तो आज तक निर्धनता ही भोगता आया है—जीवन तो उसने भोगा ही नहीं।

''वह नहीं जो तुम समझ रहे हो? जीवन...''

''...श्याम! एक अज्ञानी इधर भी बैठा है। उसका भी ध्यान करो।'' बलराम के व्याकुल स्वर ने कृष्ण की बात पूरी ही नहीं होने दी, ''पहले तुमने सुदामा से कहा कि उस रूप में नहीं जिस रूप में तुम समझ रहे हो और अब तुमने कहा कि वह नहीं जो तुम समझ रहे हो; पर सुदामा क्या समझ रहे हैं, यह तो स्पष्ट ही नहीं हुआ और तुम अपने आप समझकर आगे बढ़ते जा रहे हो।''

''सुदामा यदि नहीं समझे होते तो बोल देते। वह ज्ञानी हैं। संकेतों को पकड़ते हैं। आप मल्ल हैं, योद्धाओं के कौशल और चतुराई समझ लेते हैं। फिर यह व्याख्यान आपके लिए है भी नहीं। जिसके लिए है, वह समझ रहा है और आप उसके समझने में बाधा स्वरूप समझानेवाले की बात ही पूरी नहीं होने दे रहे।'' कृष्ण ने सुदामा की ओर देखा, ''क्यों सुदामा, दाऊ को यदि ज्ञान पिला दिया जाए तो ये सबकुछ छोड़कर प्रभास-क्षेत्र में तीर्थ-यात्रा को चले जाएँगे।'' कृष्ण ने बलराम की ओर देखा, ''दाऊ, ज्ञान के फेरे से बचें। यदि आपको ज्ञान हो गया तो आपको वैराग्य घेर लेगा। मैं तो परम वैरागी होकर भी संसार में हूँ। आप न रह पाएँगे। भोगों के साथ संसार में टिकने में सुविधा-ही-सुविधा है; परंतु वैराग्य के रहते भवसागर में तैरना संसार का सबसे महान् और दुःसाध्य कार्य है।''

''तुम सुदामा के प्रश्न का उत्तर दो। मेरा मस्तिष्क तो तुम्हारी रहस्यमयी बातों को सुनकर चकराने लगता है।'' बलराम हँसे, ''पता नहीं तुम्हें कौन आकर ये नई-नई बातें सिखा जाता है!''

''मैं उसका नाम बता सकता हूँ। पर होगा, क्या आप उसके पीछे अपना हल लेकर दौड़ेंगे और उसे खोदकर ज्ञानी

होने का उपाय करेंगे।'' कृष्ण हँसे।
''मैं इतना अज्ञानी भी नहीं हूँ।'' बलराम ने अपने उत्तरीय को अपने कंधे पर पटका और सुदामा से बोले, ''तुम्हारा क्या कहना है सुदामा?''
''तुम स्वयं ही कह चुके हो कि तुम 'इतने भी अज्ञानी' नहीं हो।'' सुदामा धीरे से बोले।
''अब तो सुदामा ने भी प्रमाणित कर दिया कि तुम अज्ञानी हो, दाऊ! विप्रदेव ने तुम्हें प्रमाण-पत्र दे दिया है।'' कृष्ण ताली बजाकर हँसे।
सुदामा ने भी कृष्ण का साथ दिया।
''हूँ!'' बलराम ने रूठने का-सा मुँह बनाया और जाने के लिए उठ गए।
''क्या हुआ?'' सुदामा असहज हो गए।
''तुम दोनों ज्ञानी अपने पाटों में पीसकर इस मल्ल को मारने की योजना बना चुके हो। ज्ञान की तलवार से कटने से अच्छा है कि अपने शस्त्रों की सेवा करूँ।'' बलराम द्वार की ओर बढ़ गए। सहसा रुके और चेतावनी देते हुए बोले, ''कल प्रात: यदि रेवती के हाथ का बना भोजन पाने नहीं आए तो फिर देखना ब्राह्मण, तुम्हें कंधे पर बिठाकर राजनर्तकी की नृत्यशाला में ले जाऊँगा।''
बलराम चले गए तो परिवेश में मौन छा गया। न सुदामा ही कुछ बोले, न कृष्ण ने ही अपनी अधूरी छूटी बात आगे बढ़ाई।
''मैंने तीन दिन तुम्हारे साथ व्यतीत करने का संकल्प लिया था। अब मेरे चलने का समय हो गया है।'' सुदामा का स्वर वियोग की पीड़ा से भर गया था।
''क्या भाभी के साथ ऐसा कुछ अनुबंध तय करके आए थे?'' कृष्ण बोले, ''फिर संध्या होने को है। कुछ देर में रात घिर आएगी। रात में कहाँ जाओगे?''
''रात में आया भी तो था।'' सुदामा के स्वर में चिड़चिड़ाहट-सी थी, ''अब घर की स्मृति सता रही है। मैं जैसे स्वयं को अपराध-बोध से घिरा हुआ अनुभव कर रहा हूँ। इधर मैं भोगों का आस्वादन ले रहा हूँ और उधर...''
''...यह है अपूर्ण होकर जीना।'' कृष्ण बोले, ''भूत और भविष्य में जीना ही अपूर्ण होकर जीना है। जो वर्तमान में जीता है, वही पूर्ण होकर जीता है। वर्तमान पूर्णता का पर्याय है।'' सहसा कृष्ण ने अपनी बात की धारा मोड़ दी, ''फिर ऐसा सोचना क्यों? तुम तो भाभी के कहने पर आए हो। तुम्हें तो आश्वस्त होना चाहिए।''
''कृष्ण, मैं धनार्जन हेतु विदेश-यात्रा पर नहीं हूँ। तीन दिन की पद-यात्रा के बाद मैं घर पहुँचूँगा और फिर...'' सहसा सुदामा चौंके कि वे कृष्ण से यह सब क्या कह रहे हैं। उनकी इन बातों का कृष्ण क्या अभिप्राय ग्रहण करेगा। यह कृष्ण है, बलराम नहीं, जो उसके सम्मुख किसी कही और अनकही बात का आशय स्पष्ट न हो।
''...और फिर?'' कृष्ण मुसकराए, ''तुम तीन दिन की यात्रा के पश्चात् अपनी पुरी में पहुँचोगे तो क्या देखोगे?''
''मेरी पुरी कहाँ से हो गई वह? निर्धनों की कोई पुरी हुआ करती है!'' सुदामा ने अपना माथा ठोका—उफ , उन्हें यह क्या होता जा रहा है? जो वे नहीं कहना चाहते, वही कोई उनसे कहलवाता जा रहा है। जो वे छिपाना चाहते हैं, उसे कोई उघाड़ता जा रहा है। वे सँभले, ''पुरा काल में किसी श्रेष्ठी ने अपनी माया का कुछ अंश ब्राह्मणों को भू-दान में दिया था। उसी की माया की महिमा हमारा गाँव गा रहा है। ज्ञान की महिमा कौन गाता है कृष्ण! यह संसार तो माया की ही महिमा गाता है। उस मायापुरी के अंतिम छोर पर मेरी एक छोटी सी कुटिया को तुम मेरी पुरी कहना चाहो तो यह मेरे मन को प्रसन्न करने का अच्छा उपाय होगा। मैं अपनी कुटिया में जाते ही सबसे पहले एक कार्य

यह करूँगा कि उसके बाहर तुम्हारे सम्मान में काठ की एक पट्टिका तैयार करूँगा और उस पर लिख दूँगा—कृष्ण प्रदत्त सुदामापुरी। मायापुरी से भिन्न राष्ट्र, जहाँ के सम्राट् का नाम है सुदामा और उसकी पटरानी है सुमति। फिर तुम मेरे राष्ट्र में राजकीय यात्रा पर आना।''

''दाऊ को भेजूँगा।'' कृष्ण हँसे, ''द्वारकापुरी में तुम मेरे साथ रहे। सुदामापुरी में बलराम भैया तुम्हारे साथ रहेंगे तो उनकी तुम्हारे साथ समय व्यतीत करने की साध भी पूरी हो जाएगी और वे तुमसे कुछ ज्ञान भी पा लेंगे।''

सुदामा ने परम संतोष की साँस ली कि कृष्ण ने उनकी किसी बात को अन्यथा नहीं लिया।

उन्हें अपने कथनों पर लज्जा आ रही थी। कहाँ तो वे अनिश्चित यात्रा पर निकले थे कि कृष्ण से भेंट होगी भी या नहीं, वह पहचानेंगे भी या नहीं...और न जाने कितनी आशंकाएँ थीं। पर कृष्ण ने उनको जैसे अपने प्रेम के अथाह सागर की तलहटी में ले जाकर आत्मीयता के रत्न दिखाए और वे अपने वक्तव्यों के द्वारा क्या संकेत दे रहे हैं। सुदामा का मुख लज्जा से झुक गया। उनकी आँखें भर आईं।

''देख लो, सुदामा! कुछ दिन और रुक जाते तो मुझे कुछ और विश्राम मिल जाता। तुम्हारे जाते ही सब मुझे घेर लेंगे।'' वे मुसकराए, ''तुम मेरा कवच बनकर आए हो। तुम पास हो तो कोई मुझे छू भी नहीं पा रहा।''

सुदामा के टपकते अश्रु कह रहे थे कि अब बस भी करो, कृष्ण! मुझ निर्धन की झीनी झोली में इतना प्रेम मत उड़ेलो कि झोली ही फट जाए। उन्होंने कृष्ण की ओर देखा। लगा जैसे कृष्ण की प्रसन्नता से चमकती आँखें कह रही हैं कि यही तो मेरे प्रेम की विशेषता है कि यह प्रेम निर्भार है। उसका प्रेम तो ज्योत्स्ना की भाँति है। झोली को कितना ही भर लो, झोली फटने से तो रही अपितु प्रकाशित और हो जाएगी।

''नहीं कृष्ण, मैं मध्य रात्रि ही तुम्हारे पास आया था और मध्य रात्रि ही जाऊँगा।'' सुदामा के स्वर में दृढ़ता थी।

''तो मैं तुम्हारे लिए रथ की व्यवस्था...''

''...नहीं कृष्ण!'' सुदामा ने कृष्ण का हाथ अपने हाथों में थामा और उसे अपने माथे से लगाते हुए बोले, ''मुझे वर्तमान में जीने का जो मंत्र तुमने दिया है, उसे जपने दो। मैं तीन दिन की पद-यात्रा में तुम्हारे द्वारा दिए अपूर्व ज्ञान की जुगाली करते जाना चाहता हूँ। मैं इसे अपनी मौन-यात्रा बनाऊँगा और सबसे पहले तुम्हारी भाभी से ही संबोधित होकर पूछूँगा कि कैसी हो, सुमति? देखो, तुम्हारा सुदामा कृष्ण का प्रेम पाकर मोटा होकर लौटा है। तुम उसे पहचान तो रही हो न!''

कृष्ण ने एक अट्टहास किया। लगा जैसे पूरा भवन ही हँस रहा है।

''तुम हँस क्यों रहे हो?'' सुदामा यह अच्छी तरह जानते थे कि उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं कही है, जिसे सुनकर हँसी अपने सभी बंधन तोड़कर दिशाओं को गुंजा दे।

''मैं यह अनुभव करके हँस रहा हूँ कि यदि इससे विपरीत हुआ कि तुम घर जाकर भाभी से पूछो कि बहन, तुम कौन हो? क्योंकि मैं इन दिनों इतनी सुंदर नारियों के दर्शन करके आया हूँ कि तुम भी मुझे उनमें से एक दिखाई दे रही हो। उनसे भी कहीं अधिक सुंदर और गरिमामयी।''

''कुछ समझ नहीं आ रहा कि क्या यथार्थ है और क्या स्वप्न। पर यथार्थ यही है कि मेरे विदा लेने का समय आ गया है। यदि तुम्हें बुरा न लगे तो मैं तुम्हारे सेवकों द्वारा दिए राजसी वस्त्र त्यागकर पं. हनुमान प्रसादजी के द्वारा भेंट में दिए वस्त्र धारण करना चाहूँगा।'' सुदामा ने अपने मन की बात स्पष्ट रूप से कही।

''तुम सौभाग्यशाली हो, जो शास्त्रीय संगीत के ऋषि पं. हनुमान प्रसादजी के द्वारा दी भेंट को धारण करोगे।'' कृष्ण सुदामा को देखकर मुसकरा रहे थे।

नौ

बलराम ने देखा कि विश्राम-कक्ष में सात्यकि, विकद्रु, दारुक और सुभाष बैठे ठहाके लगा रहे थे। उनका मन उस ओर मुड़ गया। जमघट बलराम को प्रिय लगता है। वे कक्ष में घुस गए।

''आइए, बल भैया!'' दारुक प्रसन्न स्वर में बोला।

सभी बलराम के स्वागत में खड़े हो गए।

''बैठे रहो!'' बलराम ने उनके स्वागत पर ध्यान नहीं दिया और सुभाष के निकट रखी चौकी पर बैठते हुए बोले, ''आजकल तुम लोग परम विश्राम में हो, इसलिए खड़े होने का भी कष्ट मत करो।''

''बल भैया! हम विश्राम में हैं, आलस्य में नहीं।'' सात्यकि हँसा, ''आपकी दृष्टि में तो गर्दभ और अश्व में कोई अंतर है ही नहीं।''

''देखो इसे!'' बलराम ने दारुक, विकद्रु और सुभाष की ओर देखकर कहा, ''यह सात्यकि तो हर समय मुझसे लड़ने का मन बनाए रहता है। अभी मैंने इसे कुछ कहा क्या? एक सीधी-सी बात बोली थी और यह उस बात को कहाँ-से-कहाँ ले गया। मैं जानता हूँ कि इसे ये सब बातें कौन सिखाता है।''

''बलदेव!'' विकद्रु के स्वर की ध्वनि बलराम से यह कह रही थी कि वे अपने आवेश को संयत करें। विकद्रु, बलराम से बड़े थे और बलराम उनका बड़े भाई के समान सम्मान करते थे।

''आप उचित शब्दों का प्रयोग तक तो करना जानते नहीं, शेष कुछ जानेंगे, इसमें मुझे संदेह है।'' सात्यकि ने विकद्रु को और बोलने का अवकाश नहीं दिया। उसका स्वर कह रहा था कि उसको बलराम की बात बुरी लगी है। बलराम ने भी यह अनुभव किया कि बात तो अनुचित ही कह गए हैं। वे सात्यकि को चिढ़ाने के लिए यह कहना चाह रहे थे कि कृष्ण उनको यह सब बातें सिखाता है।

''अच्छा, तुम ही बताओ कि मुझे क्या कहना चाहिए था?'' बलराम ने अपने पहले कहे वाक्य की कठोरता को कम करने के लिए अपने स्वर को कोमल बनाया।

''आपको पूछना चाहिए था कि हम किससे ये बातें सीखकर आते हैं। फिर हम आपको उत्तर देते कि ये बातें सीखी नहीं जातीं। जो भगवान् श्रीकृष्ण के साथ हर समय श्रद्धा और भक्ति के साथ रहेगा, उसमें ये तत्त्व स्वतः ही आ जाएँगे।'' सात्यकि बोला।

''वैसे, मैंने यह अनुभव किया है कि राजा विराट की सभा में दिए गए मेरे भाषण के बाद तुम मुझसे बहुत रुष्ट हो गए हो। वहाँ तो तुमने सभी के सामने मुझे खरी-खोटी सुनाई थी। उसके बाद से तो तुम मुझे देखते ही असामान्य हो जाते हो। तुम्हारी दृष्टि कहती है कि तुम मुझे एक ऐसे अपराधी की तरह देख रहे हो, जिसे तुम न दंडित कर सकते हो और न क्षमा।''

''आपने इस समय उचित शब्दों का उपयोग किया है।'' सात्यकि का मुँह जैसे कड़वा हो गया था।

''सात्यकि !'' दारुक ने टोका, ''तुम बल भैया से बात कर रहे हो!''

''उसे कहने दो, दारुक!'' बलराम ने दारुक को रोक दिया, ''अपना मत रखने का सभी को अधिकार है।''

''परंतु सात्यकि अपने किसी प्रतिद्वंद्वी से बात तो नहीं कर रहा न!'' दारुक चकित था कि सात्यकि अकस्मात् भड़क क्यों गया।

''वह मुझे 'बल भैया' कहता है, अब लड़ने किसी और के पास जाएगा क्या? मेरे लिए तो जैसे श्याम वैसे ही यह है। या यों कहना चाहिए कि श्याम से भी अधिक है।'' बलराम हँसे।
''बल भैया तो आपको यहाँ सभी कहते हैं।'' दारुक बोला।
''हाँ, रेवती भाभी भी।'' सात्यकि मुसकराते हुए बोला।

दारुक चकित था कि सात्यकि बलराम से व्यंग्योक्ति में बात क्यों कर रहा है। यह बात भी नहीं है कि वह अपरिपक्व अथवा अहंकारी है। भगवान् ने जब यादवों की सुधर्मा सभा का निर्माण करवाया तो उसके अनुरूप ही उन्होंने सभासदों को उनके पद दिए। उग्रसेन को द्वारका का राजा बनाया, काशी के महान् विद्वान् और शास्त्रों के मर्मज्ञ संदीपनि मुनि को राजपुरोहित के पद से अलंकृत कर द्वारका का गौरव बढ़ाया। अनाधृष्टि को सेनापति तथा विकद्रु को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। उनको अपने सारथि के रूप में अपनी गरिमामयी उपस्थिति में रहने का सौभाग्य प्रदान किया और सात्यकि को समस्त यादव योद्धाओं का प्रधान नियुक्त किया। सात्यकि सुधर्मा सभा के दस यादव वंशधरों के पश्चात् सर्वाधिक सम्मानित और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। वे दस गणधर सुधर्मा सभा को अपना मार्गदर्शन देते हैं।

उद्धव, वसुदेव, कंक, विपृथु, दूवफल्क, चित्रक, गद, सत्यक, बलभद्र और पृथु जैसे कुल वृद्धों का एक ही कार्य है कि वे यादवों पर अपनी अनुशासन दृष्टि बनाए रखें। उन वंशधरों को भी यह सात्यकि अति प्रिय है । परंतु इसने इतना महत्त्वपूर्ण पद पाकर भी कभी ऐसा कोई अनुचित कार्य नहीं किया, जो उसके अहंकारी होने को प्रमाणित करे। अहंकार तो जैसे श्रीकृष्ण अपने प्रिय के हृदय में रहने ही नहीं देते हैं। उनके भक्त की अनेक विशेषताओं में से एक विशेषता उसकी निरहंकारिता है। वह तेजस्वी होगा। हो सकता है, उसके स्वर से लगे कि वह अहंकार की भाषा बोल रहा है; परंतु उसका स्वर आकाश से आ रहा होता है तो पाताल में पड़े जीव को यही लगता है कि जो उससे संबोधित हो रहा है, वह अहंकारी है। फिर अकस्मात् सात्यकि के मन में बलराम के प्रति विरोधी स्वर क्यों उठने लगे हैं? क्या दोनों का कोई वैचारिक मतभेद हो गया है? यदि ऐसा है तो उसका निराकरण होना चाहिए, अन्यथा वह कलह का रूप ले लेगा।
दारुक ने विकद्रु के कान में कुछ कहा। विकद्रु ने संकेत से दारुक को धैर्य धरने के लिए कहा।
''पर रेवती तुम्हारी तरह मुझ पर कटाक्ष नहीं करती। जो भी बात होती है, उसे सीधे-सीधे कह देती है।'' बलराम ने सहज होने के लिए हँसते हुए कहा।
''हम आपको यदि कुछ सीधे-सीधे कहेंगे तो आप उसे अपना विरोध या अपनी स्वतंत्रता में बाधा मान लेते हैं। आपको कुछ कहने से अच्छा तो यही है कि आपको अपने निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाए।'' सात्यकि, के स्वर में आवेश था।
बलराम ने ध्यान से सात्यकि की ओर देखा। सभी चकित थे कि बलराम उसे ऐसे क्यों देख रहे हैं। बलराम को लगा कि यह है तो सात्यकि, परंतु बोल इसके भीतर से कृष्ण रहा है। यह कृष्ण भी कब किसके मुख से बोल पड़ता है, कुछ पता नहीं चलता और पूछो तो हँसकर यही कहता है कि सारे संसार के मुख मेरे ही तो हैं। पर सात्यकि ने अभी उनकी और कृष्ण की बातचीत नहीं सुनी है। फिर यह उन्हीं शब्दों का प्रयोग कैसे कर रहा है, जिनका कृष्ण ने अभी कुछ पल पूर्व किया है। क्या कृष्ण ने सात्यकि से यह कहा होगा कि जब बलराम आएँ तो वह उनसे यह बात कहे?...नहीं, नहीं। उन्होंने अपने मस्तिष्क को एक झटका दिया। ऐसा हो ही नहीं सकता। क्योंकि वे जब आए तब यहाँ न सात्यकि था और न विकद्रु ही थे। संभवत: वे बाद में आए हों और फिर सात्यकि ने उनको पुकारकर अपने

पास कुछ सुनाने के लिए नहीं बुलाया है। वे ही स्वेच्छा से उनकी मंडली का आनंद लेने चले आए हैं। उन्होंने संकल्प किया कि वे सात्यकि की किसी भी बात का बुरा न मानकर केवल उसकी बातें सुनेंगे। हो सकता है, इस समय कृष्ण अपने बोलने के लिए जिस मुख का उपयोग कर रहे हैं, उसमें उनके काम का कुछ हो। कृष्ण ने उनसे कहा था कि वे अब अपने निर्णय लेने की क्षमता का विकास करें और उसके लिए आवश्यक है कि शांत मन से शुभ वचनों को सुनना, फिर चाहे वे कितने भी कटु अथवा तिक्त क्यों न हों।

''विकद्रुजी!'' दारुक ने अपना मुँह विकद्रु के कान के निकट ले जाकर धीरे से कहा, ''यदि आपने हस्तक्षेप नहीं किया तो यहाँ कोलाहल हो जाएगा और आपको पता ही है कि भगवान् भीतर सुदामा के साथ चर्चा में लीन हैं। ऐसे में यहाँ एक नाटक का मंचन हो जाएगा और दर्शक होंगे सुदामा। आशा है कि न आप ऐसा चाहेंगे और न यह भगवान् को रुचेगा।''

''तुम चिंता मत करो। मैं ऐसा कुछ नहीं होने दूँगा। यदि ऐसा हुआ तो तब मैं दोनों को तत्काल अनुशासित कर दूँगा। अभी इनमें उन्मुक्त संवाद होने दो।''

''तुम सीधे ही कहो, सात्यकि!'' बलराम ने जल पात्र मुँह से लगाते हुए कहा। जल पीया और फिर पात्र को रखते हुए कुछ सोचने लगे। उन्होंने सात्यकि की ओर देखा। सात्यकि भी उनकी ओर देख रहा था। उसके देखने में सम्मान का वह भाव नहीं था, जो प्राय: हुआ करता था। बलराम बोले, ''कहो सात्यकि! जो कुछ तुम्हारे मन में मेरे प्रति है, उसे आँखों से न कहकर सीधे सपाट शब्दों में कहो। वह जैसा भी है, मैं सुनने को प्रस्तुत हूँ। यदि तुम मेरे प्रति मन-ही-मन विष पालते रहोगे तो वह हम दोनों के लिए ही नहीं, वरन् सारे यादवों के लिए अहितकर होगा। मेरे शब्दों पर अधिक ध्यान मत देना। मैं अपनी बात को कहने के लिए अनेक बार अनुपयुक्त शब्द का भी उपयोग कर लेता हूँ।''

''दाऊ!'' सात्यकि का संबोधन बता रहा था कि उस पर बलराम की इस बात का बहुत प्रभाव पड़ा है। अब की बार उसके स्वर में असम्मान नहीं था, ''जब धर्म की स्थापना में आप ही भगवान् के साथ नहीं रहेंगे तो शेष संसार को हम क्या कह पाएँगे। यह सत्य है कि विराट की सभा में आपके संबोधन के पश्चात् मेरे मन में आपके प्रति सम्मान नहीं रहा। आप पहली बार बोले और बोलते ही आपने अधर्म का पक्ष लेना आरंभ कर दिया। आप न तो छली हैं या अत्याचारी और न अत्याचारियों के पक्षधर, फिर आपने इस प्रकार का अनर्गल प्रलाप क्यों किया? उस समय केवल मैंने वहाँ भरी सभा के मध्य आपकी बात का न केवल खंडन किया अपितु मुझे आपके प्रति उस भाषा का उपयोग करना पड़ा, जो न तो मुझे शोभा देती थी और न ही आप उसके योग्य थे। मैं जानता हूँ कि जो कुछ उस समय आपने कहा, वह आपकी गहराइयों से नहीं आया था। आपको कुछ बोलना था। क्या बोलना है, यह आपको स्पष्ट नहीं था। आपने स्वयं कहा है कि आपकी भाषा पर पकड़ नहीं है; परंतु मैं कहूँगा कि भाषा के साथ-साथ विचारों पर भी आपकी पकड़ नहीं है। यदि आपने वे बातें सभा के सम्मुख न कही होतीं तो मुझे उनका उतना खेद न होता।''

''परंतु बात तो वही रहती।'' बलराम धीरे से बोले, ''इससे क्या अंतर पड़ता कि यदि वही बात मैं एकांत में तुमसे कहता?''

''आकाश-पाताल का अंतर पड़ता है, दाऊ!'' सात्यकि एक-एक शब्द को चबा-चबाकर बोल रहा था, ''सभा में सभी सत्य और न्याय का पक्ष लेनेवाले गुणीजन बैठे थे। वहाँ पर आपने असत्य का पक्ष लेकर अपना वक्तव्य दिया। जिस सत्य को, जिस धर्म को, जिस तथ्य को भगवान् वहाँ प्रतिपादित कर रहे हैं, उसकी स्थापना में

प्रयत्नशील हैं, वहाँ आपने अन्यायी पक्ष के समर्थन में गीत गाए। उपस्थित समाज क्या सोच रहा होगा कि ये वही बलराम हैं जो सत्य और धर्म के पुनरुत्थान के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के अग्रज हैं! क्या संदेश गया सभी के पास? सार्वजनिक रूप से असंगत टिप्पणी करने से अशुभ संदेश तेजी से प्रसारित हो जाता है।''

''परंतु बल भैया ने ऐसा क्या कह दिया, जो आप इतना कुपित हो गए?'' सुभाष का स्वर यह कह रहा था कि उसे विश्वास नहीं हो रहा कि बलराम कुछ ऐसा आपत्ति- जनक कह सकते हैं।

''लो, सुन लिया आपने बल भैया!'' सात्यकि ने अपनी पगड़ी उतारकर चौकी पर रख दी और बोले, ''अभी मैं सुभाषजी को वह बात बताऊँगा तो ये भी सोचेंगे कि बल भैया ऐसा कैसे बोल सकते हैं। वे सोचेंगे कि मैं मिथ्या भाषण कर रहा हूँ। परंतु सौभाग्य से इस समय दारुक और विकद्रु भी यहाँ उपस्थित हैं, जो कि उस सभा में भी थे।'' सात्यकि ने सुभाष की ओर देखा और बोला, ''अब यदि तुम को वह बात बताई जाएगी तो तुम्हारे मन में भी बल भैया के प्रति सम्मान कम हो जाएगा।''

''होने दो सम्मान कम। तुम से तो कहा नहीं जाएगा, मैं ही बता देता हूँ।'' बलराम ने सुभाष की ओर देखा और बोले, ''वहाँ श्रीकृष्ण पांडवों का पक्ष लेकर...''

''...पांडवों का नहीं, धर्म का पक्ष लेकर।'' सात्यकि ने टोका।

''...धर्म के पक्षधर पांडवों का पक्ष लेकर उनकी सहायता के लिए सभी को संबोधित कर रहे थे। ऐसे में मैंने वहाँ दुर्योधन का पक्ष लिया और पांडवों को बुरा-भला कहा। यह सुनकर तुम क्या कहना चाहोगे, सुभाष? मैं तुमसे तटस्थ मत की अपेक्षा करता हूँ।''

सुभाष फटी-फटी आँखों से और खुले मुँह से बलराम की ओर देखता रहा।

''मैं तुम्हें अभय देता हूँ। तुम्हारे मन में जो आ रहा है, उसको कह दो। अब सात्यकि भी तो जो इसके मन में आ रहा है—कह रहा है न! मैं इसकी बात का बुरा कहाँ मान रहा हूँ। इस समय स्वस्थ चर्चा हो रही है।'' बलराम ने सुभाष को बोलने के लिए प्रोत्साहित किया।

''बल भैया, मैं सात्यकि नहीं हूँ।'' सुभाष ने धीरे से कहा और अपना सिर झुका लिया।

''इसका क्या अर्थ है कि तुम सात्यकि के समान असभ्य नहीं हो सकते या फिर मैंने जो किया उसके लिए तुम जिन शब्दों का उपयोग करना चाह रहे हो, उनको कहने के लिए तुम्हारे पास सात्यकि जैसा साहस नहीं, है या तुम्हारी मर्यादा के आड़े आ रहे हैं?'' बलराम का स्वर गंभीर हो गया था।

सुभाष पूर्ववत् मौन साधे रहा।

''तुम्हें मौन रहने की अनुमति नहीं है, सुभाष! तुम कृष्ण के निजी सहायक हो। तुम्हारे पास तुला है। तुम उस तुला में अब तक सब तौल चुके होगे। मुझे उसका भार बताओ कि मेरा पक्ष किस ओर झुका हुआ है? सत्य की ओर अथवा...''

''बल भैया! कुछ बातों का कहने से सौंदर्य और महत्त्व खो जाता है। एक दिन हम उषा:काल में सागर तट पर भगवान् के साथ थे। दारुक भी वहीं पर थे। भगवान् सूर्य सागर के सुदूर भाग में सुंदर आकृतियों के मेघों के मध्य अकस्मात् प्रकट हुए। उस दृश्य को देखकर मेरे मुँह से यह निकल गया कि अहा, कितना सुंदर दृश्य है! तो भगवान् बोले—तुम वाचाल हो, सुभाष! उन्होंने यह प्ेरम से हँसकर कहा था। पर मैं काँप उठा। मुझे लगा कि जैसे मैंने बहुत ही अधार्मिक बात कह दी हो। तब मैंने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की कि प्रभु, आप मेरा मार्गदर्शन करें, जिससे मैं

अपना विकास कर सकूँ। तब भगवान् ने मुझे कृपा-दृष्टि से देखा और बोले, 'तुम वाचाल के साथ-साथ सुभाष भी हो, इसलिए तुम मुझे प्रिय हो। तुममें जिज्ञासा है, इसलिए तुम मुझे प्रिय हो। तुम अपनी आत्मा के विकास के लिए सजग हो, इसलिए तुम मुझे प्रिय हो।' उनके शब्दों के इस प्रेमपूर्ण अवलेह ने मेरे हृदय के घाव को तुरंत भर दिया। वे बोले, 'यदि सौंदर्य को देखकर कुछ कहना हो पाया तो उसके दो ही अर्थ हैं कि या तो वह सौंदर्य साधारण कोटि का है या फिर वह द्रष्टा। सौंदर्य में डूबी चेतना के लिए कुछ कहने जैसा रहता ही नहीं। मन जब लीन हो जाए तो क्या बोलेगा। समाधि में शब्द कहाँ!''

''पर इस समय तुम समाधि में तो नहीं हो न! और यह भी तय ही है कि उस समय मैंने जो कहा वह कोई सौंदर्य-संपन्न तो था नहीं कि उपस्थित सभासदों के समान तुम भी अवाक् हो गए हो। केवल एक वाचाल सात्यकि को छोड़कर।'' बलराम ने सात्यकि की ओर हँसते हुए देखा। उनकी हँसी कह रही थी कि मेरे पास तो यही शब्दावली है। अब तू बुरा मानता हो तो मान।

''मैं पुन: निवेदन करता हूँ कि आप मुझे इस धर्म-संकट में न धकेलें।'' सुभाष ने हाथ जोड़ दिए।

''अति आग्रह ठीक नहीं, बलदेव!'' विकद्रु ने बलराम को बोलने नहीं दिया।

''क्या तुमको नहीं लगता कि उस सभा में तुम्हारे अतिरिक्त किसी ने मेरी बात का खंडन नहीं किया'' विकद्रु के इतना कहते ही बलराम सात्यकि की ओर मुड़ गए। वे क्षण भर में यह भूल गए कि वे सुभाष को बोलने के लिए बाध्य कर रहे थे।

दारुक ने विकद्रु की ओर देखा—कितने आश्वस्त होकर उन्होंने कहा था कि यदि कोई असामान्य स्थिति उत्पन्न हुई तो वे एक क्षण में दोनों को अनुशासित कर देंगे। तभी वे इन दोनों के संवादों का ऐसे आनंद ले रहे हैं जैसे गुरुकुल में निर्णायक मंडल का कोई सदस्य वाद-विवाद प्रतियोगिता का आनंद ले रहा होता है। कितना महत्त्वपूर्ण और सुंदर होता है किसी वरिष्ठ व्यक्ति का होना। दारुक ने अपने तनाव को छिटक दिया और दर्शक के समान चौकी पर आलथी-पालथी मारकर बैठ गए।

''मेरे उस भाषण के बाद तुम कुछ अधिक ही भावुक नहीं हो गए हो।'' बलराम ने अपनी बात पूरी की।

''मैं यह नहीं कहूँगा कि सभा में सभी निस्तेज लोग बैठे थे और मैं उनमें सर्वाधिक तेजस्वी था। पर मेरे कहने के बाद सभी को यही लगा कि वे जो कहना चाहते थे, वह मैंने कह दिया है। फिर आपके प्रति असम्मान प्रकट करने के लिए या आपकी अनुचित बात से असहमत होने के लिए कुछ विशेष अधिकार तो होने चाहिए न। आपके मेरे प्रति प्रेम ने मुझे यह अधिकार दिया कि मैं आपका विरोध करूँ। शास्त्रों का कथन है कि यदि माता-पिता अथवा गुरुजन असत्य के पथ पर बढ़ते हों तो संतान और शिष्यों का यह धर्म है कि वे उनको अनुशासित करें।'' सात्यकि ने रुककर सभी की ओर देखा और बोला, ''मैंने भगवान् से जब इस संबंध में चर्चा की तो वे अपनी रहस्यमयी मुसकान के साथ मुझसे इतना ही बोले कि सात्यकि, सत्य सदा एकाकी चलता है। उसके साथ कोई चल पड़े तो भी वह एकाकी होता है और कोई न चले तो भी। वहाँ द्वैत तो है ही नहीं।''

बलराम को यह सुनकर आघात लगा कि कृष्ण ने उनके होते हुए स्वयं को एकाकी कहा। वे यह कल्पना करने लगे कि यदि किसी सभा में उनके मत के विरोध में बाहरी लोगों के सामने यदि कृष्ण उनकी बात का विरोध करें तो उनको कैसा लगेगा? लगना क्या, वे तो वहीं उत्पात मचा देते। परंतु कृष्ण ने उनको एक शब्द नहीं कहा। उन्होंने बाद में भी उनसे यह नहीं कहा कि उन्होंने उनके विरोध में जो कहा, वह सुनकर उनको अच्छा नहीं लगा। वे तो इसे बहुत ही सामान्य बात मानकर भूल भी चुके थे; परंतु अपनी असावधानी में वे कृष्ण से कितनी दूर निकल आए,

इसका बोध उन्हें अभी हुआ है। वे क्यों नहीं देख पाए कि बाहरी दृष्टि उनको भ्रमित कर कहाँ लिये जा रही है? इस समय वे ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि जैसे जीवन-यात्रा में उन्होंने बहुत दीर्घकाल के पश्चात् मुड़कर देखा है और कृष्ण कहीं बहुत दूर एक बिंदु के समान उनको खड़ा दिखाई दे रहा है। क्या वे इतनी दूर निकल आए कृष्ण से, अपने श्यामसुंदर से, अपने कन्हैया से, अपने बाँके बिहारी से? आज कृष्ण ने तो उनको स्पष्ट रूप से कह ही दिया है कि वे अपने निर्णय स्वयं लेने का अभ्यास करें। उनका मन रोने को हो रहा था। पर वे रो भी नहीं सकते थे। रोने जैसा साधारण प्रायश्चित्त करके वे इस टीस से मुक्त नहीं हो सकेंगे।

''मैं अपने किए पर लज्जित हूँ, सात्यकि! मेरी असावधानी ने तुम सभी को आहत किया है। श्यामसुंदर से क्षमा माँगूँगा तो उसको और आहत ही करूँगा, इसलिए मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ। तुम मेरी ओर से मेरे श्याम से क्षमा माँग लेना और उससे कहना कि वह मुझसे इतनी दूर न खड़ा हो कि मैं उसे देख ही न पाऊँ।'' बलराम का स्वर भावुक हो चला था।

''दाऊ, क्षमा तो आप मुझे करें। आप मेरे पिता समान हैं और मुझे आपको अशोभनीय बातें कहनी पड़ीं।'' योद्धाओं का शिरोमणि सात्यकि बालक के समान रोता हुआ उठा और बलराम के चरणों में गिर गया।

बलराम ने उसे उठाया और अपने हृदय से लगाकर रोने लगे। दारुक, सुभाष और विकद्रु के हाथ भी अपने अश्रुओं के कारण अस्पष्ट हुई आँखों को पोंछने के लिए उठ गए।

तभी कृष्ण ने सुदामा के साथ उधर झाँका और बलराम तथा सात्यकि को एक-दूसरे के हृदय से लगकर रोते देख सुदामा से हँसकर बोले, ''देखो सुदामा, भरत-मिलाप हो रहा है। श्रीराम इतने वर्षों बाद अयोध्या लौटे हैं तो भरत ने अपना हृदय उनके सामने खोल दिया है।''

बलराम ने अपने अंतस में देखा। वहाँ प्रायश्चित्त तथा कृष्ण को पीड़ा देनेवाला भाव वाष्पित हो चुका था। कृष्ण की मोहिनी मुसकान कह रही थी कि दाऊ, मैंने आपको क्षमा किया।

''पर हुआ क्या?'' सुदामा के मुँह से घबराहट में निकला।

''होना क्या है। कर रहे होंगे धर्म-चर्चा। धर्म का आनंद ही दूसरा है। बिना आनंदाश्रु के उसका उत्सव पूरा ही नहीं होता।'' कृष्ण हँसते ही जा रहे थे, ''दाऊ, सुदामा गृह-स्मृति के ज्वर से तप्त हो रहे हैं इसलिए अभी जाना चाहते हैं। अब कल आपके यहाँ तो यह आने से रहे। तो मैंने यह तय किया है कि आप सुदामापुरी में जाकर इनके साथ कुछ दिन धर्म-चर्चा कीजिएगा। इनके ज्ञान का कुछ भार आप उठाकर इन्हें भार-मुक्त भी कीजिएगा।''

बलराम ने कृष्ण की ओर देखा—ओह, तुम हो कौन श्याम? तुम्हें समझने के लिए तो बहुत प्रतिभा की आवश्यकता है। तुम तो अप्रत्यक्ष संकेत छोड़ देते हो। तुम सदा शिखरों से बोलते हो। पर्वतों की अंधकारपूर्ण गुफाओं में रहनेवाला यदि तुम्हारी बात न सुन पाए तो उसका एक ही दोष है कि वह ऊँचाई पर नहीं है। तुम्हें अनुभव करने के लिए तो व्यक्ति को अपनी आत्मा को विकसित करना होगा। तब जाकर भी वह तुम्हारी क्षणिक छवि का दर्शन कर पाएगा। तुम मुझे सीधे-सीधे नहीं कह रहे कि मैं सुदामा के घर जाकर कुछ दिन उनसे ज्ञान प्राप्त करूँ। तुम मेरा कार्य सिद्ध करने के लिए भी उसका श्रेय अपने पे्रमी को दे रहे हो। तुम्हारा पार पाना मेरे वश का तो नहीं है, श्याम!

''यह सुदामापुरी क्या है? क्या आप किसी पुरी के स्वामी हैं?'' सुभाष ने चकित होकर पूछा।

''कृष्ण के परामर्श से मैं घर जाकर अपनी पर्ण-कुटीर के बाहर सुदामापुरी की पट्टिका लगानेवाला हूँ।'' सुदामा समझ नहीं पा रहे थे कि उनके स्वर में हँसने की ध्वनि है अथवा रोने की, ''सुभाषजी! आप भ्रमित न हों। मैं वही

दीन-हीन सुदामा हूँ, जिसे आपने प्रथम भेंट में देखा था। आप मेरे इन सुंदर वस्त्रों को देखकर भी भ्रमित मत होइएगा। ये तो मुझे पं. हनुमान प्रसादजी ने भेंट में दिए हैं। द्वारका से मिली भेंट को धारण करना तो मेरा सौभाग्य है।'' सुदामा ने अपने मन के उस स्वर को देखा और उससे मन-ही-मन बोले, 'तू बड़ा पतित है रे! अवसर मिलते ही कुछ भी कहलवा लेता है। इस माध्यम से तू क्या कहना चाहता है? मेरी कुछ तो लाज रखा कर।'

''दाऊ, विदा करने से पहले मैं सुदामा को परिवार के सभी सदस्यों से मिलवाने जा रहा हूँ। आप भी आ रहे हैं न?''

''मैं सात्यकि के साथ आ रहा हूँ, तुम चलो।'' बलराम ने सात्यकि का हाथ पकड़ते हुए कहा, ''मुझे सात्यकि से विश्राम और आलस्य का अंतर जानना है।''

''ऐसे प्रश्नों का उठना शुभ लक्षण है, दाऊ! आप अपने हल से अपनी बुद्धि में दबे प्रश्नों को कंद-मूल के समान खोद-खोदकर सात्यकि और सुदामा के नाम लिख दो। अभी सात्यकि को थकाओ, फिर सुदामा को।'' कृष्ण सुदामा को लेकर आगे बढ़ गए।

''यह तुम्हारी उपस्थिति का ही चमत्कार है कि ऐसे मौलिक प्रश्न उभरकर सामने आते हैं। लगता है, जिनको हमने आज तक जीवन के प्रश्न बनने के योग्य नहीं समझा था, उनकी तुम्हारे पास महान् चर्चा होती है। ''सुदामा सोच रहे थे कि कितना अच्छा होता कि वे तीन ही दिनों में लौटने की अपनी घोषणा नहीं करते तो कुछ और दिन कृष्ण के सान्निध्य में बिताकर अपने को नूतन ज्ञान से समृद्ध करते। पर वे जानते हैं कि ज्ञान अपार है और उनके पास समय सीमित। तो वे अपने सीमित समय का ही लाभ उठाएँ। उन्होंने कृष्ण की ओर देखा। लगा जैसे कोई श्याम वर्णी मेघ धरती का स्पर्श करता हुआ तिरता जा रहा है। तभी उनको ध्यान आया कि उनको चाहनेवाले उसे घनश्याम क्यों कहते हैं। कितने नाम हैं कृष्ण के! जिसको जो रुचे, वह उसी को जप ले। सुदामा ने न चाहते हुए भी कृष्ण को अपनी ओर आकर्षित किया और बोले, ''कृष्ण, यह आलस्य और विश्राम में क्या भेद है?''

''आओ, उद्यान से होते हुए चलते हैं।'' कृष्ण गलियारे की सीढ़ियों से उतरते हुए बोले, ''कुछ पल यहाँ बैठते हैं।''

वे उद्यान के मध्य एक विशाल अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बने भव्य तथा कलात्मक चबूतरे पर जा बैठे। कृष्ण ने वृक्ष का आलिंगन किया। उसको ऐसे पुचकारा जैसे वह उसका अश्व हो और फिर उसके सहारे अपनी पीठ लगाकर प्रसन्न वदन बैठ गए।

''आलस्य है कर्म से पलायन, पुरुषार्थ को टालना। किसान को बीज बोना है और वह समय पर बीज न बोकर उसे टालता रहे तो बुआई का उपयुक्त समय उसके आलस्य के कारण निकल जाएगा। समय पर बीज न बोना आलस्य है।'' कृष्ण ने एक दीर्घ श्वास लिया मानो उद्यान की सुगंध को अपने हृदय में समाना चाह रहे हों।

''और विश्राम क्या है?'' सुदामा ने अभिभूत हो पूछा।

''जो मैं कर रहा हूँ।'' कृष्ण हँसे।

''किसी और उदाहरण के द्वारा समझाओ।'' सुदामा का स्वर कह रहा था कि परिहास मत करो और मुझे समझाओ।

''आश्चर्य है, सुदामा! जो तुम्हारे समक्ष उदाहरण है, उसे छोड़कर तुम दूर के उदाहरणों द्वारा अपनी बुद्धि को तुष्ट करना चाहते हो? सामने गंगा बह रही है और तुम कहते हो कि कुएँ का जल लाकर मेरी प्यास बुझाओ, तो जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम्हें कुएँ का जल प्रिय है तो मैं वह पिला देता हूँ।'' कृष्ण मुसकराए और बोले, ''तुम्हें

किसान के द्वारा समय पर बीज न बोने के उदाहरण से आलस्य का स्वरूप स्पष्ट हो गया?''

''हाँ, हो गया।'' सुदामा ने सिर हिलाया।

''तो आगे सुनो!'' कृष्ण ने पद्मासन लगाया और बोले, ''छह माह बाद हमारे सुदामाजी ऐसे किसान के पास पहुँचे, जिसने समय पर बीज बो दिए थे। वह किसान खेत के बीच में आनंदित होकर बाँसुरी बजा रहा था। तो हमारे सुदामाजी ने उससे पूछा कि भाई, तुम क्या कर रहे हो? तो वह बोला कि मैं करने योग्य सभी कर्म कर चुका हूँ, इसलिए अब विश्राम कर रहा हूँ। तो सुदामाजी ने पूछा कि तुम्हें छह माह पश्चात् विश्राम मिला है? तो वह बोला कि नहीं, मैं तो प्रतिदिन विश्राम करता हूँ। पुरुषार्थ से उत्पन्न क्लांति को मिटाने के लिए आनंदपूर्वक बाँसुरी बजाता हूँ। यही विश्राम है। विश्राम का अर्थ है पुन: पुरुषार्थ करने के लिए शक्ति अर्जित करना।''

''क्या वह किसान केवल मुरली बजाता है?'' सुदामा मुसकराए।

''देखो सुदामा, तुम्हें मुझसे ईर्ष्या हो रही है।'' कृष्ण ने कनखियों से सुदामा की ओर देखा और मुसकराए।

''आपात् स्थिति में वचन भंग करना क्या है? मेरा यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न मेरे मन में ही रह जाता। अच्छा हुआ कि अभी स्मरण आ गया। हमारी पिछली चर्चा की भीड़ में यह खो ही गया था।'' सुदामा सुनने की मुद्रा में कृष्ण के सम्मुख बैठ गए।

''तुम कोई वचन भंग करना चाह रहे हो क्या? और उससे बचने के लिए मुझसे मार्ग पूछ रहे हो?'' कृष्ण ने चुहल की।

''अब तुम जो भी समझो। पर तुम्हारी यह बात मुझे शास्त्र-सम्मत नहीं लगी। इसलिए इसका परिहार अनिवार्य है।''

''शास्त्र ऐसे हैं जैसे पगडंडियाँ या कच्चे-पक्के मार्ग। तुम यदि यह कहो कि मैं पक्षियों की उड़ान को शास्त्र-सम्मत नहीं मानता, क्योंकि वे पगडंडियों और मानव-निर्मित मार्गों पर नहीं चलते तो तुम इसे क्या कहोगे?'' कृष्ण ने अपनी दृष्टि सुदामा पर केंद्रित की।

''इसमें कहने जैसा क्या है, कृष्ण? पगडंडियाँ तो भूमि पर सुरक्षित चलनेवालों ने बनाई हैं।'' सुदामा ने निर्द्वंद्व भाव से कहा।

''तुमने उचित कहा।'' कृष्ण बोले, ''शास्त्र भी भूमि पर एक लीक पर चलनेवाले वर्ग के लिए हैं। कुछ ऐसे साहसी भी होते हैं, जो बँधे मार्ग से न चलकर चलने के लिए एक नया मार्ग बनाते हैं। आरंभ में उनको अनेक चुनौतियों और लोकापवादों का सामना करना पड़ता है। किंतु कालांतर में उनका वही मार्ग शास्त्र का रूप ले लेता है। शास्त्र वस्तुत: है क्या? शास्त्र किसी अनुभवी के द्वारा जीवन को सुचारु रूप से जीने की शैली को प्रकट करता ग्रंथ है, एक मार्गदर्शन है। तो क्या संसार में अनुभवी समाप्त हो गए? क्या काल के अनुसार नवीन शास्त्रों का निर्माण ठहर जाना चाहिए? जीवन सतत प्रवाह का नाम है। उसमें जब तक नए शास्त्र नहीं आएँगे, नए अनुभव के नए अवतार नहीं होंगे तब तक मनुष्यता अनुपयुक्त और अनावश्यक हो गई परंपराओं के मल में गिरकर कुरूप और दुर्गंधपूर्ण होती रहेगी।''

''तो क्या हमारी परंपराएँ विकृत हैं?'' सुदामा के स्वर में आपत्ति थी।

''सुदामा!'' कृष्ण ने अति पे्रमपूर्ण स्वर में ऐसे पुकारा जैसे कोई गुरु अपने जड़बुद्धि शिष्य पर बार-बार समझाने पर भी समझ न आने के परिणामस्वरूप उसे कठोर शब्दों में डाँटना चाहता हो, किंतु फिर उसके अज्ञान से सहानुभूति रखते हुए और अपने क्रोध को पीकर उसे सपे्रम पुकारता हो। कृष्ण आगे नहीं बोले और सुदामा की ओर देखते रहे।

''तुम ऐसे क्या देख रहे हो?'' सुदामा ने संकुचित स्वर में पूछा।

''सुदामा! तुम शब्द-साधक हो। शब्द से भी चूकने लगे?'' कृष्ण ने जैसे चेताया।

''कहाँ चूका?'' सुदामा जैसे अपनी चूक को टटोलने लगे।

''इधर मैंने अपनी बात पूरी की और तुमने उसे बिना समझे, बिना पचाए एक तीर छोड़ दिया कि तो क्या हमारी परंपराएँ विकृत हैं? मैंने ऐसा कब कहा?''

''अभी तो कहा!'' सुदामा ने चकित होकर कहा।

''मैंने कहा कि 'अनुपयुक्त और अनावश्यक हो गई परंपराएँ', न कि परंपराएँ। यदि मैं कहूँ कि दूषित हो चुका विषाक्त प्रसाद फेंक देना चाहिए तो तुम क्या यह कहोगे कि प्रसाद फेंकने की शास्त्र-विरोधी बात मैं क्यों कह रहा हूँ? बात के मर्म को जानने का प्रयास करना चाहिए, सुदामा! मर्म को न जाननेवाला तत्त्व को नहीं जान पाता।'' कृष्ण उठते हुए बोले, ''अब चलें? शेष प्रश्नों के उत्तर जब मैं तुम्हें कुछ दूर तक विदा करने जाऊँगा तब।''

''तब के लिए केवल एक ही प्रश्न पर्याप्त रहेगा और वह है कि किस प्रकार की आपातकालीन स्थिति में संकल्प, व्रत या वचन को भंग किया जा सकता है।'' सुदामा भी उठ गए।

''यह 'किस प्रकार' क्या होता है? आपातकालीन स्थिति का एक ही प्रकार होता है कि उसे टालना असंभव हो। यदि मैं तुम्हें किसी एक प्रकार की आपात स्थिति का उदाहरण दे दूँगा और जब तुम किसी दूसरे प्रकार की आपात स्थिति में गिरोगे तो कहोगे कि यह तो शास्त्र-सम्मत नहीं है। शास्त्र एक सीमा पर जाकर थम जाते हैं। जीवन शास्त्रों से बहुत बड़ा है, सुदामा!'' कृष्ण ने रुककर सुदामा की ओर देखा, ''शास्त्र तो जीवन के अनुभवों की बहुत छोटी, किंतु महत्त्वपूर्ण इकाई हैं, जैसे कि अक्षर-ज्ञान। शास्त्र अक्षर-ज्ञान से अधिक नहीं हैं और अक्षर-ज्ञान का महत्त्व तुम समझते हो तथा एक स्थिति के बाद उनकी निरर्थकता भी समझ में आ जाती है।''

सुदामा चुपचाप चलते रहे।

''मौन क्यों साध लिया, ज्ञानदेव?'' कृष्ण ने छेड़ा।

''तुम इतना सब कैसे सोच लेते हो, कृष्ण?'' सुदामा ने कृष्ण के परिहास पर ध्यान ही नहीं दिया।

''मुझसे कुछ सोचकर कहाँ बोला जाता है।'' कृष्ण ने सहज स्वर में कहा।

''तो बिना सोचे इतने जटिल प्रश्नों के उत्तर कैसे दे देते हो?'' सुदामा के स्वर में अविश्वास था।

''मैं प्रश्नों को अनंत अस्तित्व के कृष्ण-विवर में समर्पित कर खड़ा हो जाता हूँ और वहाँ से वह प्रश्न उत्तर में परावर्तित होकर लौटता है।'' कृष्ण ने एक दीर्घ श्वास लिया।

''ओह, कृष्ण! तुम अलौकिक हो।'' सुदामा के स्वर में स्तुति थी। वे सहज होकर बोले, ''तुमसे मन की बात कह रहा हूँ। मैं तो यह समझता था कि तुमने कहीं विधिवत् शिक्षा तो पाई है नहीं तो तुम जानते ही कितना होगे। किंतु मैं यह देख रहा हूँ कि तुम जो भी कह रहे हो, उससे तो एक नवीन शास्त्र रचा जा सकता है, ऐसा शास्त्र जो अपने आप में अनूठा होगा, अपूर्व होगा, अद्‌वितीय होगा, अनुपम होगा और...और...अपने अंक में संपूर्ण वेदों एवं शास्त्रों को समाहित किए होगा।''

कृष्ण कुछ नहीं बोले। उनके आत्मलीन होकर चलने की शैली से सुदामा को यह लगा जैसे कृष्ण ने उनकी यह बात सुनी ही नहीं।

❑

दस

दारुक ने द्वारका के पूर्वी प्रवेश-द्वार पर रथ रोक दिया। वहाँ सन्नद्ध रक्षक चौकस हो गए। चूँकि रात का समय था, इसलिए आवागमन था ही नहीं। द्वारका के पथ पर भी शांति पसरी पड़ी थी। कृष्ण के सारथि के आकस्मिक आगमन से वहाँ का नायक हतप्रभ हो गया था। वह कृष्ण के साथ बैठे सुदामा में परिचय के संकेत खोज रहा था।

कृष्ण ने सुदामा की ओर देखा। सुदामा अन्यमनस्क-से बैठे थे।

''अभी भी सोच लो, दारुक तुम्हें तुम्हारी पुरी तक छोड़ आएँगे।'' कृष्ण मुसकराए।

कृष्ण का स्वर सुनकर सुदामा की तंद्रा भंग हुई। सुदामा ने देखा कि कृष्ण उनकी ओर देखकर इस प्रकार मुसकरा रहे थे जैसे कोई माँ अपने बच्चे को देखकर उस पर मुग्ध होती है।

''नहीं, कृष्ण! अपनी पुरी को मैं पद-यात्रा के द्वारा ही नापूँगा।'' सुदामा उठने के प्रयास में लड़खड़ाए और कृष्ण के आगे बढ़कर सँभालने से पहले ही सँभल गए। उन्होंने सीढ़ियों के पास लगे डंडे को पकड़ा और रथ से नीचे उतर गए।

''किस चिंतन में हो, सुदामा?'' कृष्ण भी नीचे उतर आए।

सुदामा मौन रहे । वे दोनों पैदल चलने लगे।

''सोच रहा हूँ कि यदि सुमति मुझे तुम्हारे पास भेजने का इतना आग्रह न करती तो मैं संकोच के कारण तुम्हारे पास कभी आ ही नहीं पाता।'' सुदामा ने मौन भंग किया।

''तुम्हें संकोच किस बात का था?'' कृष्ण ने पूछा।

''यह बात नहीं है कि तुम्हारे पास आने में ही संकोच था। संकोच मेरी प्रकृति का एक अंग बन चुका था।'' सुदामा जैसे आत्मविश्लेषण करते जा रहे थे।

''सुदामा, मेरे पास आने में जो संकोच, भय, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ और अहंकार लेकर आता है, वह अपने लिए स्वयं ही बाधा खड़ी करता है। मेरे पास तो जो जैसा है वैसा ही चला आए, जैसे कि तुम आए। तुम मुझसे मिलने आए थे, केवल मुझसे। तुमने बीच की सारी सामाजिक मान्यताओं व औपचारिकताओं की भीतों को ढहा दिया और तुम यथावत् मेरे पास आए।'' कृष्ण ने अपनी बाँह सुदामा के कंधे पर रख दी।

''मैं नहीं आया, तुम्हारी भाभी ने भेजा।'' सुदामा हँसे। उनकी हँसी में भावुकता थी और स्वर में उसकी अनुरणन ध्वनि, ''वह पगली तो तुम्हारी भक्त है।''

''मेरे भक्त तथाकथित सामान्य जनों को पागल ही लगते हैं। किंतु उनका पागलपन दिव्य होता है। उनके पागलपन में बुद्धि का नाश तो होता ही नहीं वरन् वह सात्त्विक हो जाती है तथा उस पागल की आत्मा विकासोन्मुख होती है।''

''वह कहती है कि तुम इस धरा धाम में श्रीनारायण का अवतार हो।'' सुदामा ने जैसे कृष्ण की बात सुनी ही नहीं। कृष्ण बीच में बोल पड़े थे, इसलिए सुदामा रुक गए थे और कृष्ण की बात पूरी होते ही वे अपने प्रवाह में बोलने लगे, ''तुम्हारे विषय में...विषय क्या, तुम्हारी लीलाओं की, तुम्हारे प्रेमियों से जाने कैसी-कैसी कथाएँ सुनकर आती हैं। जिसके यहाँ वह काम करने...'' सुदामा ने तत्काल अपनी बात में संशोधन किया, ''...उसकी एक सखी

है, जिसका नाम मीनू है। वह तुम्हारे रास की गोपियों में से एक रही होगी। उससे वह तुम्हारी लीलाओं की इतनी कथाएँ सुनकर आती है कि तुम भी सुनो तो कहो कि अच्छा, यह मैं हूँ! मैंने सुमति से पूछा कि तुम कभी कृष्ण से मिली नहीं, कभी उसका चित्र नहीं देखा-मात्र उसकी कथाएँ सुनी हैं।'' सुदामा ने मुसकराकर कृष्ण की ओर देखा, ''अन्यथा न लेना मित्र! पता नहीं उन कथाओं में कितना सत्य है और कितना तुम्हारे भक्तों ने कल्पना का समावेश किया है; पर वह उन कथाओं से ही तुम्हारी अनन्या भक्त बनी हुई है। कहती है कि मैं इसे संसार का सबसे सौभाग्य मानती हूँ कि मैं उन सुदामा की पत्नी हूँ, जो भगवान् श्रीकृष्ण के साथ खेले हैं। वह कहती है कि केवल इसी एक भाव के रहते उसे न निर्धनता सताती है और न भविष्य की चिंता ही व्यापती है। उसका कहना है कि तुम सर्वज्ञ हो, अंतर्यामी हो। तुमने अपनी भौतिक अनुपस्थिति में भी द्रौपदी की लाज रखी। तुमने कुब्जा पर कृपा की। ऐसी करनी परमात्मा के अतिरिक्त कोई कर ही नहीं सकता। तुम्हारी कृपाओं की कथाएँ उसके पास भरी पड़ी हैं। वह कहती है कि तुम वही हो जिसने ग्राह से गज के प्राण बचाए। तुम वही हो जिसने प्रह्लाद को अपनी गोद में बिठाया और वह तो कई पग आगे बढ़कर यह भी कहती है कि तुम वही श्रीराम हो और इस समय श्रीकृष्ण के रूप में सर्वकलासंपन्न होकर अवतरित हुए हो। तुमने ही शबरी के जूठे बेर खाए थे और निषादराज गुह तथा निर्वासित सुग्रीव को अपना मित्र कहकर गले से लगाया था। वह तुम ही थे, जिसने...''

''...सावधान सुदामा !'' कृष्ण ने ठहाका लगाया, ''यह संक्रमण का रोग है। कहीं ऐसा न हो कि सुदामापुरी तक पहुँचते-पहुँचते तुम मेरे भक्त हो जाओ। भाभी द्वारा कही मेरी इन कथाओं से अपनी रक्षा करो। ऐसा न हो कि एक दिन तुम अपना हृदय खँगालना आरंभ करो तो पाओ कि वहाँ तुम्हारे ज्ञान के बदले भगवान् श्रीकृष्ण बैठे हैं।''

''बैठे तो तुम अब भी मेरे हृदय में हो, परंतु भगवान् के रूप में नहीं, ज्ञान के अक्षय और मौलिक भंडार के ज्ञाता के रूप में। मेरे अनुसार तुम्हारे समान ज्ञानी इस धरती पर न कोई दूसरा हुआ है और न कभी होगा।''

''यह तो अतिशयोक्ति हो गई।'' कृष्ण बोले।

''अतिशयोक्ति वह है, जो मेरी पत्नी तुम्हारे विषय में कहती है—श्रीहरि का अवतार।'' सुदामा हँसे।

''वह अतिशयोक्ति नहीं है, वह भावदशा है। उसे श्रद्धा भी कह सकते हो। श्रद्धा में असंभव कुछ है ही नहीं। मैं तुम्हें एक लघु-कथा सुनाता हूँ। उससे तुम समझ जाओगे कि भाव क्या होता है। एक बार दो साधक तपस्या कर रहे थे। नारद उधर से निकले तो पहले साधक ने पूछा कि आपका तो निर्बाध रूप से श्रीहरि के पास आना-जाना है, तो हमें बताइए कि जब आप उनके पास मिलने गए तो वे क्या कर रहे थे?''

सुदामा ने पुलिया देखी। वे उसकी ओर आकर्षित हुए और उस पर बैठ गए। कृष्ण भी सुदामा के साथ बैठ गए।

''आगे कहो।'' कृष्ण को मौन देख सुदामा बोले।

''नारद बोले कि मैंने वह देखा, जो अपूर्व था। श्रीहरि सूई के छेद में से कभी हाथी को निकाल रहे थे तो कभी ऊँट को। यह सुनकर पहला भक्त बोला कि नारदजी, आप व्यर्थ की बातें करके क्यों मेरी साधना का समय नष्ट कर रहे हैं। नारद ने दूसरे साधक की ओर देखा। वह तो प्रसन्न मुख लिये आकाश की ओर देख रहा था। उसने जैसे कुछ सुना ही नहीं था। नारद ने उससे पूछा कि तुम्हें क्या हुआ, भाई? तो वह बोला, 'मेरे प्रभु के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। अभी आपने जो बताया, मैं उस दृश्य को अनुभव कर रहा हूँ।' तो सुदामा, इसे कहते हैं श्रद्धालु चित्त। वहाँ तर्क तो है ही नहीं।''

''श्रद्धा की एक कथा मुझे भी स्मरण हो आई। बाद में सुनाऊँगा। पहले यह बताओ कि श्रद्धा का जो उदाहरण तुमने दिया, क्या वह अंधविश्वास नहीं है?''

''जिस भाव अथवा कृत्य में आत्मा का विकास हो, वह अंधविश्वास नहीं होता। हम गंगा और गऊ को माता मानते हैं, तब तो यह भी अंधविश्वास होना चाहिए। किंतु यह श्रद्धा है। इस भाव के कारण हमारी आत्मा ऊर्ध्वलोक की यात्रा करती है। वह अपने विकास और आत्मजागरण की यात्रा में एक पग और आगे बढ़ती है। गंगा और गाय को माँ का सम्मान देना इस बात का प्रमाण है कि हम कृतघ्न नहीं हैं। प्रकृति ने जो हमें दिया, हम उसके प्रति अपना आभार प्रकट कर रहे हैं और उस अहोभाव को प्रकट करने के लिए जो हमारे पास अधिकतम श्रद्धा-संपन्न शब्द है, वह माँ है और पिता है; तो हमारी श्रद्धा ने, हमारी कृतज्ञता की भावदशा ने हमें संवेदनशील बनाया और एक संवेदनशील चित्त ही परमात्मा को अनुभव कर सकता है। ये हमारी सनातन परंपराएँ हैं। इन परंपराओं से ही हम हैं और ये ही हमारी अस्मिता हैं। मैं इन परंपराओं को ढहाने के लिए नहीं कहता।'' कृष्ण ने शून्य से दृष्टि हटाकर सुदामा की ओर देखा और बोले, ''तुम अपनी भाव-कथा भी सुनाओ। फिर हम विदा लेंगे। तुम्हारी मध्य रात्रि तुम्हारी बाट जोह रही है।''

''हाँ...'' सुदामा जैसे किसी दूसरे लोक से लौटे और बोले, ''मेरी कथा वहाँ से आरंभ होती है, जहाँ से तुम्हारी समाप्त होती है।...नारद आगे बढ़े। वहाँ दो भक्त श्रीहरि का जाप कर रहे थे। नारद उनसे बचकर जाना ही चाह रहे थे कि पहले भक्त ने उनको पुकारा, 'अरे नारदजी! इस प्रकार मुख फेरकर कहाँ जा रहे हैं? इधर आइए! आपसे कुछ पूछना है।' जब नारद उसके पास पहुँचे तो वह बोला, 'आप जब पिछली बार आए थे तो मैंने आपसे कहा था कि आप श्रीहरि से पूछकर आइएगा कि मुझे उनके दर्शन प्राप्त होने में कितना समय लगेगा? तो आपने पूछा क्या?' नारदजी बोले, 'पूछा भाई! और उन्होंने कहा कि जिस वृक्ष के नीचे बैठकर तुम जाप कर रहे हो, जितने पत्ते उस वृक्ष में हैं, तुम्हारे उतने जन्म अभी शेष हैं।' यह सुनकर वह भक्त तो अपने साधन-पूजन का सामान फेंक, कुपित हो यह कहकर चलता बना कि जब इतने जन्म प्रतीक्षा करनी है तो इस जन्म को तो सुखों का भोग करके बिताऊँ।' तब नारदजी दूसरे भक्त के पास गए और बोले कि भाई, तुमने कुछ पूछा तो नहीं था। पर मैं तुम्हारे लिए भी पूछ आया और बताते हुए भय लग रहा है, क्योंकि जिस वृक्ष के नीचे तुम बैठे हो वह तुम्हारे साथी के वृक्ष से बहुत विशाल है। उसके पत्ते बहुत छोटे होने के कारण संख्या में भी अधिक हैं...और श्रीहरि ने कहा है कि जितनी पत्तियाँ इस विशाल वृक्ष में हैं, उतने जन्मों के बाद तुम्हें दर्शन होंगे।' यह सुनकर वह भक्त आनंद से नाचता हुआ बोला कि मेरे प्रभु कितने दयालु हैं। इतने जन्म तो उनका भजन-कीर्तन करते हुए देखते-ही-देखते कट जाएँगे...और कथा कहती है कि वह तत्काल ही स्वयं को उपलब्ध हो गया।''

''कथा सत्य कहती है।'' कृष्ण ने निष्पत्ति के रूप में कहा।

सुदामा पुलिया से उठे। उन्होंने कृष्ण की ओर अपने दोनों हाथ बढ़ा दिए। कृष्ण ने उनको अपनी भुजाओं में भर हृदय से लगा लिया।

''कृष्ण, तुम हो तो आकर्षण का केंद्र।'' कृष्ण से अलग होते हुए सुदामा सजल नेत्रों सहित हँसते हुए बोले, ''कभी-कभी लगता है कि कहीं मेरी पत्नी सत्य ही तो नहीं कहती कि तुम श्रीराम का पुनरावतरण हो।''

कृष्ण कुछ नहीं बोले, अपने नयनों से सुदामा को करुणापूर्वक देखते रहे।

''एक अंतिम बात और बता दो। बहुत बार सोचा कि पूछूँ। जिन महात्मा से मैंने जलपोत पर कुछ माँगा था, वे कौन थे?'' सुदामा ने सहज रूप से जिज्ञासा की।

''पराशर, पुत्र कृष्ण द्वैपायन भगवान् वेदव्यास!''

सुदामा पर जैसे किसी विद्युत् का आघात लगा। कृष्ण का स्वर जैसे उनके कानों नहीं वरन् उनकी आत्मा ने सुना ।

‘‘और घर तक की तुम्हारी मौन-यात्रा आनंदपूर्ण हो। भाभी को मेरा प्रणाम निवेदित करना और बच्चों को मेरी ओर से पुचकारना।’’

सुदामा देखते रहे कि कृष्ण मुड़ गए हैं और कुछ ही क्षणों में वह प्रतीक्षा में खड़े अपने रथ पर आरूढ़ थे।

कृष्ण के जाते ही सुदामा को घर तक का एक लंबा मार्ग दिखाई दे रहा था। भगवान् वेदव्यास से वे मिलकर आए है, उनसे कुछ माँगकर आए हैं। वे अपनी मूर्खता पर खीजे। क्या वे कृष्ण से उन महात्मा का पूर्व परिचय नहीं पा सकते थे? अपने अज्ञान में उन्होंने व्यासजी की अभ्यर्थना भी नहीं की। वे एक साधारण साधु से भी मिलते हैं तो उनमें शिष्टाचार होता है और ऋषियों के शिरोमणि भगवान् वेदव्यास से वे रूखे-सूखे होकर मिले। वे तो उनसे एक अपरिचित पथिक की भाँति संवाद कर आए।

उन्होंने आकाश की ओर हाथ उठा दिए और मन-ही-मन बोले, ‘पिताजी, कृष्ण की कृपा से आपका सुदामा भगवान् कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासजी के न केवल दर्शन करके आया है अपितु उनके पावन हाथों के स्पर्श सहित वरदान प्राप्त कर लौटा है। यदि आप आज भौतिक रूप से हमारे बीच होते तो मैं अनुभव कर रहा हूँ कि आपकी आत्मा यह सुनकर आपकी देह को कितना आनंदित करती। इस समय आप जिस लोक में भी हैं, वहीं कृष्ण-कृपा से आपको इस आनंद की प्राप्ति हो। हरि ओउम् तत् सत्।

उनका मन अपनी पत्नी के प्रति हार्दिक आभार से परिपूर्ण था और सहसा उनके पग आत्मग्लानि का भार लिये उठने लगे। वे सोचने लगे—सुमति ने उनको इतनी सुंदर यात्रा के लिए पे्ररित किया। उसने उनकी आर्थिक स्थिति जानते हुए भी उनको अपने पति के रूप में चुना। उसने केवल उनका ज्ञान देखा, उनकी विद्या के प्रति भक्ति देखी, उनका कुल देखा। उसने वह नहीं देखा जो प्रत्येक कन्या अपने भावी पति में देखती है—धन। उसने धन नहीं देखा। संतान के जन्म से पूर्व तो उसको दरिद्रता छू भी नहीं गई थी। पर अब...उसका कहना उचित है कि वह ‘माँ’ भी है। तो क्या सुदामा ‘पिता’ नहीं हैं?

‘नहीं सुदामा, तुम पिता कहाँ हो?’ सुदामा से चर्चा करने उनका आत्मिक स्वर प्रकट हो गया।

‘क्यों, मैं पिता कैसे नहीं हूँ?’ सुदामा की अकड़ बोली।

‘तुम जनक हो अपने बच्चों के, सुदामा। तुम उनके जन्म का आधार मात्र बने हो। पिता वह होता है, जो अपनी संतान की पालना करता है। तुम पालक तो कभी बन ही नहीं पाए। जनक तो पशु भी बन जाते हैं।’ स्वर ने बहुत ही पे्रमपूर्वक होकर सुदामा को धिक्कारा, ‘तुम स्वयं सोचो कि तुम्हारे ज्ञान की भूख ने तुम्हें अपने परिवार के भूखे पेटों की ओर कभी देखने ही नहीं दिया। तुम योग्य थे, पर तुमने किसी की चाकरी को स्वीकार ही नहीं किया। तुम्हें सदा यही लगा कि तुम जहाँ चाकरी करोगे, वहाँ तुम्हारे शीर्ष पदों पर अज्ञानी व जड़बुद्धि जन बैठे होंगे और तुम्हें उनकी अज्ञान से भरी आज्ञाओं का पालन करना होगा। तुम्हें वह सदा दिखा, परंतु अपने परिवार की दुर्दशा कभी नहीं दिखी। कृष्ण ने तुम्हें तुम्हारी निर्धनता का सार समझा दिया, न कि तुमने जीवन में संतुलन नहीं बनाया। तुम एक ही दिशा में बढ़ते गए।’’

सुदामा का ध्यान कृष्ण के अंतिम संदेश की ओर गया : घर तक की तुम्हारी मौन-यात्रा आनंदपूर्ण हो। भाभी को मेरा प्रणाम निवेदित करना और बच्चों को मेरी ओर से पुचकारना।...

वे तो यह भूल ही चुके थे कि उन्होंने यह संकल्प किया है कि वे अपनी वापसी यात्रा को मौन में करेंगे। यदि कृष्ण उनको न चेताते तो आवश्यकता पड़ने पर वे राहगीरों से संवाद भी कर लेते। इसका अर्थ है कि यह अंतर्यामी कृष्ण जान चुके थे कि वे अपना संकल्प भूल चुके हैं। कृष्ण का दूसरा संदेश है कि वे सुमति को उनका प्रणाम निवेदित

करें। तो यह तय रहा कि वे अपना मौन कृष्ण के प्रणाम से ही खोलेंगे। तीसरे में उन्होंने बच्चों को पुचकारने की बात कही।...कितना सुंदर होता कि कृष्ण उनको चलते समय थोड़ा धन देते हुए यह कहते कि यह मैं बच्चों के लिए दे रहा हूँ, इसलिए तुम मना मत करना और बच्चों को पुचकारना। कृष्ण, तुमने मुझे रिक्त हस्त ही विदा कर दिया। तुम चाहते तो तुम्हारे एक संकेत मात्र से ही मेरी सारी निर्धनता समाप्त हो जाती। माना कि संसार पारखी नहीं है। पर तुम तो सब जानते हो कि किसका कितना महत्त्व है। तुम तो मेरी योग्यता का मूल्यांकन कर सकते हो। तुमसे कुछ भी देते न बना!

'छि! छि! छि! धिक्कार है सुदामा, तुम पर। तुम स्वयं को ज्ञानी सुदामा कहते हो! मेरी दृष्टि में तो तुम कृतघ्न सुदामा हो।' सुदामा के आत्मिक स्वर ने सुदामा को हेय दृष्टि से देखा और खिन्न होकर बोला, 'कृष्ण ने तुम्हें प्रेम दिया, ज्ञान दिया, आदर दिया, अपना सान्निध्य दिया और तुम कहते हो कि उसने तुम्हें रिक्त हस्त विदा किया। कृष्ण ने तुम्हें माँगने का अवसर दिया। तुम्हें भगवान् वेदव्यास के निकट कुछ भी माँगने के लिए भेजा। भगवान् ने तुमसे कहा भी था कि ऐश्वर्य माँग लो। पर तुम...और अब तुम कहते हो कि कृष्ण ने तुम्हें कुछ दिया नहीं। जहाँ तक मेरी जानकारी है कि कृष्ण ने तुम्हें जो दिया, वह जगत् में आज तक किसी को नहीं मिला। कृष्ण ने अपने अश्रुओं से तुम्हारे चरण पखारे। कृष्ण की करुणा का सागर तुम पर पूरा आ गिरा। तुम्हारा अस्तित्व एक बूँद का भी नहीं है और उस बूँद पर नाचता हुआ महासागर आ गिरा। और बूँद कहती है कि सागर ने मुझे दिया ही क्या? धिक्कार है बूँद पर!'

सुदामा लज्जित हो गए। उसका सिर झुक गया। सुदामा को अपनी सोच के मल से दुर्गंध आ रही थी।

'हे कृष्ण! मुझे क्षमा करना। मैं तुम्हारे प्रति उलाहने से भरा। तुम तो सर्वज्ञ हो, अंतर्यामी हो। जानते हो कि मैं यह नहीं कहना चाहता था। यह कोई और कह गया, कृष्ण। मेरे ही मन का मल कह गया। तुम सब जानते हो। तुम्हीं मुझे सँभालो, कृष्ण! मैं तुम्हारे शरणागत हूँ। मैं इन दिनों तुम्हारे साथ मित्रवत् व्यवहार करता रहा। अपने अहंकार में मैं तुम्हारी महिमा को जानने का प्रयास ही नहीं कर पाया।'

सुदामा ने अनुभव किया कि उसके सम्मुख भगवान् वेदव्यास खड़े हैं और उनके पावन नेत्र उनको आशीर्वाद देते हुए कह रहे हैं—सुदामा, तुम कृष्ण का रहस्य तो जान ही नहीं पाओगे; क्योंकि यह तत्त्व जानने से परे है। हाँ, तुम कृष्ण में एकरूप होकर कृष्ण ही हो सकते हो। फिर जानने जैसा कुछ रह नहीं जाएगा। तुम पर कृष्ण-कृपा उस दिन से ही बरसनी आरंभ हो गई थी, जिस दिन उन्होंने तुम्हें अपना कह दिया था।'

'कृष्ण को अनुभव करने के लिए मैं क्या करूँ, भगवन्? आपने मुझे कृष्णमय होने का आशीर्वाद दिया है।' सुदामा का हृदय बोला।

'तुम ज्ञानी हो। ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति है। प्रत्येक अवस्था की पराकाष्ठा ही भक्ति है। तुम ज्ञान की ऊर्जा को भक्ति की ऊर्जा में परिवर्तित कर दो। शेष कृष्ण सँभाल लेंगे।'

सुदामा ने देखा कि भगवान् वेदव्यास अंतर्धान हो गए थे। सुदामा की बुद्धि तुरंत आ धमकी और यह शोध करने लगी कि यह उनका भ्रम था या कुछ और...।

सुदामा ने अपने आनंद का सोंटा उठाया और रसोई की ओर बढ़ रहे कुत्ते को हड़काने के समान अपनी बुद्धि को दूर तक खदेड़ते ले गए। बुद्धि को दुत्कारने और खदेड़ने के अपूर्व आनंद को सुदामा ने जीवन में पहली बार अनुभव किया था। वे अनुभव कर रहे थे कि वे कुछ साहसी हो गए हैं। उन्होंने जाना कि अपनी बुद्धि के अनुचित हस्तक्षेप को रोकनेवाला ही तो सबसे बड़ा साहसी होता है। उनकी चेतना ने कुछ गाया—ॐ नमो भगवते

वासुदेवाय।... और वह इसका जाप ही करती चली गई और आनंद में नाच उठी।

सुदामा चौंके कि यह उन्होंने कहाँ सुना? तभी उनको स्मरण हो आया कि उस जलपोत पर अपने अहोभाव को प्रकट करने के लिए उन ब्रह्मचारियों ने इस मंत्र का उच्चारण किया था। तो क्या वे कृष्ण को श्रीहरि का अवतार स्वीकार करके उनकी स्तुति करते हैं? वे भगवान् वेदव्यास के शिष्य कृष्ण को भगवान् मानते हैं और स्वयं व्यासजी ने भी कृष्ण के विषय में जो कहा था, वह अलौकिक था। सहसा सुदामा के मन के सरोवर की गहराइयों में विचारों के पत्थरों के नीचे दबी असमंजस की एक लकड़ी उठती हुई उनकी बुद्धि पर तैरने लगी—उन ब्रह्मचारियों को मेरा नाम कैसे ज्ञात हुआ?

'हे कृष्ण! तुम एक हल नहीं होनेवाली पहेली के समान मेरे समूचे व्यक्तित्व पर छा गए हो।' सुदामा की बुद्धि कराह रही थी।

❑

प्रात:काल सुदामा उस चबूतरे के सामने खड़े थे, जहाँ उनकी भेंट अघोरी से हुई थी। वे उस स्थान को देख रहे थे, जहाँ अघोरी बैठा था और उसके साथ वे। अघोरी ने कृष्ण के विषय में जो कहा था, वह असाधारण वक्तव्य था। सुदामा ने उसे अघोरी का प्रलाप मान लिया था। वे अनुभव कर रहे थे कि वे प्रत्येक उस स्थान पर चूकते रहे, जहाँ से वे अपार पा सकते थे। वे चाहते तो अघोरी के पास बैठकर कृष्ण को जानने की यात्रा पर कुछ पग बढ़ा सकते थे। उनके मन में यह भी क्यों न आया कि उनको एक ऐसा पात्र मिला है, जो कि उनके उस मित्र को जानता है, जिससे मिलने वे लगभग बीस वर्षों के बाद जा रहे हैं और इतने वर्षों के अंतराल में व्यक्ति में कितना कुछ बदल जाता है। स्मृतियाँ या तो मिट जाती हैं या धुँधली पड़ जाती हैं।...और वह अघोरी तो कृष्ण को गहराई से जानता था। वह कृष्ण रूपी सागर में गोता लगानेवाला सिद्ध था । उनका सौभाग्य उन्हें सिद्धों के पास ले जाता रहा और उनका अहंकार उनसे चार पग आगे बढ़ उन्हें सिद्धों से चुकाता रहा। उनका अहंकार! उनके ज्ञान का अहंकार! उनके शब्दों का अहंकार! उनको सदा यही लगा कि वे सामनेवाले से अधिक जानते हैं। कहनेवाला अनुभवी हो तो सुदामा को और पीड़ा होती थी कि वे परम ज्ञानी हैं। शास्त्रों के ज्ञाता और मर्मज्ञ हैं तो किसी अनगढ़ व्यक्ति को अनुभव की संपदा कैसे मिल सकती है! प्राथमिकता की सूची में तो उनका नाम ही होना चाहिए। परमात्मा अपना अनुभव देते समय उनकी शैक्षिक योग्यता और शास्त्रीय ज्ञान को तो देखेगा ही। वे इस बात को कभी स्वीकार ही नहीं कर सकते थे कि एक असभ्य अघोरी आँखों देखी कह रहा है और वे कानों सुनी कह रहे हैं। वह कथन, जिन्हें सुदामा ने कहीं से पढ़ लिया है, कहीं से सुन लिया है और उसे अपना ज्ञान मान लिया है। उनके शब्दों के कोलाहल ने उन्हें अनुभवी जनों का संगीत सुनने नहीं दिया। वे अनुभव कर रहे थे कि अहंकारी व्यक्ति के पास शास्त्रों के प्राणवान् सूत्र भी निष्प्राण हो जाते हैं। उनमें प्राण-ऊर्जा तो व्यक्ति का अनुभव ही भरेगा। उन्होंने अपने अंतर को टटोला तो अनुभव के नाम पर वे अपने धन की निर्धनता से भी अधिक निर्धन हैं।...सहसा उनके मन में उत्साह की एक लहर उठी। उनको लगा कि वे इन दिनों अनुभवी और चिन्मय महापुरुषों से मिले हैं। उनका मिलना, उनका संस्पर्श, उनका आशीर्वाद, उनका सान्निध्य व्यर्थ नहीं जाएगा। वे अवश्य उस अनुभव को प्राप्त करेंगे, जो जीवात्मा का काम्य है।

चलते-चलते सुदामा कल्लू कुम्हार की कुटिया के निकट आ गए। उन्हें अपना वचन स्मरण हो आया कि वे वापसी में उसका आतिथ्य स्वीकार करेंगे।

'यों ही चबूतरों, पुलियाओं और कल्लू कुम्हारों की कुटियाओं पर रुकते चलोगे तो पहुँच लिये घर।' उनकी बुद्धि

किसी मक्खी के समान फिर उनके मन पर आ बैठी, 'इस समय तुम्हें अपने घर पहुँचने की शीघ्रता करनी चाहिए।'
'मेरा वह वचन?' सुदामा ने उस मक्खी को हाथ से उड़ाया।
'इस प्रकार के औपचारिक वचन देना तो संसारियों की रीति है।' वह मक्खी फिर आ बैठी।
'किंतु भक्तों की नहीं।' सुदामा ने उस मक्खी पर अपने भाव का एक थपेड़ा मारा।
'तुम भक्त हो क्या?' हठी मक्खी ने उसे चिढ़ाया।
'हाँ!' सुदामा ने आवेश में मक्खी को उड़ाया।
'किसके भक्त हो?' मक्खी ने जैसे न पकड़े जाने पर सुदामा को चिढ़ाया।
'अपने भक्तों से प्रेम करनेवाले करुणानिधि भगवान् श्रीकृष्ण का।' सुदामा के स्वर में आनंद का हिलोरा था।
'पर वे तो तुम्हारे मित्र हैं।' उस हिलोरे में डूबती, हाथ-पैर मारती और अंतिम श्वास लेती मक्खी धीरे से भिनभिनाई।
'थे। अब वे मेरे प्रभु हैं। उनका भाव धरते ही मैं रूपांतरित होने लगता हूँ। मुझे ज्ञान नहीं, रूपांतरण चाहिए।' सुदामा ने अपना पैर कल्लू की कुटिया में रखा।

बुद्धि के मल से जनमी उस मक्खी के प्राण निकल चुके थे।

सुदामा ने देखा कि कल्लू मिट्टी के लोंदे से खेलते हुए कुछ गुनगुना रहा था। उसके गुनगुनाने का भाव बता रहा था कि वह कोई भजन गा रहा है। अपने गुनगुनाने में वह इतना मगन था कि उसे यह पता ही नहीं चला कि कोई उसकी कुटिया के भीतर उसके निकट आ खड़ा हुआ है। उसकी पत्नी उसकी ओर पीठ किए दूध बिलो रही थी। सुदामा ने अपने कान उन शब्दों को समझने में लगाए, जिन्हें कल्लू गा रहा था। वे उस भजन की ध्रुव पंक्ति सुन पा रहे थे, जिसे वह दोहरा रहा था—

''जब तुम हो कृपानिधान,
तब मैं क्यों हारूँ नाथ!''

सुदामा ने अनुभव किया जैसे कृष्ण ने उनको छूकर जीवन देखने की नूतन दृष्टि दे दी है। वे अपने ऊपर सतत कुछ बरसता हुआ अनुभव कर रहे हैं। लग रहा है जैसे उनका नया जन्म हो रहा है। कृष्ण तो पारस हैं, जिसे छू लें वही सोना हो जाए।
'पर सोना मिला कहाँ?' सुदामा के मन में कोई स्वर पुकार उठा।
'क्या सोना इतना महत्त्वपूर्ण है?'' सुदामा ने उस स्वर को दयादृष्टि से देखा।
'हाँ, अति महत्त्वपूर्ण है; अपितु मैं तो कहूँगा कि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।' स्वर ने जैसे और भी दयनीय दृष्टि से सुदामा को देखा और बोला, 'मुझमें झाँको। मैं हूँ लालसा। मेरी ओर देखकर बात करो। क्या कृष्ण के पास तुम ज्ञान पाने गए थे? अध्यात्म के रहस्य जानने गए थे? या प्रेम की व्याकुल हूक तुम्हारे मन में उठ रही थी और वह तुम्हें अपने प्रवाह में द्वारका पटक आई? नहीं ना! तुम गए तो इसलिए थे कि कृष्ण तुम्हें याचना में थोड़ा धन प्रदान कर दें और तुम्हारी गृहस्थी की डूबती नौका को किनारा मिल जाए। बोलो, इसीलिए गए थे न? वह तो तुम्हारा अहंकार आड़े आता रहा और तुम कुछ माँग नहीं पाए। किंतु यदि कृष्ण कुछ देते तो तुम लपककर ले लेते।'
सुदामा का सिर झुका तो फिर झुका ही रहा।
'अब बोलते क्यों नहीं!' लालसा ने लताड़ा।
'तुम क्यों मेरे पीछे पड़ी हो। मैंने धन की कोई याचना की क्या?' सुदामा जैसे झल्लाए।
'परंतु संकेत देने में भी कोई कमी नहीं छोड़ी।' लालसा हँसी।

'पर कृष्ण ने धन दिया क्या!'

'फिर दिया न उलाहना!' लालसा अपनी विजय पर खिलखिलाकर हँसी, 'तुम कुछ ही समय पूर्व यह सोच रहे थे कि मैं प्रभु के प्रति कोई उलाहने का भाव नहीं रखूँगा और...'

'मूर्खे! यह उलाहना नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि मैंने ऐसा कुछ संकेत दिया ही नहीं। यदि ऐसी बात होती तो कृष्ण मुझे रिक्त हस्त विदा न करते।'

'फिर दिया उलाहना।' लालसा ने ताली बजाई, 'चलो, छोड़ो उलाहनेवाली बात। यह बताओ कि अब क्या करोगे?'

'वही जो कृष्ण करवाएँगे।' सुदामा समर्पण के भाव में बोले।

'कृष्ण क्या करवाएँगे?' लालसा ने चुटकी काटी।

'यह तो कृष्ण ही जावें!'

'तो पूछो न कृष्ण से!' लालसा ने चिढ़ाया।

आहत सुदामा ने दु:खी मन से आँखें बंद कीं और कृष्ण पर अपनी चेतना को केंद्रित किया। उन्होंने देखा कि कृष्ण साक्षात् उनके चिदाकाश में प्रकट हो गए हैं। वे मुसकराकर सुदामा की ओर देख रहे हैं। वे चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु के रूप में दिखाई दे रहे हैं।

'सुमति ही सही कहती थी कि आप तो वही नारायण हैं।' सुदामा विस्मय से भर गए।

'यह तुम्हारे शिथिल और निर्धन मन की कल्पना है, सुदामा! और इस कल्पना की अग्नि में तुम्हारी पत्नी घी डाल रही है। इन वायवीय भ्रमों से बचो।' लालसा अपने साथ अपने पे्रमी तर्क को ले आई। तर्क बोला, 'कृष्ण एक साधारण ग्वाला था। अब एक शक्तिशाली साम्राज्य का सर्वेसर्वा है। इतना ही मानो। तुम्हारी पत्नी तो भावुक है। उसका रोग दूर करना तो दूर रहा, तुम स्वयं ही उससे संक्रमित होते जा रहे हो।'

'हे दु:खभंजन!' सुदामा की चेतना के हाथ जुड़ गए, 'ज्ञान का कुछ लाभ मुझे हुआ हो, इसका तो मुझे ज्ञान नहीं, किंतु इस ज्ञान से मेरी हानि अपार हुई है। इस ज्ञान ने मुझे ऐसा भरमाया कि अनुभव की यात्रा ही नहीं करने दी। यदि किसी ने मुझसे आँखों देखी बात भी कही तो मैंने उसकी उपेक्षा करते हुए यही कहा कि मैं तुमसे अधिक जानता हूँ। आज मैं इस बात को अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा वह जानना आरोपित था, मेरी ओढ़न थी।'

सुदामा ने देखा कि नारायण रूप भगवान् श्रीकृष्ण की मुसकान और फैल गई है। मानो वह पूछ रही हो कि और क्या हानि हुई, सुदामा?

'हे कृष्ण! ये विचार मुझे सताते हैं। विचारों के कौए मेरे हृदय की कोयल को कूकने ही नहीं देते। एक कौआ हो तो उसे उड़ा भी दूँ। यहाँ तो कौओं की सेना है। एक कौए की कर्कश ध्वनि मेरी कोयल के प्राण ही कँपा देती है, तो जब ये समूह में कोलाहल करते होंगे तो मेरी कैसी दुर्गति होती होगी, यह तुम ही जान सकते हो।' सुदामा का स्वर जैसे हताश होकर नतमस्तक हो गया।

'विचारों को सहयोग मत करो। उनको उत्तर देना उनको पोषण देना है। तुम अपने हृदय की सुनो। सारा ध्यान अपनी कोयल की कूक पर लगा दो। कुछ समय बाद एक स्थिति ऐसी आएगी कि ये कौए चिल्लाएँगे और इनका कोलाहल तुम्हारे हृदय जगत् में प्रवेश नहीं कर पाएगा। तुम अपने हृदय रूपी वृक्ष पर ध्यान रूपी गरुड़ का आह्वान करो। उसके रहते न विषधर आएँगे और न कौए।'

सुदामा ने सुना। कृष्ण की छवि अंतर्धान हो चुकी थी। सुदामा ने देखा कि लालसा और तर्क अपनी सशस्त्र सेना के साथ खड़े हैं। सुदामा के मन में सुमति प्रकट हुई और करतलध्वनि के साथ गाते हुए नाच उठी, 'गोविंद मेरो है,

गोपाल मेरो है। श्रीबाँके बिहारी नंदलाल मेरो है।'

सुदामा के मन में सुमति की तालियों को सुनकर विचारों के कौओं की सेना में जैसे भगदड़ मच गई। वे सुदामा के हृदय रूपी वृक्ष से उड़-उड़कर जाने लगे। चीखते-चिल्लाते अपने प्राण बचाने के प्रयास में अनेक के पंख टूटे और वे धराशायी होकर भूमि पर बिछ गए। शेष क्षत-विक्षत दशा में भागने लगे। सुदामा का साहस बढ़ा और उसी अनुपात में सुमति का कीर्तन भी।

सुदामा की आँखें अपने पैरों पर किसी स्पर्श को पाकर खुलीं। उन्होंने सबसे पहले स्वयं को देखा। वे अश्रुपूरित नेत्रों से ताली बजा-बजाकर झूम रहे हैं और कल्लू एवं उसकी पत्नी उनके पैरों में अपना सिर गिराए साष्टांग लेटे हैं।

ओह! वे तो समझ रहे थे कि उनके मन में सुमति यह कीर्तन कर रही है।

'अरे कल्लू, उठो!' सुदामा की नाभि से उठा स्वर यात्रा करता हुआ उनके कंठ तक आया और वहाँ कृष्ण ने अपना पैर रख दिया और बोले, 'मौन का संकल्प लेकर चले हो। भूल गए। वैसे तुम मौन में नहीं हो। विचारों से संवाद तो चल ही रहा है। परंतु कोई बात नहीं। बाहर के मौन को साधते-साधते भीतर के मौन का भी अभ्यास हो जाएगा।'

'ओह, कृष्ण! तुमने बचा लिया, अन्यथा व्रत भंग हो जाता।' सुदामा सिहर उठे।

'इतना भी मत कहो। कुछ कहो ही मत। इसे अनकहा रहने दो। अज्ञान में व्रत भंग हो जाए तो अपराध-बोध से मत भरना। हिमालय चढ़ने में गिरना तो स्वाभाविक ही है। गिरोगे, उठोगे, बढ़ोगे और पर्वत के शिखर पर पहुँचोगे।' कृष्ण ने अपना पैर सुदामा के कंठ से हटा लिया। स्वर की ऊर्जा नाभि-प्रदेश में लौट गई।

''आपने अपार कृपा की देव, जो आपने अपने चरण फिर से हमारी कुटिया में धरे।'' कल्लू बार-बार अपने हाथों से उनके पैरों का स्पर्श कर अपने माथे से लगाता जा रहा था।

सुदामा पीछे हट गए और संकेत से उसे उठने के लिए कहा। कल्लू उठ गया। उसकी पत्नी सुदामा के बैठने के लिए एक पीढ़ा लाई। सुदामा उस पर बैठ गए। वे दोनों भी उसके सम्मुख बैठ गए।

'महाराज, आप मेरी घरवाली के सिर पर अपना हाथ रख दें तो दया हो।'' कल्लू ने अपनी पत्नी की ओर देखा। वह सरककर सुदामा के निकट आ गई। सुदामा ने अपना दायाँ हाथ उसके सिर पर रख दिया और बायाँ कल्लू के। वे अनुभव कर रहे थे कि उनके हाथों से कुछ बहता हुआ जा रहा है और उन दोनों पात्रों को भरता जा रहा है। सुदामा को लगा जैसे उनके माध्यम से जो बह रहा था, वह बह चुका है तो उन्होंने अपने हाथ हटा लिये।

''जा, देवता के लिए दूध ले आ!'' कल्लू ने अपनी पत्नी से कहा। वह उठ गई।

''आप देवता हैं, महाराज! ब्राह्मण के रूप में भगवान् हैं। आपकी ही कृपा से मेरे भाग जग गए हैं।'' कल्लू कहता ही जा रहा था और सुदामा कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि वह क्यों उनके गुण गा रहा है। जबकि उन्होंने तो उसको एक मुट्ठी चावल के अतिरिक्त और कुछ दिया ही नहीं। उन्होंने मान लिया कि कोमल और धार्मिक स्वभाव का होने के कारण वह उनके पुन: आने से स्वयं को धन्य मान रहा है। यह उसका ही गुण है, अन्यथा सुदामा में ऐसा कुछ नहीं।...तभी उनका ध्यान सुमति की ओर गया। वह तो कृष्ण की भक्ति में डूबी है। कृष्ण ही योग्य हैं। उसके मन में आया कि वे किसी प्रकार कल्लू को बता पाएँ कि कृष्ण ही सबकुछ हैं, वे कुछ भी नहीं हैं। इसलिए वह कृष्ण की शरण गहे। वे आज कुछ बोलना चाह रहे थे, कृष्ण के गीत गाना चाह रहे थे; परंतु जैसे कृष्ण ने ही उन्हें कीलित कर दिया था। कल्लू उनके गुण गाता जा रहा था और उनका समग्र अस्तित्व जैसे चीख रहा था कि ये गीत कृष्ण के लिए होने चाहिए, मुझ अपात्र के लिए नहीं। सुदामा की व्याकुलता बढ़ती ही जा रही थी। उनको लगा कि

अब चाहे उनका व्रत भंग हो, वे चुप नहीं रहेंगे। पहले ही वे अपनी गृहस्थी का सम्यक् रूप से पालन न कर पाप कर चुके हैं, इसलिए वे इस पाप के भागी नहीं बनेंगे।

उनका स्वर उठा ही था कि कृष्ण ने पुन: प्रकट होकर उनके कंठ पर अपना पैर रख दिया और बोले, 'तुम्हें किस बात का कष्ट हो रहा है? सुदामा'

'प्रभु, आपके गुणों की स्तुति वह मुझे अर्पित कर रहा है। मैं इस योग्य कहाँ हूँ! आप तो सब जानते हैं। मैं अपात्र हूँ। यह अबोध जिन दिव्य गुणों को मुझमें बता रहा है, वे मुझमें हैं ही नहीं।'

'तुम्हारे माध्यम से वह मुझे ही गा रहा है, सुदामा! तुम उन स्तुतियों को मुझ तक पहुँचाने में माध्यम नहीं अपितु बाधक बन रहे हो। तुम उनको मुझे अर्पित कर दो। मैं तुम्हारे अंतस में ही विराजमान हूँ। तुम मुझमें हो सुदामा, और मैं तुममें हूँ। मुझसे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। तुम्हें तो आनंदित होना चाहिए कि तुम किसी की श्रद्धा के पात्र बन रहे हो। यहाँ कौन किस पर श्रद्धा रखना चाह रहा है? कौन किसे प्रेम करना चाह रहा है? तुम्हें कोई चाह रहा हैं। तुम्हें दिव्य प्रेम दे रहा है, तुम पर श्रद्धा कर रहा है और तुम उसका तिरस्कार कर रहे हो! तुम बीच में आ ही क्यों रहे हो?'

'तो प्रभु मैं क्या करूँ?' सुदामा दीन होकर गिड़गड़ाए।

'अपनी तुच्छ 'मैं' को हटाओ और अपने स्व का विस्तार कर विराट 'मैं' को जन्म दो। ऐसी 'मैं' जिसमें पूरी वसुधा ही तुम्हारा कुटुंब हो जाए। कृष्ण ने सुदामा के कंठ से अपना पैर हटा लिया।

''...आप सिद्ध हैं। आप समर्थ हैं।'' कल्लू ने हाथ जोड़कर अपने माथे से लगा लिये।

''कृष्ण, तुम सिद्ध हो, समर्थ हो।'' सुदामा के हृदय की कोयल कुहकी और उनके समर्पण का अभ्यास स्वत: आरंभ हो गया।

''जानते हैं महाराज, कल क्या हुआ? कल सुबह एक अघोरी हमारी कुटिया पर पधारा। बहुत भयंकर काला कुत्ता उसके साथ था। मेरी घरवाली तो डर के मारे काँपने लगी। मैंने उसे नमस्कार किया।'' कल्लू बीते कल की सुबह में जा पहुँचा। शून्य में गड़ी उसकी आँखें किसी घटना का आँखों देखा हाल कह रही थीं—

''जय महाकाल!'' अघोरी ने अपना चिमटा बजाया।

''बाबा को प्रणाम!'' कल्लू ने सिर झुकाया और सोचने लगा कि इस प्रकार के साधक, जो प्राय: शमशान में ही साधना किया करते हैं, ये संसार में कम ही आते हैं। अपनी यात्रा भी ये रात को ही किया करते हैं। यदि किसी कारण दिन में भी चलना पड़े तो किसी को बाधा नहीं पहुँचाते। ये किसी को कुछ नहीं कहते। फिर भी इनके रूप और व्यवहार को देखकर लोग इनसे भयभीत होते हैं। उसने एक बार एक संन्यासी से अघोरियों के विषय में पूछा था तो उसने बताया था कि 'अघोरी' बहुत ही प्यारे लोग हुआ करते थे। ये वे थे जो घोर नहीं थे। सरल थे, कोमल थे। किंतु कालांतर में यह शब्द अपनी यात्रा करता हुआ कुछ ऐसे हाथों में चला गया कि गृहस्थ इस शब्द से और उसके वाहक से डरने लगे।

''अंदर आने को नहीं कहेगा, कल्लू!'' अघोरी गरजा और अपने कुत्ते की ओर देखकर मुसकराया और बोला, ''तेरा भाई कालू दरवाजे पर खड़ा है।''

कल्लू ने उस कुत्ते की ओर देखा, जिसे अघोरी 'कालू' कहकर पुकार रहा था। कल्लू ने देखा कि वह कुत्ता उसकी ओर मुसकराकर देख रहा है। वह डर गया। कुत्ता कैसे मुसकरा सकता है! उसे लगा कि कहीं उसकी दुविधा से हो रही देरी के कारण अघोरी अप्रसन्न न हो जाए, इसलिए वह उसके चरणों में गिर गया।

''चल उठ कल्याण हो तेरा! बता, मैं कहाँ बैठूँ?'' अघोरी कुटिया में आ गया।
कल्लू ने हड़बड़ाहट में खटोला सरकाया और उस पर गुदड़ी बिछाकर हाथ जोड़ एक ओर खड़ा हो गया।
''हुँ...'' अघोरी कल्लू के स्वागत से संतुष्ट हुआ और चिमटा बजाते हुए खटोले पर बैठ गया।
''अरी सुनती हो भाग्यवान्, बाबा पधारे हैं। बाबाजी के लिए दूध ला।''
कुत्ता कल्लू की ओर देखकर गुर्राया।
''कालू भाई के लिए भी दूध लाना।'' कल्लू के हाथ-पैर फूल रहे थे।
कुत्ता अभी भी कल्लू की ओर देखकर गुर्राता रहा।
''अधम!'' अघोरी ने कालू कुत्ते के चिमटा मारा और चीखा, ''अब क्यों घरघरा रहा है? तुझे अपने साथ भक्तों को डराने के लिए रखा है क्या? दुष्टों को देखकर पूँछ दबाएगा और भक्तों को देखकर घरघराएगा। इधर आ!''
किसी आज्ञाकारी सेवक के समान कालू अघोरी के सामने आ गया। अघोरी ने उसके सिर पर चिमटा मारा। चिमटे की मार खाकर वह खटोले के नीचे जा छिपा।
''हुँ...हुंकृहुं...'' अघोरी कुत्ते के समान साँसें खींच-खींचकर कुछ सूँघने लगा। फिर आश्वस्त होकर बोला, ''तेरे ही घर से वह गंध आ रही है। उसी से बँधा खिंचा चला आया हूँ।''
''कैसी गंध, बाबाजी?'' कल्लू ने हाथ जोड़ दिए।
''जाने दे, तू नहीं समझेगा।'' अघोरी की लाल आँखें कुटिया में कुछ खोज रही थीं। फिर उसकी दृष्टि एक आले पर जाकर ठहर गई। वह बोला, ''वहाँ मिट्टी के गणेशजी के पास उस कुल्हड़ में क्या है?''
''कल रात एक ब्राह्मण देव आए थे। मैंने उनके द्वारा दी गई चावलों की भेंट को रख छोड़ा है। जब वे लौटेंगे तब पकाकर उनको भोग लगाऊँगा।''
''इनका भोग तो लग चुका, बच्चा!'' अघोरी बोला।
''नहीं बाबाजी, अभी तो ये सुच्चे हैं।'' कल्लू ने हाथ जोड़कर कहा।
''ये सदा सुच्चे ही रहेंगे पर इनका भोग लग चुका।''
''हमने तो इन्हें छुआ भी नहीं, फिर...''
''...कहा ना कि तू नहीं समझेगा, फिर क्यों प्रलाप कर रहा है?'' अघोरी गरजा, ''जा, कुल्हड़ मेरे पास ला।''

कल्लू को एकमात्र उपाय यही सूझा कि वह उस कुल्हड़ को अघोरी को सौंप कर उसे जल्द-से-जल्द विदा करे। वह तेजी से आगे बढ़ा, कुल्हड़ उठाया और नतमस्तक हो अघोरी के हाथों की ओर बढ़ा दिया। उसे देखकर अघोरी मुसकराया।
''डर मत, बैठ जा।'' अघोरी के स्वर में स्नेह था, पर उस स्नेह में भी भय की अनुगूँज थी।

कल्लू अघोरी के आगे हाथ बाँधकर उकड़ूँ बैठ गया।

अघोरी ने अपने साथ रखे कपाल में कुल्हड़ उलट दिया। चावल के टुकड़े झरते हुए उसमें गिर गए। उसने उनको सूँघा और एक परम तृप्ति का भाव उसकी आँखों में तैरने लगा।
कल्लू की पत्नी आई। उसने अपनी ओढ़नी की सहायता से एक हाथ में लोटा पकड़ा हुआ था और दूसरे में हाथ पक्षियों को जल पिलाने के लिए बनाया गया मिट्टी का कटोरा। वे दोनों ही गरम दूध से भरे थे। मिट्टी का कटोरा उसने धरती पर रख दिया और लोटा कल्लू की ओर बढ़ा दिया।
''हे भगवान्!'' कल्लू लोटे को पकड़ते ही उछला, ''बाबाजी का मुँह जलाएगी? निवाया करके नहीं ला सकती

थी?''

''इधर ला लोटा!'' अघोरी ने हाथ बढ़ाया और कल्लू के हाथ से लोटा लेकर मुँह से लगा लिया। लोटा खाली करके उसने मुँह पोंछा और गरजा, ''जय महाकाल!''

कल्लू और उसकी पत्नी ने यह देखकर दाँतों तले अपनी अँगुलियाँ दबा लीं कि वह अघोरी तो उस तपते दूध को ऐसे सटक गया जैसे वह शीतल छाछ हो।

''कहा ना, तू नहीं समझेगा।'' अघोरी कल्लू की ओर देखकर हँसा और खटोले के नीचे बैठे कुत्ते को खड़काते हुए बोला, ''चल, निकल बाहर और पा ले महाकाल का प्रसाद!''

कुत्ता धीरे से खटोले के नीचे से निकला और दूध के कटोरे की ओर बढ़ा। उसने टेढ़ी दृष्टि से कल्लू की ओर देखा, मानो कह रहा हो कि तेरे कारण मुझे पिटना पड़ा।

''देख!'' अघोरी ने हथेली उसके सामने फैलाई और फिर उसे बंद कर मुट्ठी में बदल दिया और उसकी पत्नी की ओर देखकर बोला, ''इधर आ, मेरे पास।''

स्त्री ने कल्लू की ओर देखा। कल्लू की आँखों ने कहा कि जैसे अघोरी कहता जा रहा है वैसे करती जा। वह अघोरी के सम्मुख बैठ गई।

''अपनी झोली फैला।''

उसने अपनी झोली फैला दी।

अघोरी ने अपनी बंद मुट्ठी खोल दी। उसमें से सोने के चावल झरकर कल्लू की पत्नी की झोली में जा गिरे। अघोरी ने दस बार उसकी झोली के ऊपर अपनी मुट्ठी खोलकर बंद की और हर बार उसमें से मुट्ठी भर सोने के चावल झरकर झोली में गिरते गए।

''एक मुट्ठी चावल के बदले दस मुट्ठी सोने के चावल। बोल, व्यापार करता है?'' अघोरी ने अपनी दृष्टि कल्लू पर गड़ा दी।

एक मुट्ठी चावल के टुकड़ों के बदले दस मुट्ठी सोने के चावल पा कर कल्लू की आँखें फटी रह गईं। उसके कानों में उस साधु का स्वर गूँज उठा, जिसने उसे बहुत ही शीघ्र उसके पास कल्पना से अधिक धन आने का वरदान दिया था। कल्लू की बुद्धि के घोड़े सरपट दौड़े। वे जान गए कि जो अघोरी उनके सामने बैठा है, वह असाधारण है। तभी तो वह गोपनीय बातों को भी जानता है और बार-बार उससे कहता जा रहा है कि तू नहीं समझेगा। तो उसे ही समझकर क्या करना है। उसे तो अपना कार्य सिद्ध करना है।

''बाबाजी, ये चावल इस सोने के बदले मैं आपको दे देता। पर बाबाजी, इनको मैंने एक मनौती के लिए रख छोड़ा था। आप इनको ले जाएँगे तो वह मनौती पूरी नहीं हो पाएगी।'' उसने देखा कि उसकी बात से अघोरी अप्रसन्न होता जा रहा है। वह चुप हो गया।

''मेरी गोद में आ, माँ!'' अघोरी ने कल्लू की पत्नी की ओर देखा। अब की बार उसकी पत्नी ने अनुमति लेने के लिए कल्लू की ओर नहीं देखा। वह तो सम्मोहित हो अघोरी की गोद में जा बैठी। अघोरी ने उसे अपने हृदय से ऐसे लगा लिया जैसे वह कोई नवजात शिशु हो और फिर उसके मुख पर अपना मुख झुका दिया। उसके लंबे बालों ने कल्लू की पत्नी का मुख ढक दिया। कल्लू की पत्नी ने अनुभव किया कि जैसे सर्प की लपलपाती दो पतली जीभों ने उसके बिंदी लगानेवाले स्थान को चूमा है। उस चुंबन से उसके भीतर जैसे बहुत से गुंजल खुलते जा रहे हैं।

''जा, नीचे बैठ जा।'' अघोरी ने उसे गोद से उतार दिया। उसने कपाल में से चावल के दस दाने निकाले और

बोला, ''ये दस संतान हैं। जितनी तुझे चाहिए हो माँ, उतनी रखना और शेष बाँट देना।'' उसने कल्लू की ओर देखा, ''बोल, अब चावल मेरे हुए?''

''बाबाजी!'' कल्लू अघोरी के चरणों में गिर गया और भाव-विह्वल हो बोला, ''हम भी आपके ही हुए, हमारे बच्चे भी आपके हुए।''

अघोरी ने अपना पैर कल्लू के सिर पर रख दिया।

सुदामा विस्फारित नेत्रों से कल्लू की ओर देख रहे थे। उनके मन में प्रश्नों और विचारों के कौए काँव-काँव करते झुंडों में प्रकट हो गए।

'प्रश्नों और विचारों के इतने कौए तो कभी नहीं आए। इनको कैसे समझूँगा?' सुदामा मन-ही-मन हाँफने लगे।

'तू नहीं समझेगा।' उनके मन में वह अघोरी किसी बिजली के समान कौंधा, 'रस ले, रस और कौओं को मरने दे।'

सुदामा बहुत कुछ कहना-पूछना चाह रहे थे। पर अब उनको समझ आ गया था कि वे बाहरी मौन का संकल्प धारण किए हुए हैं। कल्लू उनकी उनकी ओर इस आशा से देख रहा था कि वे कुछ बोलेंगे। पर सुदामा ने अपने हाथ जोड़कर आकाश की ओर उठा दिए।

''ओह! महाराज मौन में हैं।'' कल्लू बोला।

सुदामा ने मुसकराकर स्वीकृति में सिर अपना हिला दिया।

''अरी ओ भाग्यवान...'' कल्लू ने अपनी पत्नी को पुकारते हुए अपनी गरदन घुमाई ही थी कि उसे अपने सिर के पास वह खड़ी दिखाई दी। उसके हाथ में थाली थी। थाली में चार सुनहरी मिस्सी रोटी और लोटे में दूध।

''जा कर्मोंवाली, जल ले आ। महाराज के हाथ-पैर धुलवाने हैं।'' कल्लू का स्वर आनंदित हो नाच रहा था।

❑

ग्यारह

गोधूलि वेला में सुदामा अपने गाँव से दस कोस की दूरी पर थे। वे देख रहे थे कि उनके गाँव की ओर जानेवाले तथा सदा नीरव रहनेवाले मार्ग पर अनेक मालवाहक बैलगाड़ियों का आवागमन लगा हुआ है। मार्ग पर धूल के मेघ गोधूलि वेला को और सहयोग कर रहे थे। धूल अनेक आकृतियों का निर्माण करती और फिर मार्ग पर गिर जाती। कोई बैल उससे किसी कंदुक के समान खेलता और वह फिर वायु में उठ जाती।

सुदामा ने तय किया कि वे मार्ग में धूल में नहाते हुए न जाकर खेतों से होते हुए जाएँगे। खेतों से होकर जाने में उनके दस कोस की दूरी सात कोस की रह जाएगी। सुदामा मार्ग से उतरकर खेतों की राह हो लिये। उन्होंने कुछ गुनगुनाना आरंभ ही किया था कि उनके पैरों को छूता हुआ एक भयानक और लगभग दो हाथ लंबा साँप खेतों में खो गया। सुदामा ठिठक गए।

'ऐसा न हो सुदामा, कि धूल से बचने के प्रयास में तुम धूल में ही मिल जाओ। रात को इस सर्प बहुल क्षेत्र में तुम्हारे द्वारा खेतों से होकर जाना तो मृत्यु का आह्वान करना है।' सुदामा की बुद्धि बोली।

सुदामा तुरंत खेतों की राह छोड़कर मुख्य मार्ग पर आए।

'मृत्यु का भय सारा ज्ञान भुला देता है।' बुद्धि हँसी, 'और उससे बचने के लिए सारा ज्ञान स्मरण भी हो आता है। देह को बचाने के लिए तो तुमने प्रयास किया सुदामा! मुझे अच्छा लगा कि तुमने मेरी यह बात मानी। पर इस देह को सँवारने के लिए मेरी कोई बात नहीं मानी। कहीं जीविका खोजी होती तो तुम्हारी जीवनचर्या सँवर गई होती और उस अवस्था में तुम अपने परिवार के साथ सम्मानजनक जीवन जी रहे होते।'

'अब क्या अपमानजनक है?' सुदामा शास्त्रार्थ करने को तैयार हो गए। उन्होंने सोचा कि चलो, गाँव तक इस बुद्धि के साथ ही वैचारिक मल्ल-युद्ध किया जाए।

'मैं जानती थी कि बात को समझने के स्थान पर तुम ऐसा ही कुछ अनावश्यक बोलोगे। यही तुम्हारा रोग है कि धन के महत्त्व को समझते ही नहीं हो। तुमने लक्ष्मी की उपेक्षा की और लक्ष्मी ने तुरंत तुमसे मुँह फेर लिया। 'बुद्धि ने सुदामा को समझाया, 'सुदामा महाराज! लक्ष्मी को तो बहुत जतन से रखना पड़ता है। उसका आह्वान करने के लिए बड़ी मान-मनौती करनी पड़ती है। उसका परिणाम देख रहे हो न कि धूल खाते और उसमें नहाते जा रहे हो। घर जाकर किस मुँह से अपनी संतान और पत्नी से मिलोगे? क्या वे यह आस लगाए हुए नहीं होंगे कि उनके पिता उनके कष्टों को काटने के लिए अपने मित्र, राजाओं के भी राजा भगवान् श्रीकृष्ण के पास गए हुए हैं? क्या तुम्हारी पत्नी ने तुम्हें केवल कुछ वायवीय चर्चाएँ करने के लिए कृष्ण के पास भेजा था? वह भी क्या सोचेगी कि कैसा मूढ़ पति पाया है, जो इस बात का भी आशय नहीं समझता कि उसकी पत्नी उससे क्या अपेक्षा कर रही है।'

बुद्धि के विषाक्त शब्द-बाणों से सुदामा को मूर्च्छा घेरने लगी। वे सहारे के लिए इधर-उधर देखने लगे। मार्ग के किनारे कुछ दूरी पर पुलिया को देखकर वे ऐसे दौड़े जैसे मेले में खोया बच्चा अपनी माँ को देखकर दौड़ता है। उनको इस प्रकार दौड़ता देखकर अनेक गाड़ीवानों और बैलों का ध्यान उनकी ओर गया। वे चकित थे कि एक व्यक्ति के पीछे न कोई पशु पड़ा हुआ है और न ही कोई चोर तो फिर वह किससे भयभीत होकर भाग रहा है? वे पुलिया का सहारा लेकर बैठ गए। उनकी श्वास-गति असंतुलित हो गई थी। पुलिया उनको सदा माँ की गोद जैसी ही लगी है। बचपन में जब सुदामा अपने पिता के साथ कहीं जाया करते थे तो वे मार्ग की इन छोटी-छोटी

पुलियाओं पर बैठ जाया करते थे और उनके पिता उन्हें पुकारते रहते । अंतत: उनको उनके पास आकर उन्हें गोद में उठाकर ले जाना पड़ता था। पर अब वे यदि स्वयं यहाँ से नहीं उठेंगे तो कोई उनको यहाँ से गोद में भरकर ले जाने आनेवाला नहीं है। सुदामा का हृदय भर आया और उनके हृदय ने तुरंत उनकी आँखें भर दीं। वे सोचने लगे कि सत्य ही तो कह रही है उनकी बुद्धि! वे गए क्या करने थे श्रीकृष्ण के पास? क्या वहाँ ज्ञान का कोई सम्मेलन चल रहा था? क्या वे कृष्ण से कुछ माँग नहीं सकते थे?

'पर कृष्ण से मेरी दशा छिपी थी क्या? वे चाहते तो मुझे...' सहसा वे रुक गए। उनको लगा कि वे अपनी बुद्धि के भड़कावे में आकर श्रीकृष्ण के प्रति अपना असम्मान प्रकट करने जा रहे हैं, नहीं उनको सावधान रहना होगा इस बुद्धि से। यह उनको भ्रमित कर अश्रद्धा से भरना चाहती है। वे आत्मलीन हो हृदय से पुकार उठे, 'हे कृष्ण! मुझे क्षमा करना कि मैं अपनी कुटिल बुद्धि के बहाव में तुम्हारे प्रति अनुचित चिंतन करने जा रहा था। मुझे तो ऐसा लग रहा है जैसे मेरा जन्म तुम्हारा अलौकिक प्रेम पाने के लिए ही हुआ था। मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूँ, जैसे मैं देहमुक्त हो गया हूँ। मेरे मन में अब अन्य किसी पदार्थ की आकांक्षा नहीं है। उस ज्ञान की भी नहीं, जिसे मैंने अपना सबसे बड़ा धन मानकर पाला-पोसा था। मुझे तो तुम भक्ति की यात्रा पर अग्रसर करो। मुझे यह कण मात्र भी समझ नहीं आ रहा कि मैं अपने परिवार के सम्मुख किस मुँह से जाऊँगा। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। बुद्धि का कहना अपने स्थान पर उचित है, परंतु मैं अपने स्वभाव का क्या करूँ? मुझसे चाहकर भी तुमसे माँगना नहीं हो पाया। क्या माँगता? तुमने जो दिया उसके सम्मुख सारी पृथ्वी का साम्राज्य भी तुच्छ लग रहा था। अब तुम वैसी ही मनोदशा मेरे परिवार की भी कर दो। वे भी यही अनुभव करके परम संतोष को प्राप्त हों कि मैं उनके लिए प्रेम की संपदा लेकर लौटा हूँ। तुम मेरी दशा को समझ सकते हो कृष्ण, तुम ही मुझे इस संकट से पार करो। यह अति दु:खदायी है। तुमने तो जीवन भर अपने भक्तों की उन पर आए संकटों से आगे बढ़-बढ़कर रक्षा की है। मेरी बारी ही हार जाओगे क्या? क्या तुम मेरा हाथ पकड़कर मुझे कष्टों के इस गर्त से न निकालोगे? सुदामा के मन में शांति छा गई और फिर वे बोले कि यदि तुम नहीं निकालोगे तो भी मैं उसी गर्त में पड़ा-पड़ा तुमको पुकारता रहूँगा। तुम्हें पुकारने में मुझे कोई संकोच या लाज नहीं।...सुदामा को पता ही नहीं लगा कि कब उनको नींद ने आ घेरा। बहुत देर बाद एक बैलगाड़ी सुदामा के पास रुकी। बूढ़ा गाड़ीवान उतरा और उसने सुदामा को हिलाया।

सुदामा ने आँखें खोलीं और अपने सामने एक अपरिचित व्यक्ति को पाकर इधर-उधर देखने लगे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि वे कहाँ हैं और क्यों हैं? एक क्षण के लिए वे यह भी भूल गए कि वे स्वयं कौन हैं। सहसा उनकी स्मृति लौट आई। उनको सबकुछ ज्ञात हो गया।

''तुम्हारा जी तो ठीक है, भाई?'' बूढ़े ने पूछा, ''तुम्हें इस प्रकार यहाँ पड़ा देखकर मेरा मन व्याकुल हो गया। यदि भूख के कारण तुम अचेत हो गए हो तो मेरे पास दो रोटियाँ हैं। तुम्हें दे देता हूँ।''

सुदामा उसका धन्यवाद करके, उसे अपने स्वस्थ होने के विषय में बताने ही जा रहे थे कि फिर कृष्ण ने आकर उनके कंठ पर अपना चरण रख दिया और बोले, 'अभ्यास से स्वयं को साधो, सुदामा! भूल गए, तुम मौन का संकल्प लेकर चले हो।'

ओह! सुदामा को लगा कि अब वे इस दयालु व्यक्ति का किस विधि धन्यवाद करें। वे तेजी से उठे और उन्होंने गाड़ी से रोटी लाने के लिए मुड़े बूढ़े का मार्ग छेंक लिया। वे उसके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गए और उसके आगे अपना मस्तक झुका दिया तथा बिना उस बूढ़े की प्रतिक्रिया जाने वे अपने मार्ग पर बढ़ गए। उन्होंने तारों की स्थिति देखकर अनुमान लगाया कि रात बहुत हो गई है। वे तेजी से अपने गाँव की ओर बढ़ने लगे। उन्होंने संकल्प

किया कि अब किसी भी पुलिया के स्नेह में मोहित नहीं होंगे। वे स्वयं पर मुसकरा रहे थे। कहाँ तो वे विवाह ही नहीं करना चाहते थे और कहाँ अब अपने परिवार के लिए कितने व्याकुल हैं। यही तो प्रभु की माया है। यदि यह माया-ममता न हो तो यह संसार ही न चले। उनके विवाह के पीछे गुरु संदीपनि की ही कृपा थी। बाद में उनको ज्ञात हुआ था कि सुमति के पिता ने अपनी पुत्री की प्रतिज्ञा गुरु संदीपनि को बताई थी। उन्होंने बताया था कि रूप और बुद्धि में उनकी यह पुत्री उनकी सभी संतानों में सर्वश्रेष्ठ है; परंतु उसका यह हठ कि वह किसी ज्ञानी को ही अपना वर चुनेगी, उनके लिए समस्या बन गया है। जो धनी हैं, उसमें से अधिकांश को तो शास्त्रीय ज्ञान से कुछ लेना-देना नहीं। सांस्कृतिक आधार ग्रंथों का तो उसे कण मात्र भी ज्ञान नहीं। कुछ ज्ञान के मार्ग पर हैं भी तो उनमें अपरिपक्व ज्ञान है और कुछ जो सच्चे ज्ञानी होंगे, उनको वे खोज ही रहे हैं। जिनको ज्ञान है, वे साधु-संन्यासी और ऋषि-मुनि हैं तो क्या वे किसी संन्यासी से अपनी पुत्री ब्याह दें? ब्याह तो दें, पर कोई संन्यासी इसके लिए कहाँ तैयार होगा। सुदामा, संदीपनि के पास तैयार की हुई प्रतिलिपियाँ रखने आए थे । उन्होंने सुदामा से कहा कि इन आगंतुक सज्जन के साथ इनके घर जाएँ और इनकी पुत्री की कुछ शास्त्रीय समस्याओं का निवारण करके आएँ। सुदामा ने आज्ञा-पालन किया। सुमति ने सुदामा से इतने प्रश्न किए थे कि वे यह मान गए थे कि सुमति पर माँ सरस्वती विशेष रूप से कृपालु हैं। सुमति का रूप सुंदर था। उसकी सरलता ही उसकी सुंदरता थी। उसके मुख पर ज्ञान की कांति थी। आँखें हिरनी के समान जिज्ञासा का निर्दोष कौतूहल लिये थी। सुदामा के मन में एक मीठी टीस उठी। वे सोचने लगे कि यदि उनको यह ज्ञात होता कि परमात्मा ने उनके लिए भी किसी नारी की रचना की है तो वे आजीवन ब्रह्मचारी रहने की अपनी प्रतिज्ञा को अपने आचार्य के सम्मुख न कहते। आचार्य ने अपने अन्य शिष्यों के बीच यह प्रचारित कर दिया और यह बात पूरे आश्रम में फैल गई कि सुदामा ब्रह्मचारी रहेंगे। सुदामा को अपने संबंध में प्रचारित यह बात सुनकर मन में आक्रोश जगा था कि यह उनका निजी विषय है कि वे विवाह करें अथवा नहीं। किसी को उनके विवाहित अथवा अविवाहित होने का प्रचार करने का क्या अधिकार है। परंतु वे किससे क्या कहें, इसी असमंजस में वे चुप रह गए। आज उनके मन में सुमति को देखकर उसके साथ जीवन-यात्रा करने का भाव उदित हुआ था। सुमति के घर से आश्रम लौटते समय वे कल्पना कर रहे थे कि कितना अच्छा हो कि सुमति उनकी धर्मपत्नी हो और वे दोनों मिलकर ज्ञान के क्षेत्र में शब्दों का कृषि-कर्म करेंगे। आश्रम में उनको धनार्जन की चिंता होगी ही नहीं। संदीपनि कुछ समय बाद उनकी नियुक्ति अपने ही आश्रम में आचार्य के रूप में कर देंगे और सब सुंदर हो जाएगा।

तभी सुदामा किसी की हँसी सुनकर चौंके थे। वह भयभीत करनेवाली हँसी उनकी बुद्धि की थी। वह सुदामा से कह रही थी कि वह तो सुमति से विवाह के साकार होने की कल्पना ऐसे कर रहा है जैसे कोई राजकुमार हो और उसका यह मत प्रकट करते ही सुमति के पिता आनंद से नृत्य कर उठेंगे। कहाँ सुमति का विशाल घर और कहाँ वे आश्रम पर आश्रित एक अनाथ ब्रह्मचारी।

सुदामा को सदा यही लगा कि वे बालक ही हैं। उनकी ओर से कुछ बात कहने के लिए कोई तो होना चाहिए था। परमात्मा ने उनको अनाथ करके छोड़ दिया है। उनको संतान के रूप में संदीपनि देखते हैं और वे उनको पिता के रूप में; तो क्या वे संदीपनि से अपने मन की बात कहें? यह सोचकर वे लज्जा से गड़ गए कि गुरु संदीपनि उनके विषय में क्या सोचेंगे। वे सोचेंगे कि ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले सुदामा का मन काम-मोहित हो गया है। सुदामा अपने आश्रयदाता, अपने पिता और अपने गुरु की उस दृष्टि के साथ कैसे अपनी आँखें मिलाएँगे?...उनका आशा में प्रज्वलित दीप असंभव सोच के झोंके ने बुझा दिया।...और इधर सुमति की छवि उनके मन में बिना रंगों और तूलिका के चित्रित होती जा रही थी। उनका मन कर रहा था कि वे लौटकर आश्रम न जाएँ; क्योंकि अब

उनका मन उनके वश में नहीं रहा है। वह उनको कोई कार्य नहीं करने देगा। पर वे इस प्रकार आश्रम से पलायन नहीं कर सकते थे। वे आश्रम में गए तो अपनी कुटिया में मुँह ढाँपकर पड़ गए। उनके सामने अधूरी प्रतिलिपियाँ रखी थीं; परंतु उनका मन उनको देखना भी नहीं चाह रहा था। संध्या समय आश्रम में सभी ब्रह्मचारियों को पीने के लिए दूध और कुछ अल्पाहार दिया जाता था। पहली बार वे उसे लेने नहीं गए। भोजन की व्यवस्था देखनेवाले भंडारी को गुरु संदीपनि ने उनका ध्यान रखने का विशेष निर्देश दिया हुआ था। उसे भी सुदामा के शांत स्वभाव के कारण उनसे विशेष प्रेम हो गया था। वह भंडारी सुदामा के पात्र में सदा कुछ अधिक ही डाल दिया करता था। उस दिन जब सुदामा दूध लेने नहीं गए तो वह उनको देखने कुटिया में आया और उनको ज्वर में तपता देख गुरु संदीपनि को सूचित कर आश्रम के वैद्य को ले आया।

उधर सुमति ने अपने पिता को कह दिया था कि उसे सुदामा पसंद है, शेष आपको जो उचित लगे। उसके पिता ने संदीपनि को कहा कि सुदामा को मेरी पुत्री ने अपना वर होने के उपयुक्त पाया है। तब सुदामा के विषय में जानकारी पाकर सुमति के पिता का मन हताश हो गया था। इधर पुत्री की बढ़ी अवस्था भी उनकी चिंता का कारण बनती जा रही थी। यदि वे सुदामा की आर्थिक पृष्ठभूमि न देखें तो वह सुमति के उपयुक्त वर था।

वह रात सुदामा को आज भी स्मरण है। रात क्या थी, जागरण था। पूरी रात सुदामा ने जागकर स्मरण किया था अपने कुल के देवी-देवताओं को। वे यह भलीभाँति जानते थे कि कोई भी समृद्ध पिता अपनी पुत्री अनाथ याचक को क्यों देगा। वे वहाँ एक आचार्य के समान सुमति की किन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान-स्वरूप गए थे। ऐसे में वे यह कैसे सोच सकते हैं कि सुमति के साथ उनका विवाह हो जाए। वे सोच रहे थे कि ऋषियों के साथ अपनी कन्याओं के विवाह का प्रचलन तो अभी भी है। सुदामा का मन उन सभी तर्कों और प्रमाणों को खोजता रहा, जिनके माध्यम से वह सुमति के साथ अपने विवाह होने की सार्थक कल्पना कर अपने मन में कभी आशा का दीया जला सकता था। सुदामा अपने मन को जितना सुमति से दूर करने के लिए मर्यादाओं और संयम के उदाहरण देते, उनका मन उतना ही सुमति के मन से जा-जाकर लग जाता है। वह सुमति के साथ गीत गाता, झूलों की पींगें भरता, रथारूढ़ होता, गौ-सेवा करता और न जाने किन-किन लोकों का भ्रमण करता।

सुबह संदीपनि का बुलावा आया। सुदामा संदीपनि के कुटीर में गए। वहाँ सुमति के पिता भी बैठे थे। सुदामा को लगा कि हो सकता है, वे आज भी उनको लेने आए हों। उनका मन यह सोचकर सुखी हुआ कि वह आज भी सुमति के दर्शन करेगा।

''इधर आओ!'' संदीपनि ने सुदामा को अपने निकट आने के लिए कहा। निकट आने पर सुदामा का माथा छूकर देखा और बोले, ''लगता है, चिकित्सक की औषधि का प्रभाव नहीं हुआ। तुम्हारा मस्तक अभी भी तप रहा है।''

सुदामा का मन चीख-चीखकर कहना चाह रहा था कि गुरुदेव, यह ताप प्रेम के विरह की पीड़ा से उपजा है। इसकी औषधि किसी धन्वंतरि के पास नहीं है। सुदामा की श्वास-गति तीव्र हो गई थी। उनको अपना शेष जीवन निस्सार लग रहा था। सुमति के बिना उनको अपना जीवन बिना नमक के भोजन जैसा जान पड़ रहा था। उनका मन कह रहा था कि यदि वह सुमति को नहीं पा पाया तो वह योगी होकर सदा-सदा के लिए वन में चला जाएगा। अनेक-अनेक प्रकार से सुदामा का मन उनको संतप्त कर रहा था। वह किसी शुक के समान सतत जाप कर रहा था —सुदामा की सुमति, सुदामा की सुमति, सुदामा की सुमति, सुदामा...

''सुदामा!'' संदीपनि ने धीरे से पुकारा।

सुदामा अनमने-से सिर झुकाए बैठे रहे।

''पुत्र!'' संदीपनि के स्वर में स्नेह उमड़ आया।

सुदामा ने अपने सजल नेत्रों से उनकी ओर देखा।

''मैंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की तुम्हारी प्रतिज्ञा के विषय में सुना है।'' संदीपनि बोले।

सुदामा का मन ऐसे चीखा जैसे किसी ने उसके घाव पर पैर रख दिया हो। वह सुदामा से बोला कि वे तत्काल असत्य का अवलंब लें और संदीपनि से कहें कि उन्होंने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की है। सुदामा ने अपने मन को बता दिया कि वे असत्य का अवलंब नहीं लेंगे।

''किंतु पुत्र, मैंने तुम्हारे पिता से कहा था कि मैं तुम्हारा ध्यान रखूँगा और जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है वहाँ तक मैं यह पाता हूँ कि केवल संन्यासी जीवन तुम्हारे लिए नहीं है। तुम गृहस्थ-संन्यासी होने के लिए उपयुक्त हो। केवल संन्यास धर्म अति कठोर है और गृहस्थ संन्यास उससे भी दु:साध्य। किंतु प्रभु-कृपा से तुम उसे साध लोगे। यदि तुम्हारे पिता इस समय होते तो वे भी यही कह रहे होते, जो मैं कह रहा हूँ। वे भी विवाहित थे। अब मैं तुम्हारा पिता हूँ।'' उन्होंने सुदामा की ओर मुसकराकर स्नेहपूर्वक देखा और बोले, ''पुत्र, मैंने तुम्हारे लिए तथा अपने अभिभावक होने के दायित्व को अनुभव करते हुए इनकी पुत्री सुमति का संबंध तुम्हारे साथ निश्चित कर दिया है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या तुम अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहना चाहते हो अथवा...''

सुदामा का मन कह रहा था कि वे उसको कुछ क्षण के लिए मुक्त छोड़ दें तो वह पूरे आश्रम में यह चीख-चीखकर कहना चाहेगा कि उसने उस अज्ञात महाशक्ति को काम करते अनुभव किया है, जो हमारी प्रार्थनाएँ सुनती हैं।

सुदामा ने साष्टांग मुद्रा में अपना सिर संदीपनि के चरणों में रख दिया और धीरे से बोले, ''गुरुदेव, मेरी बुद्धि अति तुच्छ है। जो आप मेरे लिए निश्चित करेंगे, वह मुझे सहर्ष शिरोधार्य है।''

संदीपनि सुदामा से कुछ नहीं बोले। उन्होंने अपना स्नेह-हस्त सुदामा के सिर पर रख दिया और सुमति के पिता से बोले, ''इस शरत् पूर्णिमा को तुम कन्यादान की तैयारी करो। विप्र सुदामा को अपनी कन्या दान में देकर इसे अनुगृहीत करो। मैं तुम्हें यह विश्वास दिलाता हूँ कि सुमति सुदामा के साथ सुखी रहेगी।''

सुदामा की स्मृति का स्वप्न टूटा।

मारे लज्जा के सुदामा की गरदन अभी भी झुकी हुई थी।

'दु:खी क्यों होता है, रे सुदामा?' उनके मन से कटाक्ष की गुफा से प्रकट हुआ स्वर उनके सामने आकर कूदा और बोला, 'तूने निर्धनता का भरपूर सुख सुमति को दिया है।'

विवाह के पश्चात् संदीपनि की इच्छा से वे अपनी पैतृक भूमि पर आकर रहने लगे। उन्होंने विवाह के पश्चात् कभी अपनी ससुराल की ओर मुँह नहीं किया। एक बार सुमति उनके बिना पीहर गई और जब दस दिनों बाद लौटकर आई तो सुदामा की दशा देखकर उनके बिना पीहर न जाने का संकल्प कर बैठी। उन दस दिनों तक सुदामा एक प्रकार से उपवास पर ही रहे। वे किसी के द्वार पर माँगने जानेवाले तो थे ही नहीं, न किसी पंसारी से कुछ लाए। एक आश्रम की प्रतिलिपियाँ लौटाने गए थे तो वहाँ से कुछ मुरमुरे और गुड़-चना प्रसाद रूप में पा गए थे तो उनके और जल के आश्रय से दस दिन बिता दिए। सुमति जिस जमींदार के गोधन की सेवा करती थी, उसके पारिश्रमिक के रूप में वह यह कहकर गई थी कि वे अपने ग्वाले के हाथ एक लोटा दूध प्रतिदिन सुदामा के लिए भिजवा दिया करें। पर वहाँ से कोई नहीं आया। उसके बाद सुमति को गाँव के पुजारी के गोधन की सेवा का कार्य मिला। उसने देखा कि सुदामा बहुत ही जल्दी आहत हो जाते हैं। इसलिए यदि ये कहीं चाकरी भी करेंगे तो कष्ट भी

पाएँगे और दु:ख भी। साथ-ही-साथ ऋषियों की वाणी के अनुसंधान के कार्य को भी वे नहीं कर पाएँगे। उसने तय कर लिया था कि वह अपने पति की ज्ञान-यात्रा में उनकी बाधक के रूप में नहीं अपितु साधक के रूप में अपनी भूमिका निभाएगी।...आज वे इस बात को अनुभव कर रहे हैं कि सुमति ने पूरी निष्ठा के साथ अपनी वह भूमिका निभाई, जो कदाचित् कोई भी स्त्री निभा पाए। सुमति अपवाद है। वे अपनी अकर्मण्यता पर मुसकराए। वे भी तो अपवाद हैं। अपनी संतान के लिए वे जनक ही बने रहे, पिता कभी नहीं बन पाए। पत्नी के लिए वे उसके स्वामी न बनकर उसके आश्रित रहे और उनकी पत्नी ने उन्हें सदा स्वामी का सम्मान दिया। ओह सुदामा! तुम...तुम क्या दे पाए? तुम स्वयं को कैसे क्षमा कर सकते हो? सुदामा को लगा कि उनको अपराध-बोध से पीड़ित करनेवाला स्वर उनको घेरने लगा है। सहसा उनकी चेतना पुकार उठी, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' और वह पुकारती ही चली गई।

भगवान् वेदव्यास के शिष्यों की गुनगुनाहट को उनकी उनकी चेतना ने तब कुछ सुना था और उसे सहेजकर रख लिया था। इस समय वह स्वत: प्रकट हुआ। वे जिसका जाप कर रहे थे, वह अब उनके लिए उनका मित्र नहीं रह गया था। वे तो जैसे सर्वशक्मिन के अवतरण को साक्षात् जप रहे थे। सुदामा ने अनुभव किया कि कुछ ही देर में उनका सारा अपराध-बोध, कष्ट और दु:ख खो गया है। वे स्वयं को निर्भार अनुभव कर रहे थे।

वे अब अपने गाँव की सीमा में प्रवेश कर चुके थे। गाँव के बाहर एक विशाल पट्टिका वस्त्रों से ढकी हुई थी और उन वस्त्रों को वायु से रक्षित करने के उद्देश्य से रस्सियों से बाँधा हुआ था। वे यह देखकर चकित रह गए कि गाँव के सभी घर ढहा दिए गए हैं। गाँववालों के साथ गाँव के कुत्ते भी कहीं चले गए थे। सुदामा का हृदय जोर से धड़का। आस-पास बहुतायत में बिखरी निर्माण-सामग्री और श्रमिकों के अस्थायी कुटीर बने देखकर उनके सामने यह स्पष्ट हो गया कि उनका यह गाँव किसी शक्तिशाली व्यक्ति के द्वारा अधिकृत कर लिया गया है। सबकुछ जैसे किसी ने पोंछ दिया हो। मारे दु:ख और चिंता के सुदामा के अश्रु बह उठे। पता नहीं उनके परिवार की क्या दुर्गति हुई होगी। उनकी पोथियों को उनके परिवार के साथ इन दुष्टों ने न जाने कहाँ फेंक दिया होगा। सुदामा मन-ही-मन चीख उठे कि वे स्वयं को कभी क्षमा नहीं कर पाएँगे। यह सब उनके अकर्मण्य और आलसी होने का परिणाम है। तभी उन्हें एक श्रमिक कुटीर से निकलता दिखाई दिया। संभवत: वह शौच इत्यादि के लिए उठा होगा। वे उससे यहाँ हुई उथल-पुथल के विषय में पूछने के लिए बढ़े ही थे कि कृष्ण ने उनके कंठ पर पैर रख दिया।

'कृष्ण, तुम देख रहे हो सब! इसके बाद भी मुझे मेरा संकल्प स्मरण करा रहे हो। यदि मैं अपने परिवार के विषय में नहीं पूछूँगा तो उनको खोजूँगा कैसे? यहाँ तो प्रलय ही हो गई है।' सुदामा मन में प्रकट हुए कृष्ण से बोले।

'क्या होगा इससे बात करके? संभावना तो यही है कि यह तुमसे कहेगा कि उसे कुछ ज्ञात नहीं। फिर तुम कोई विख्यात या गाँव के प्रभावशाली व्यक्ति तो हो नहीं कि यह श्रमिक तुरंत तुम्हें तुम्हारे परिवार के विषय में बता देगा। ऐसे में तुम व्यर्थ अपना संकल्प भंग करोगे।' कृष्ण मुसकराए।

'पर मैं अपने परिवार को खोजूँ कहाँ?' सुदामा अपना सिर पकड़कर बैठ गए।

'जहाँ तुम उनको छोड़कर गए थे, वहीं जाकर देखो।' कृष्ण अंतर्धान हो गए।

सुदामा कृष्ण-जाप करते-करते गाँव के अंतिम छोर की ओर बढ़ गए। वहाँ का दृश्य देखकर उनके हाथ-पैर फूल गए। शरीर मारे भय के सूखे पत्ते के समान थर-थर काँपने लगा। उनको लगा कि यदि उन्होंने शीघ्र ही स्वयं को नहीं सँभाला तो वे भूमि पर गिर जाएँगे। उनकी कुटिया के स्थान पर एक भव्य तंबू लगा था। उसके बाहर दो प्रहरी थे। सुदामा अनुभव कर रहे थे कि किस प्रकार उनकी पत्नी इन दुष्टों के सम्मुख नतमस्तक होकर गिड़गिड़ाई होगी कि वे उनकी भूमि का अधिग्रहण न करें और उन्होंने उनके परिवार को न जाने कहाँ फिंकवा दिया होगा।

वे लड़खड़ाते पगों से उस ओर बढ़े। पहरी चौकस हो गए।

''कौन हो तुम?'' एक प्रहरी का कठोर स्वर उठा।

''वहीं ठहर जाओ और अपना परिचय दो।'' दूसरा बोला।

सुदामा के मन में आया कि वे बोले कि कृष्ण ने उनको ऐसी प्रतिज्ञा में फँसाकर भेजा है कि वे तड़पेंगे भी और रो भी नहीं पाएँगे।

''बोलता क्यों नहीं रे? बीती रात महामहिम के शिविर के पास क्यों मँडरा रहा है?'' पहले प्रहरी ने सुदामा को धमकाया।

''हमें ज्ञात है कि ग्राम बस रहा है तो याचक तो आएँगे ही। पर पहले ग्राम बस तो जाने दे।'' दूसरा प्रहरी बोला, ''अब जाओ!''

सुदामा ने अपने मन में कृष्ण का आह्वान किया।

'कहो सुदामा!' कृष्ण प्रकट हुए।

'मैंने तेरी बात मानी छलिये! मैंने तेरी ही सहायता से अपना मौन यहाँ तक साधा। अब तू ही बता कि मैं अपना प्रथम संबोधन सुमति से कैसे करूँ? कोई मेरा सबकुछ हरकर ले गया।' सुदामा रो पड़े।

'सबकुछ हरने का सामर्थ्य तो श्रीहरि में ही है। वे ही हरि हैं।' कृष्ण की हँसी नूपुरों के समान झनझनाई।

'मोहन! तुम ही हो हरि, तुम ही हो हरि मोहन।' सुदामा का निष्प्राण स्वर लड़खड़ाया, ''मैं यहीं बैठा हूँ। अब जो तेरा जी चाहे, कर। मैं तेरी शरणागत हूँ। मैं अपना सर्वस्व हार चुका हूँ। मैं सर्वदृष्टियों से अकिंचन और दीन-हीन हो तेरी शरण हूँ। अब तुम्हें यदि मेरी लाज रखनी हो तो रखो, हरि!'

''अरे, यह याचक तो बैठ गया। उठता है यहाँ से या करूँ पद-प्रहार!'' पहले ने अपना पैर सुदामा की ओर उठा दिया।

सुदामा निष्कंप बैठे रहे—मेरा सबकुछ तुझी को समर्पित कृष्ण! अब यह देह भी तेरी, मन भी तेरा, चेतना भी तेरी और यह आत्मा भी तेरी। तू चाहे इस पर पद-प्रहार करवा या इसकी पूजा करवा। सब तुझे अर्पण। मुझे कुछ न लगे।

''नरक में पड़ेगा पापी!'' दूसरे प्रहरी ने पहले को जैसे धक्का दिया और उस पर बिगड़ा, ''अभी यदि दस्यु आ जाएँ तो भाग खड़ा होगा और निरीह ब्राह्मण पर पद-प्रहार करके वीरता दिखा रहा है। नरक में पड़ेगा पापी! चाहे यह चोर हो, परंतु ब्राह्मण के वेश में है। इस वेश पर पद-प्रहार मैं अपनी उपस्थिति में तो होने नहीं दूँगा।''

''क्या हो रहा है? यह कैसा कोलाहल है?''

भव्य शिविर के भीतर से एक नारी स्वर उठा।

''ले, अब स्वाद चखना!'' दूसरा प्रहरी भड़का, ''स्वामिनी उठ गई हैं।''

सुदामा ने स्वर पहचान लिया। यह तो सुमति का स्वर है। वे सोचने लगे कि हुआ यह होगा कि सुमति को यह स्थान न छोड़ते देख इस धनपति की स्त्री को दया आ गई होगी और उसने सुमति को अपनी दासी के रूप में यहाँ रहने की अनुमति दे दी होगी। उनका मन सुमति के प्रति धन्यवाद से भर उठा। इस अधिभौतिक आपदा के पश्चात् भी तुम मेरी प्रतीक्षा में यह स्थान त्यागकर नहीं गईं। अब मैं आ गया हूँ। मैं भी इस धनपति का दास बनकर उसकी सेवा में रहूँगा; क्योंकि अब यह देह मेरी नहीं, इसमें रह रहा मन मेरा नहीं, इसको संचालित करनेवाली चेतना अब मेरी नहीं और इसे शक्ति देनेवाली आत्मा का तो मुझे बोध ही नहीं—अब यह सब कृष्ण का हुआ। यह सुदामा

कृष्णदास हुआ और अब वही कृष्ण इस धनपति का दास बनेगा और समय-असमय उसके प्रहरियों के पद-प्रहार सहेगा।

सुदामा ने देखा कि रेशमी वस्त्रों और अलंकारों से सुसज्जित एक स्त्री शिविर के द्वार पर लटके आवरण को हटाकर प्रकट हुई। सुदामा का मन हुआ कि वे उससे कहें कि बहन!...नहीं...नहीं बहन, नहीं स्वामिनी। वे कहें कि हे स्वामिनी! दास सुदामा का प्रणाम स्वीकार करें और अपनी दासी से कहें कि उसका पिछले जन्म का पति आया है। वह सुदामा अब कृष्णदास हो गया है।...उस स्त्री को अपनी ओर आते देखकर उनके कंठ से स्वर ही नहीं फूटा। सहसा उनको ध्यान आया कि वे सुमति को पुकारने के लिए तो स्वतंत्र हैं। उन्होंने शिविर की ओर मुख करके आर्त्त स्वर में पुकारा, ''सुमति तुम्हें कृष्ण का प्रणाम! तुम कहाँ हो?'' सुदामा ने उस धनवान् स्त्री की ओर देखा ही नहीं। वे तो शिविर की ओर ही ताकते रहे कि अभी उनकी सुमति भीतर से दौड़ी आएगी। वहाँ से न कोई स्वर उठा और न सुमति ही आई। उन्होंने उच्च स्वर में पुकारा, ''सुमति, तुम कहाँ हो?''

''नाथ! मैं आपके सम्मुख ही तो खड़ी हूँ। आप उस ओर किसे पुकार रहे हैं?'' वह धनवान् स्त्री सुदामा के चरण-स्पर्श करने के लिए झुकी।

सुदामा को लगा कि जैसे उन्होंने किसी प्रेत को देख लिया हो। वे उनके चरण-स्पर्श करती उस स्त्री को सुमति के भ्रम में अपने अंक में भरना तो दूर, उसे स्पर्श करने का विचार भी न ला सके।

''स्वामी, मैं आपकी सुमति हूँ। सुदामा की सुमति।'' उसने सुदामा का हाथ थामा और उनको शिविर में ले गई।

सुदामा की कंपित देह गा रही थी—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

सुमति ने सुदामा की ओर एक पत्र बढ़ा दिया। एक कलात्मक धातु की छड़ में लिपटा वस्त्र पर लिखा वह एक राजकीय पत्र था। सुदामा ने उसे खोला। उस पर लिखा था—

निवेदन-पत्र

सरस्वती-पुत्र विप्रवर श्री सुदामाजी!

सबसे पहले शासन इस बात के लिए आपसे क्षमा माँगता है कि उसके प्रमाद के कारण ज्ञान के सच्चे उपासक की उपेक्षा हुई। वास्तव में यह शासन का धर्म है कि वह अपनी भूमि पर गुणीजनों को खोजे और उनका यथोचित सम्मान करे। इसलिए शासन ज्ञान का सम्मान करते हुए और अपनी त्रुटि की क्षमायाचना सहित विप्रवर सुदामा को गुरुकुल ज्ञान-कुटीर का कुलपति पद स्वीकार करने का निवेदन करता है। शासन ने इस क्षेत्र का नाम 'सुदामापुरी' कर दिया है। इसे ज्ञान के प्रति शासन की उपासना के रूप में स्वीकार किया जाए। आपकी गरिमामयी उपस्थिति और मार्गदर्शन में शिक्षा-जगत् नए कीर्तिमान स्थापित करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

निवेदक
महाराज उग्रसेन

''सुमति!'' पत्र पढ़कर सुदामा धीरे से बोले, ''इस सुदामापुरी से, जो कि वास्तव में भगवान् जगन्नाथ की ही पुरी है —इस पुरी में कोई किसी का न अपमान करेगा, न तिरस्कार और न किसी के लिए कठोर शब्दों का उपयोग ही करेगा; क्योंकि न जाने वह किसका रूप धरकर उनकी परीक्षा लेने आ जाए।''

❑❑❑